उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

DC B.COM-102

मुद्रा बैंकिंग एवं वित्तीय संस्थान

खण्ड – प्रथम : मौद्रिक सिद्धान्त 03–80

इकाई 1 – मुद्रा : प्रकृति, कार्य तथा महत्व 07–26

इकाई 2 – मुद्रा की माँग और पूर्ति 27–42

इकाई 3 – मुद्रा और कीमतें 43–64

इकाई 4 – मुद्रास्फीति 65–80

खण्ड – द्वितीय : बैंकिंग सिद्धान्त तथा कार्य प्रणाली 81–186

इकाई 5 – वाणिज्य बैंक 83–106

इकाई 6 – भारत में वाणिज्य बैंक 107–126

इकाई 7 – केन्द्रीय बैंक 127–148

इकाई 8 – रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया 149–170

इकाई 9 – भारतीय मुद्रा बाजार 171–186

खण्ड – तृतीय : भारत में गैर–बैकिंग वित्तीय संस्थान 187–258

इकाई 10 – गैर–बैंकिंग (बैंकेतर) वित्तीय मध्यस्थता : सिंहावलोकन 189–206

इकाई 11 – सावधिक ऋण देने वाली वित्तीय संस्थाएं–अखिल भारतीय 207–224

इकाई 12 – सार्वधिक ऋण देने वाली संस्थाएं 225–238

इकाई 13 – भारत में कृषि वित्त 239–258

खण्ड – चतुर्थ : अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था 259–268

इकाई 14 – अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था–एव परिचय 261–270

इकाई 15 – अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश 271–280

इकाई 16 – विश्व बैंक 281–296

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

DC B.COM-102

मुद्रा बैंकिंग एवं वित्तीय संस्थान

खण्ड – 1

मौद्रिक सिद्धान्त

इकाई – 1 07–26

मुद्रा : प्रकृति, कार्य तथा महत्व

इकाई – 2 27–42

मुद्रा की माँग और पूर्ति

इकाई – 3 43–64

मुद्रा और कीमतें

इकाई – 4 65–80

मुद्रास्फीति

विशेषज्ञ समिति

1. डॉ. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
2. डॉ देवश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
3. प्रो. आर.सी. मिश्रा, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन एवं वाणिज्य विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
4. प्रो. लवकुश मिश्रा, निदेशक, इंस्टीट्यूट ऑफ टूरिज्म एण्ड होटल मैनेजमेंट, श्री भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।
5. प्रो. सोमेश शुक्ला, विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
6. प्रो. राधेश्याम सिंह, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

लेखक :– डॉ शोभित गोयल, सहायक आचार्य, एएमटी बिजनेस स्कूल, एएमटी विश्वविद्यालय लखनऊ।

सम्पादक :– प्रो. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

परिमापक :–

अनुवाद की स्थिति में

मूल लेखक	**अनुवाद**
मूल सम्पादक	भाषा
मूल परिमापक	सम्पादक
	परिमापक

सहयोगी टीम

संयोजक :– डॉ. देवेश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

प्रूफ रीडर

2020 (मुद्रित)
© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2020
ISBN- 978-93-83328-88-8

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट :पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायीं नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित २०२४.

मुद्रकः सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूशन प्रा० लि०, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।

खंड 1 मुद्रा सिद्धांत

वाणिज्य का छात्र होने के नाते यह आवश्यक है कि आप अर्थव्यवस्थाओं में मुद्रा (money) और वित्तीय प्रणाली (financial system) की भूमिका को भली–भांति समझ लें। मुद्रा, बैकिंग और वित्तीय संस्थाएं नामक इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य आपको यह बताना है कि मुद्रा प्रणाली क्या है व ये कैसे कार्य करती है, मुद्रा प्रणाली का कार्य किस संस्थागत परिवेश में होता है, इसके अतिरिक्त यह जानकारी भी महत्वपूर्ण है कि वह कौन सी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है जो वर्तमान युग के हमारे वित्तीय ढांचे को आधार प्रदान करती है तथा अभी किन समस्याओं का समाधान होना शेष है।

इस आरम्भिक खण्ड में आप मुद्रा प्रणाली की कार्यवाहियों के संबंध में पढ़ेगे। इस खण्ड में चार इकाइयां हैः

इकाई 1 में मुद्रा की परिभाषा, उसकी भूमिका, उसके कार्यों और उसके दोषों के संबंध में विवेचन किया गया है।

इकाई 2 में मुद्रा की माँग और पूर्ति की संकल्पनाओं, मुद्रा की माँग से संबंधित विभिन्न संकल्पनाओं तथा मुद्रा पूर्ति की परंपरागत और आधुनिक संकल्पनाओं को विस्तार पूर्वक बनाया गया है।

इकाई 3 में मुख्यतः मुद्रा के मूल्य से संबंधित विभिन्न सिंद्धांतों के बारे में वर्णन किया गया है। इसमें नकद लेन–देन दृष्टिकोण, नकद शेष दृष्टिकोण, केन्ज़वादी सिद्धांत और मिल्टन फ्रिडमैन के सिद्धांत के बारे में बताया गया है।

इकाई 4 में मुद्रास्फीति का अध्ययन किया गया है। इसमें बताया गया है कि मुद्रास्फीति के अर्थ और प्रकृति क्या होते है व इसके कितने रूप है। मुद्रास्फीति के क्या प्रभाव होते हैं तथा मुद्रा स्फीति पर नियन्त्रण के लिए क्या उपाय किया जा सकता है।

****

इकाई–1 मुद्रा : प्रकृति, कार्य और महत्व

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 वस्तु–विनिमय प्रणाली की समस्याएं

1.3 मुद्रा का विकास और इसके प्रकार

1.4 मुद्रा क्या है?

1.5 मुद्रा की प्रकृति

1.6 मुद्रा के कार्य

1.7 मुद्रा का महत्व

1.8 मुद्रा के दोष

1.9 सारांश

1.10 उपयोगी शब्दावली

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- ❖ मुद्रा को परिभाषित कर सकें,
- ❖ वस्तु विनिमय की उन विषमताओं को बता सकें जिनके कारणवश मुद्रा का आविष्कार और विकास हुआ,
- ❖ मुद्रा और मुद्रावत् में भेद कर सकें,
- ❖ पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में मुद्रा की भूमिका और महत्व को समझ सकें, और
- ❖ मुद्रा के कार्य और उसके दोषों की विवेचना कर सकें।

1.1 प्रस्तावना

मुद्रा के बारे में सभी को पूर्ण रूपेण जानकारी है क्योंकि हम सभी उस मौद्रिक अर्थव्यस्था में रहते है, जहां पर अनेक प्रकार के लेनदेनों में तथा क्रय–विक्रय में मुद्रा का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान में हम सभी मुद्रा के उपयोग से इतने व्यवहारिक हो गये है कि इसका कोई विकल्प नहीं सुझायी देता है।

अतः यह जानना आवश्यक है कि मुद्रा कब, क्यो और कैसे आई। इसका अध्ययन के लिये मुद्रा की परिभाषा महत्व कार्य और दोष क्या है का वर्णन आगे किया जा रहा है।

1.2 वस्तु–विनिमय प्रणाली की समस्याएं (Problems of Barter System)

मुद्रा के प्रचलन से पूर्व विनिमय क्रिया वस्तु–विनिमय प्रणाली के द्वारा संपन्न की जाती थी, इस प्रणाली में लोगों के पास आवश्यकताओं से अधिक जो वस्तुएं व सेवाएं होती थी उनका विनिमय दूसरों के पास आवश्यकता से अधिक उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओं से किया जाता था। उदाहरण के लिए, एक किसान अपना अनाज (जो उसकी अपनी आवश्यकता से अधिक हो) का विनिमय बुनकर के पास अतिरिक्त कपड़े से करता था। यह क्रिया दोनों की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम होती थी। वस्तु–विनिमय प्रणाली तब तक ठीक तरह चलती रही जब तक कि मानव की आवश्यकताएं साधारण व सीमित संख्या में थी। कालान्तर में मानवीय आवश्यकताए बढ़कर कई गुना हो गई और इससे व्यवसायों का विस्तार हुआ। इसके फलस्वरूप वस्तु–विनिमय प्रणाली के द्वारा विनिमय में बहुत कठिनाइयां आई। परिणामस्वरूप एक ऐसे विनिमय के माध्यम की आवश्यकता का आभास हुआ जो सामान्य रूप से स्वीकार्य हो। इसी के फलस्वरूप मुद्रा का आविष्कार और विकास हुआ। वस्तु–विनिमय प्रणाली में लोगों को निम्नाकिंत समस्याओं का सामना करना पड़ता था :–

1. आवश्यकताओं के दोहरे संयोग का अभाव :– वस्तु विनिमय के लिए आवश्यकताओं के दोहरे संयोग का होना जरूरी है। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति 'A' के पास एक भेड़ है और वह इसका विनिमय कपड़े से करना चाहता है, जो उसे किसी ऐसे व्यक्ति को ढूंढ़ना होगा जिसके पास देने के लिये अतिरिक्त कपड़ा हो और इसके साथ–साथ उसे उस भेड़ की आवश्यकता हो जो 'A' देना चाहता है। जब आवश्यकताएं सरल थीं और वस्तुओं की संख्या सीमित होती थी तो एंसे संयोगों का होना सरल था। लेकिन जैसे–जैसे वस्तुओं की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई, आवश्यकताओं के ऐसे संयोग कठिन होते गये और इनका पता लगाने में अत्यधिक समय लगने लगा। मुद्रा के आगमन से यह कठिनाई समाप्त हो गयी क्योंकि अब कोई भी व्यक्ति अपना माल बेच कर मुद्रा प्राप्त कर सकता है और फिर इस मुद्रा की सहायता से वह अपनी इच्छानुसार वस्तुएं और सेवाएं क्रय कर सकता है।

2. मूल्य की एक सामान्य माप की समस्या :– मुद्रा के न होने पर, प्रत्येक वस्तु का मूल्य अन्य सभी वस्तुओं के रूप पता लगाना होता था। उदाहरण के लिए, एक मीटर कपड़े के लिये कितना गेहूं, या कितना दूध या कितना नमक

या कितना चावल दिया जाए? यदि समाज में 10 वस्तुएं थीं, तो लोगों को 45 मूल्य निर्धारित करने होते थे और ये सभी याद रखने होते थे और यदि वस्तुओं की संख्या 100 हो तो ऐसे मूल्य 4950 होगें। यदि nवस्तुएं हों तो वस्तु विनिमय प्रणाली में कितने मूल्य निर्धारित करने होंगे उसका सूत्र $n\frac{n-1}{2}$ है लेकिन मुद्रा के प्रचलन से प्रत्येक वस्तु का मूल्य केवल मुद्रा के रूप में ही व्यक्त करना होता है। अतः यदि 100 वस्तुएं हों तो मौद्रिक अर्थव्यवस्था में लोगों को केवल 100 मूल्य जानने होंगे।

3. वस्तुओं के उप–विभाजन के कारण हानि :– बहुत सी वस्तुएं ऐसी होती है जिनका यदि उप–विभाजन किया जाए जा उनके मूल्य की अंशतः या कभी–कभी पूर्णतया हानि हो जाएगी। उदाहरण के लिए एक मेज, या एक रेफ्रिजरैटर या एक टी.वी. का दो या दो से अधिक हिस्सों में उप–विभाजन नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसा करने से उनका मूल्य समाप्त हो जाएगा। अब यदि एक व्यक्ति अपने टी.वी. का पांच या छः वस्तुओं से विनिमय करना चाहता है तो किसी एक ही व्यक्ति से ये सभी वस्तुएं प्राप्त करना तो बहुत कठिन होगा। अतः उसे अपनी टी.वी. को पांच या छः भागों में उपविभाजित करना होगा, लेकिन ऐसा करने से टी.वी. का मूल्य समाप्त हो जाएगा। दूसरी ओर यदि विनिमय के माध्यम के रूप में मुद्रा का प्रयोग किया जाता है तो ऐसी कोई समस्या उत्पन्न नहीं होगी क्योंकि मुद्रा पूर्णतया विभाज्य होती है।

4. धन के संचय में कठिनाई :– मुद्रा के प्रचलन में न होने पर बचत करना और धन का निर्माण करना बहुत कठिन है क्योंकि बहुत सी सस्तुएं टिकाऊ नहीं होती और विभिन्न प्रकार की सेवाएं समय के साथ–साथ अप्रयोज्य हो जाती हैं, अतः इन्हें भविष्य के लिये संचित नहीं किया जा सकता। लोग भविष्य के आकस्मिक व्यय के लिये प्रावधान के रूप में किसी चीज के संचयन के बारे में सोच भी नहीं सकते थे क्योंकि गेहूं, पशुओं की खाल आदि वस्तुओं के रूप में संचित किया गया धन अधिक दिन नहीं चल सकता। लेकिन मुद्रा क्योंकि टिकाऊ है इसलिए यह बचत करने और धन संचय करने का अत्यन्त सुविधाजनक रूप है।

1.3 मुद्रा का विकास और इसके प्रकार

भारत में आजकल मुद्रा में सिक्के, कागजी नोट और निक्षेप मुद्रा शामिल की जाती है। लेकिन मुद्रा के इस रूप का विकास होने में सैंकड़ों वर्ष लगे। सभ्यता के शुरू के समय में मुद्रा ने वस्तु मुद्रा का रूप लिया जैसे कि गाय, भेड़, गेहूं, चावल, तम्बाकू, बाघ के दांत, हाथी–दांत आदि। किसी विशेष वस्तु का मुद्रा के रूप में चुनाव बहुत से कारकों पर निर्भर करता था जैसे कि समाज के आर्थिक विकास व संस्कृति का स्तर तथा जलवायु आदि। अलास्का और साइबेरिया जैसे ठंडे देशों में पशुओं की खाल और फर का मुद्रा के रूप में प्रयोग किया जाता था। उष्णा कटिबन्धी देशों में हाथी दांत और बाघ के जबड़े मुद्रा के रूप में प्रयोग किये जाते थे। कृषि प्रधान देशों में घरेलू जानवर और रोजमर्रा की चीजों ने मुद्रा का रूप लिया। लेकिन समय के साथ–साथ इन वस्तुओं के टिकाऊ और मानक रूप न होने व एक समान मापन योग्य ने होने के कारण इनका मुद्रा के रूप में प्रयोग करना छोड़ दिया गया। आज की मुद्रा भी तीन चरणों से गुजरी हैः (1) धातु मुद्रा, (2) प्रतिनिधि कागजी मुद्रा, और (3) साख मुद्रा। वर्तमान अपरिवर्तनशील कागजी नोट और अन्य साख प्रपत्रों को विधिमान्य मुद्रा के लिये स्थानापन्न (substitute) के रूप में चलन अभी हाल में ही हुआ है।

मुद्रा का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जाता है– (1) जिन वस्तुओं से मुद्रा बनाई गई है उनकी भौतिक विशिष्टताएं या मौद्रिक प्रणाली कसौटी; (2) मुद्रा को जारी करने वाले की प्रकृति जैसे सरकार, केन्द्रीय बैंक, कमर्शियल बैंक, अथवा अन्य कोई या स्वीकार्यता कसौटी और (3) मुद्रा के रूप में मुद्रा के मूल्य तथा वस्तु के रूप में मुद्रा के मूल्य के बीच सम्बन्ध जिसे केन्ज़ लेखा मुद्रा तथा यथार्थ मुद्रा कहता है। मुद्रा के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या करने में हम इसका वर्गीकरण निम्न प्रकार से करेंगेः–

मुद्रा प्रणाली कसौटी (Monetary System Criterion)

मुद्रा–प्रणाली कसौटी मुद्रा का तीन प्रकार से वर्गीकरण करती है :

1. धातु मुद्रा; 2. कागज मुद्रा; और 3. साख मुद्रा। जिनकी व्याख्या निम्न प्रकार की जा रही है – (जिसको निम्न चित्र द्वारा भी देखा जा सकता है)

मुद्रा का वर्गीकरण

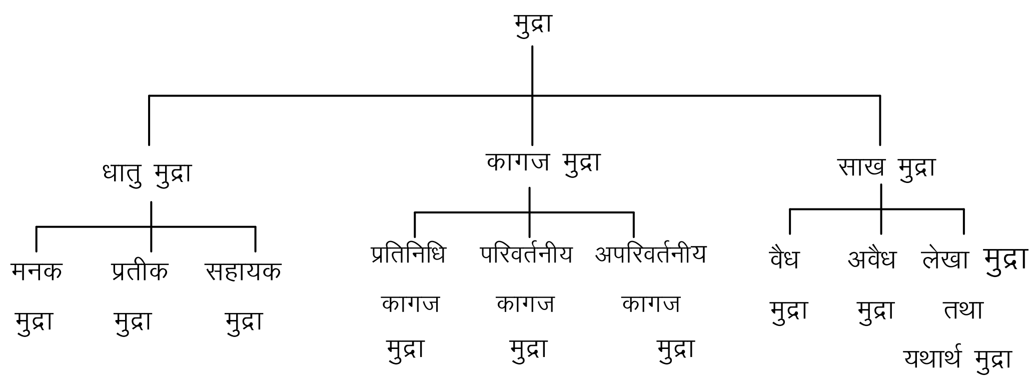

1. धातु–मुद्रा (Metallic Money) – सोना, चांदी, निकल, तांबा आदि जैसी किसी भी धातु से बनी मुद्रा को धातु–मुद्रा कहते हैं। धातु मुद्रा का आगे मानक मुद्रा, प्रतीक मुद्रा तथा सहायक मुद्रा के रूप में पुनः वर्गीकरण किया गया है।

(i) मानक मुद्रा (Standard Money) – मानक मुद्रा ''वह मुद्रा है जिसका मूल्य वस्तु के रूप में गैर–अमौद्रिक उदेश्यों के लिए भी उतना ही है जितना की मुद्रा के रूप में उसका मूल्य है।'' इस तरह की मुद्रा सिक्कों के रूप में हाती है जिसका अंकित मूल्य उसके यथार्थ मूल्य अथवा धातु–मूल्य के बराबर होता है। इसलिए मानक मुद्रा को पूर्ण मूल्य मुद्रा भी कहते हैं।

(ii) प्रतीक मुद्रा (Token Money) – प्रतीक मुद्रा वह प्रतिनिधि मुद्रा है जिसका यथार्थ मूल्य उसके अंकित मूल्य से कम होता है भारत में जो एक रुपये का सिक्का चल रहा है, वह प्रतीक सिक्का है। यदि उसे पिघलाया जाए तो इसकी धातु एक रुपये में नहीं बिकेगी।

(iii) सहायक मुद्रा (Subsidiary Money) – सहायक मुद्रा का काम प्रतीक मुद्रा की सहायता करना है। पांच पैसे से 25 पैसे तक के जो सिक्के भारत में चलते थे, वे सभी सहायक मुद्रा था। इसी तरह वर्तमान में 25 पैसे तथा 50 पैसे के सिक्के जो चलन में हैं, सहायक मुद्रा है तथा ये वैध मुद्रा हैं।

2. कागज मुद्रा (Paper Money) – कागज–मुद्रा से तात्पर्य कागज के बने विभिन्न अंकित मूल्य के नोटों से है जिसे देश का केन्द्रीय बैंक तथा/अथवा सरकार जारी करती है। कागज–मुद्रा को प्रतिनिधि कागज–मुद्रा, परिवर्तनीय कागज–मुद्रा, अपरिवर्तनीय कागज–मुद्रा और आदेश कागज–मुद्रा के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(i) प्रतिनिधि कागज–मुद्रा (Representative Paper Money)– प्रतिनिधि कागज–मुद्रा ''वास्तव में पूर्ण–मूल्य सिक्कों अथवा उनके बराबर के स्वर्ण–बुलियन की मालगोदाम रसीद है जो प्रचलन में होती है।'' इसे प्रतिनिधि पूर्ण–मूल्य मुद्रा भी कहते हैं क्योंकि यह सरकारी खजाने में रखे स्वर्ण सिक्कों अथवा बुलियन से पूर्णतया समर्थित होती है।

(ii) परिवर्तनीय कागज मुद्रा (Convertible Paper Money)– परिवर्तनीय कागज–मुद्रा वह मुद्रा होती है जिसे मानक सिक्कों अथवा बुलियन के रूप में शत–प्रतिशत समर्थन प्राप्त नहीं होता है। परन्तु कागज मुद्रा को धारक (holder) उसे माँग पर बुलियन अथवा सिक्कों में बदलवा सकता है। प्रतिनिधि और परिवर्तनीय कागज मुद्रा दोनों में इतना ही अन्तर होता है कि प्रतिनिधि कागज–मुद्रा को तो मानक सिक्कों अथवा बुलियन का पूर्ण समर्थन प्राप्त होता है जबकि परिवर्तनीय कागज–मुद्रा को उनका पूर्ण समर्थन प्राप्त नहीं होता। परन्तु दोनों ही प्रकार की कागज मुद्रा परिवर्तनीय होती है।

(iii) अपरिवर्तनीय कागज मुद्रा (Inconvertible Paper Money)– जिस कागज मुद्रा को मानक सिक्कों अथवा बुलियन का कोई समर्थन प्राप्त नहीं होता और जिसे उनमें बदलवाया भी नहीं जा सकता उसे अपरिवर्तनीय कागज मुद्रा कहते हैं। भारत में केन्द्रीय बैंक,(RBI) रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा जारी किये गये नोट अपरिवर्तनीय कागज मुद्रा होते हैं।

(iv) आदेश या अधिदिष्ट–मुद्रा (Fiat Money) – जो कागज–मुद्रा सरकार के आदेश पर प्रचलित होती है उसे आदेश मुद्रा कहते है। आदेश मुद्रा प्रतिनिधि अथवा प्रतीक मुद्रा है, जो राज्य द्वारा निर्मित अथवा जारी की जाती है, परन्तु जिसे कानून द्वारा अपने अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु से नहीं बदला जा सकता। भारत सरकार द्वारा जारी प्रतीक सिक्के आदेश मुद्रा हैं। वित मंत्रालय द्वारा जारी एक रुपये के नोट भी आदेश मुद्रा हैं।

3. स्वीकार्यता कसौटी (Acceptability Criterion) – स्वीकार्यता कसौटी के आधार पर मुद्रा को वैध मुद्रा और अवैध मुद्रा में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. वैध मुद्रा (Legal Tender Money) – वैध मुद्रा वह मुद्रा है जिसे सरकार तथा जनता दोनों ही भुगतान और ऋण चुकाने के साधन के रूप में स्वीकार करते है। क्योंकि इसे सरकार की मंजूरी प्राप्त है। किसी देश की सरकार और केन्द्रीय बैंक द्वारा जारी किए गए नोट और सिक्के उस देश में अनिवार्य वैध मुद्रा होती है।

2. अवैध मुद्रा (Non LegalTender Money) – जिस मुद्रा को सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक की कानूनी मंजूरी प्राप्त नहीं होती उसे अवैध मुद्रा कहते हैं। चैकों, हुंडियों और प्रोनोटों आदि के रूप में प्रचलित मुद्रा अवैध मुद्रा है। लोगों को इस तरह की मुद्रा स्वीकार करने पर बाध्य नहीं किया जा सकता, क्योंकि इनके

निर्गम को कानूनी मान्यता प्राप्त नहीं हैं। चैक और ड्राफ्ट के अलावा, ऐच्छिक मुद्रा के अन्य रूप भी हैं, जैसे सावधि जमा, बांड, प्रतिभूतियां, डिबेंचर, विनिमय पत्र, खजाना पत्र, पोस्ट ऑफिस सर्टिफिकेट, इंश्योरेंस, पालिसी आदि।

3. लेखा मुद्रा तथा यथार्थ मुद्रा (Money of Account and Money Proper) – केन्ज़ ने लेखा मुद्रा तथा यथार्थ मुद्रा में भेद किया है। ''लेखा मुद्रा वह मुद्रा है जिसमें ऋण और कीमते सामान्य क्रयशक्ति को व्यक्त किया जाता है।'' यथार्थ मुद्रा वह वास्तविक मुद्रा है जिसमें ठेकों तथा ऋणों का हिसाब चुकाया जाता है जैसे भारतीय रुपया, इंग्लैण्ड का पौंड, अमरीकी डालर, फ्रांस का फ्रैंक, इटली का लीरा इत्यादि।

1.4 मुद्रा क्या है

मुद्रा के अर्थ और प्रकृति के सम्बन्ध में बहुत मतभेद और भ्रान्ति चली आ रही है। जैसा कि स्कितोव्स्की ने लक्ष्य किया है, ''मुद्रा की धारणा को परिभाषित करना कठिन है, आंशिक रूप से तो इसलिए कि यह एक नहीं तीन कार्य करती है, जिनमें से प्रत्येक कार्य मुद्रात्व (moneyness)की कसौटी प्रदान करता है। ये कार्य हैंः (i) लेखा की इकाई, (ii) विनिमय का माध्यम, (iii) मूल्य का संचय।'' यद्यपि स्कितोव्स्की ने मुद्रात्व (moneyness) के कारण मुद्रा को परिभाषित करने की कठिनाई की ओर संकेत किया है। प्रो. **कोलबोर्न** (Coulborn) की परिभाषा के अनुसार मुद्रा मूल्यांकन तथा भुगतान का माध्यम है; लेखा की इकाई के रूप में भी तथा विनिमय के समान्यतः स्वीकार्य माध्यम के रूप में भी।'' (Money is the means of valuation and of payment; as both the unit of account and the generally acceptable medium of exchange)। कोलबोर्न की परिभाषा बहुत व्यापक है। उसने इस परिभाषा में 'मूर्त' मुद्रा (concrete money) जैसे–सोना, चैक, सिक्के, करेन्सी, नोट, बैंक ड्राफ्ट आदि को तो शामिल किया ही है, साथ ही अमूर्त मुद्रा (abstract money) को भी ले लिया है जो हमारे मूल्य, कीमत तथा योग्यता के विचारों की वाहिका है। इस तरह की व्यापक परिभाषाएं देखकर सर जॉन हिक्स ने कहा था, ''मुद्रा अपने कार्यों से परिभाषित होती है, जिस किसी वस्तु को मुद्रा की भांति प्रयोग किया जाए, वही मुद्रा बन जाती है। मुद्रा वही है जो मुद्रा का काम करे।'' (Money is defined by its functions: anything is money which is used as money; money is what money does) ये मुद्रा की कर्यात्मक परिभाषाएं हैं क्योंकि ये मुद्रा को उसके कार्यों की दृष्टि से परिभाषित करती हैं।

फ्रीठमैन की परिभाषा (Friedman's Definition of Money) - के अनुसार, मुद्रा ''करेंसी और कमर्शियल बैंको की कुल समायोजित जमाओं का जोड़ है'' (the sum of currency plus all adjusted depostis in commercial banks) यह मुद्रा की व्यावहारिक परिभाषा है, यह कमर्शियल बैंको के दोनों माँग और समय–जमाओं में समायोजन (adjustment) तथा समाज और कमर्शियल बैंको की बढ़ रही वित्तीय कृत्रिमता को ध्यान में रख कर रची गई थी। परन्तु फ्रीडमैन इस कृत्रिमता का एक सूचक भी स्थापित नहीं कर सका। नकद और जमा मुद्राओं की दीर्घकाल तक पूरी तरह से तुलना (comparison) नहीं की जा सकी थी। फिर भी सहसंबंध प्रमाण (correlation evidence) ने मुद्रा की इस विस्तृत परिभाषा का सुझाव दियाः ''कोई परिसंपत्ति जो क्रय शक्ति के अस्थाई निवास के रूप में क्षमता रखती हो।'' (Any asset capable of serving as a temporary abode of purchasing power).

पेसक–सेविंग परिभाषा (Pesek-Saving Definition) - पेसक और सेविंग के अनुसार, मुद्रा में बैंको के माँग जमा और सरकार द्वारा जारी मुद्रा शामिल होने चाहिएं।

उक्त के अतिरिक्त विभिन्न अर्थशास्त्रीयों ने मुद्रा की निम्नानुसार अलग अलग परिभाषायें दी है।

1. **एल्फर्ड मार्शल (Alfred Marshall) :** ''मुद्रा में वे सभी वस्तुएं शामिल की जाती हैं जो किसी समय अथवा स्थान पर, बिना संदेह अथवा विशेष जांच के वस्तुओं और सेवाओं को क्रय करने तथा व्ययों का भुगतान करने के साधन रूप में सामान्यता प्रचलित होती है।''

2. **क्राउथर (Crowther) :** ''कोई भी वस्तु जो सामान्य रूप से विनिमय के माध्यम के रूप में स्वीकार की जाती है और साथ ही मूल्य के माप व संचय का काम भी करती है।''

3. **ए. सी. पीगू (A.C. Pigou) :** ''किसी भी चीज का मुद्रा के रूप में वर्गीकृत होने के लिये वह विनिमय के प्रपत्र के रूप में अच्छी तरह और व्यापक रूप से स्वीकार की जानी चाहिये।''

4. **जे. एम. केन्ज़ (J. M. Keynes) :** ''मुद्रा वह है जिसे देकर ऋण अनुबंधों और मूल्य–अनुबंधो को उन्मुक्त किया जाता है और जिसके रूप में सामान्य क्रय शक्ति को संचित किया जाता है।''

5. **वाकर(Walker) :** ''मुद्रा वह है जो मुद्रा का कार्य करे।''

6. **डी. एच. राबर्टसन (D.H. Robertson) :** ''मुद्रा कोई भी वह वस्तु है जो व्यापक रूप से वस्तुओं के भुगतान के लिये या अन्य प्रकार के व्यापारिक दायित्वों के भुगतान के लिये स्वीकार की जाए।''

7. **जी. डी. एच. कोल (G.D.H. Cole) :** ''मुद्रा कोई भी वह चीज है जो भुगतान के साधन के रूप में नियमित व व्यापक रूप से प्रयोग की जाती हो और ऋणों के निपटारे में सामान्य रूप से स्वीकार्य हो।''

उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन यह दर्शाता है कि मुद्रा के सभी तत्वों को एक ही वाक्य में शामिल करना सरल नहीं है। इसलिए ऊपर दी गयी कोई भी परिभाषा व्यापक और संतोषजनक एवं पूर्ण नहीं है। तथापि ये परिभाषाएं मुद्रा की मूलभूत विशेषताएं जानने में सहायक हैं और ये विशेषताएं सारांश में निम्नलिखित हैंः

1. मुद्रा कोई वस्तु हो सकती है (एक कागज का टुकड़ा भी) जो सामान्य सहमति से विनिमय के माध्यम या क्रय शक्ति के हस्तांतरण के साधन के रूप में चुनी गयी हो।

2. यह वस्तुओं और सेवाओं के लिये भुगतान के रूप में हैं और भविष्य के भुगतानों सहित सभी लेन–देनों के निपटारे में व्यापक व वैध रूप से स्वीकार की जाती है।

3. यह उस व्यक्ति की साख के संदर्भ के बिना स्वीकार्य होनी चाहिये जो इसे भुगतान के रूप में प्रस्तुत करता है। इसका कारण यह है कि मुद्रा में तरलता है,

यानि सामान्य क्रय शक्ति, जिसे वस्तुओं और सेवाओं के विनिमय में दूसरों को दिया जा सकता है।

4. मुद्रा, मात्रा और गुण की किसी विशेष जांच के बिना ही, सबके द्वारा सामान्य रूप से प्राप्त की जाती है।

बोध प्रश्न क

1. मुद्रा क्या है?

   ....

2. मुद्रा की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?

   ....

3. वस्तु–विनिमय प्रणाली को कौन सी समस्याओं का सामना करना होता है?

   ....

4. निम्नलिखित कथनों में से कौन सही है और कौन गलत?

   (i) वस्तु विनिमय प्रणाली के अंतर्गत लोग वस्तुओं के बदले में वस्तुओं का विनिमय करते हैं।

   (ii) ग्राहक की माँग पर अधिदिष्ट मुद्रा सोना या चांदी के सिक्कों में परिवर्तनीय होती है।

   (iii) बैंक–मुद्रा विनिमय के माध्यम का कार्य करती है।

   (iv) मुद्रा वह वस्तु है जिसे वस्तुओं और सेवाओं के भुगतान के लिए व्यापक रूप में स्वीकार किया जाता है।

1.5 मुद्रा की प्रकृति

मुद्रा केवल एक साधन है जो कि अपने आप में साध्य नहीं है। इसकी माँग इसके स्वयं के लिये नहीं की जाती बल्कि इसलिये की जाती है कि यह हमारी आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिये वस्तुओं और सेवाओं को क्रय–विक्रय में सहायता करती है। मुद्रा प्रत्यक्ष रूप से मानवीय आवश्यकताओं को व्यापक रूप से संतुष्ट नहीं कर सकती लेकिन वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और विनिमय में सहायता प्रदान करती है। इसका महत्व वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने और व्यावसायिक दायित्वों को पूरा करने की इसकी योग्यता से है। मुद्रा पूंजी को गतिशीलता देती है तथा विभाजन और विशिष्टीकरण में सहायक है, जिससे यह बड़े पैमाने पर उत्पादन को संभव बनाती है। अतः सत्य ही है कि ''हम मुद्रा नहीं खा सकते लेकिन हम मुद्रा के किना भी नहीं खा सकते।''

1.6 मुद्रा के कार्य

मुद्रा अनेक प्राथमिक, द्वितीयक, आकस्मिक तथा अन्य कार्य करती है जो केवल वस्तु विनिमय प्रणाली की कठिनाइयों को ही दूर नहीं करते अपितु आज की

दुनिया में व्यापार तथा उद्योग को प्रगति के पथ पर अग्रसर करती है। हम इन कार्यों पर क्रमशः विचार कर रहे है।

1. प्राथमिक कार्य (Primary Functions) – मुद्रा के दो प्राथमिक कार्य है, (1) विनिमय के माध्यम के रूप में कार्य करना और (2) मूल्य की इकाई के रूप में, कार्य करना।

विनिमय का माध्यम (Medium of Exchange) : यह मुद्रा का मूल कार्य है। विनिमय के माध्यम का कार्य करके मुद्रा आवश्यकताओं के दोहरे संयोग की जरूरत तथा वस्तु–विनिमय प्रणाली की असुविधाओं एवं कठिनाइयों को समाप्त कर देती है। विनिमय के माध्यम के रूप में मुद्रा के प्रचलन से वस्तु–विनिमय प्रणाली का एक सौदा क्रय और विक्रय के अलग–अलग सौदों में बंट जाता है। मुद्रा का कार्य सौदों के समय और स्थान को भी अलग कर देता है, क्योंकि किसी वस्तु के विक्रेताओं और क्रेताओं के लिए यह जरूरी नहीं रह जाता किवे एक ही समय और स्थान पर सौदा करें। इसका कारण यह है कि वस्तु का विक्रेता कुछ मुद्रा खरीदता है और फिर मुद्रा समय और स्थान के अन्तराल से वस्तु को खरीदती है।

जब मुद्रा विनिमय के माध्यम का कार्य करती है, तो इसका मतलब है कि लोग उसे सामान्यतः स्वीकार करने को तैयार हैं। इसलिए यह वस्तु के चुनाव की स्वतन्त्रता प्रदान करती है। मुद्रा से हम वस्तुओं तथा सेवाओं का मिश्रित बंडल खरीद सकते हैं। साथ ही हम बाजार में उत्तम चीज ले सकते हैं। और सौदेबाजी कर सकते हैं। इस प्रकार मुद्रा काफी हद तक आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करती है और प्रतियोगिता बढ़ाकर तथा बाजार का विस्तार करके बाजार की क्रिया विधि को पूर्ण बनाती है। विनिमय के माध्यम के रूप में मुद्रा बिचौलिये का काम करती है। यह विनिमय को सुविधापूर्ण बना देती है। विशेषीकरण तथा श्रम के विभाजन के माध्यम से मुद्रा अप्रत्यक्षतः उत्पादन मे सहायक होती है।

प्राफेसर वाल्टर्ज का मत है, मुद्रा 'उत्पादन के साधन' के रूप में कार्य करती है जिससे उत्पादन बढ़ता है और बहुविध बनता है। अन्तिम विश्लेषण में मुद्रा व्यापार को आसान बनाती है। जब मुद्रा बिचौलिये का काम करती है तो यह एक वस्तु अथवा सेवा के अन्य वस्तुओं से व्यापार में अप्रत्यक्ष तौर से सहायक होती है।

मूल्य की इकाई (Unit of Value) : मुद्रा का दूसरा प्राथमिक कार्य है, मूल्य की इकाई के रूप में कार्य करना। वस्तु–विनिमय प्रणाली के अन्तर्गत हमें कोई नियत माप रखना पड़ता है जैसे किसी तार या लकड़ी के टुकड़े की लम्बाई। क्योंकि किसी वस्तु की लम्बाई या उंचाई मापने के लिए हमें हर समय एक मानक माप के प्रयोग की जरूरत पड़ती है। इसलिए अच्छा यही है कि किसी विशिष्ट माप को मानक माप के रूप में स्वीकार कर लिया जाए। मूल्य को मापने के लिए मुद्रा उसी तरह मानक है जैसे लम्बाई को मापने के लिए गज या मीटर एक मानक माप है। मुद्रा इकाई सभी वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्य को मापती तथा व्यक्त करती है। मुद्रा वह सामान्य अपवर्त्य (common denominator) है जो उन वस्तुओं तथा सेवाओं की विनिमय दर को निर्धारित करती है जिनकी कीमतें मुद्रा इकाई में हैं। मूल्य के माप के अभाव में कीमत निर्धारण की कोई प्रक्रिया हो ही नहीं सकती।

जब मूल्य के मानक के रूप में मुद्रा का प्रयोग होता है तो चीजों की कीमत, इतने डालर, इतने रुपयें, इतने फ्रैंक, इतने पाउंड आदि के रूप में व्यक्त की जाती है,

वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्यों में मापने से बाजार में वस्तुओं का विनिमय मूल्य मापने की समस्या समाप्त हो जाती है।

मूल्य की इकाई के रूप में मुद्रा, लेखांकन को भी आसान बना देती है 'सभी प्रकार की परिसम्पत्तियां, देयताएं, आय तथा व्यय प्रचलित सामान्य मुद्रा इकाइयों में जोड़ और घटाए जा सकते है।'

2. गौण कार्य (Secondary Functions) – मुद्रा तीन गौण कार्य करती है – स्थगित भुगतानों के मानक का, मूल्य के संचय का और मूल्य के हस्तातरण का, इन पर आगे विचार किया जा रहा है।

स्थगित भुगतानों का मानक (Standard of Deferred Payments): मुद्रा का एक गौण कार्य है स्थगित भुगतानों के मानक का काम करना। सभी ऋण, मुद्रा में लिये जाते हैं। वस्तु–विनिमय प्रणाली के अन्तर्गत भेड़ो अथवा अनाज के रूप में कर्जे लेना तो आसान था परन्तु इस तरह की भविष्य में खराब हो जाने वाली वस्तुओं के माध्यम से कर्जों का पुनर्भुगतान करना कठिन था। मुद्रा ने कर्जे लेना और कर्जे का पुनर्भुगतान करना दोनों को आसान बना दिया है क्योंकि लेख इकाई टिकाउ है। मुद्रा वर्तमान मूल्यों को भावी मूल्यों से जोड़ती है। वह उधार लेने–देने को सरल बनाती है। अन्ततः कहा जा सकता है कि मुद्रा का यह कार्य वित्तीय एवं पूजी बजार का विकास करता है और अर्थ–व्यवस्था की वृद्धि में सहायक होता है।

मूल्य का संचय (Store of Value) – मुद्रा का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य यह है कि यह मुद्रा के संचय का काम करती है। ''जिस वस्तु को मुद्रा के रूप में चुना जाता है, वह एसी होती है जो लम्बी अवधि तक रखी रहने पर भी खराब या नष्ट नहीं होती। मुद्रा वर्तमान से भविष्य तक का सेतु है। मुद्रावस्तु हमेशा ऐसी हो जिसे आसानी से और हिफाजत के साथ संचय किया जा सके।'' प्रो. न्यूलिन ने इसे मुद्रा की परि–सम्पत्ति कार्य कहा है।

मूल्य का हस्तान्तरण (Transfer of Value) – क्योंकि मुद्रा भुगतान का समान्य रूप से स्वीकार्य साधन है और मूल्य संचय का कार्य करती है, इसलिए यह मूल्यों को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक हस्तांतरित और एक स्थान से दूसरे स्थान तक स्थानांतरित करती रहती है। जिस व्यक्ति के पास नकदी अथवा परिसम्पत्तियों के रूप में मुद्रा है, वह उसे किसी भी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित कर सकता है। फिर वह चाहे तो अपनी दिल्ली की परिसम्पत्तियां बेच सकता है और जयपुर में नई परिसम्पत्तियां खरीद सकता है।

3. आकस्मिक कार्य (Contingent Functions) – प्रो. डेविड किनले के मतानुसार मुद्रा कुछ आकस्मिक अथवा प्रासंगिक कार्य भी करती है –

(i) तरल परिसम्पत्तियों में सर्वाधिक तरल (Most Liquid of all Liquid Assets) – जिन तरल परिसम्पत्तियों के रूप में सम्पत्ति रखी जाती है, उनमें से मुद्रा सबसे अधिक तरल है। व्यक्ति तथा फर्म सम्पत्ति को अनन्त रूपों में रख सकते है। वे चाहें तो सम्पत्ति को करेंसी के रूप में रखें, चाहें माँग जमा, सावधि जमा, बचत बांडो, ट्रेजरी बिलों, अल्पकालीन सरकारी प्रतिभूतियों, दीर्घकालीन सरकारी प्रतिभूतियों, डिबेंचरों, अधिमान शेयरों, साधारण शेयरों, उपभोक्ता वस्तुओं के स्टाकों तथा उत्पादक उपकरणों में से किसी भी रूप में रखे।

ये सभी सम्पत्ति के तरल रूप हैं। जिन्हें मुद्रा में और मुद्रा को जिनमें बदला जा सकता है।

(ii) साख, प्रणाली का आधार (Basis of the Credit System) : मुद्रा साख प्रणाली का आधार है। व्यापार के लेन–देन या तो नकद होते हैं या साख पर, साख से मुद्रा के प्रयोग में मितव्ययता होती है। परन्तु मुद्रा सम्पूर्ण साख का समर्थन करती है। कोई कमर्शियल बैंक पर्याप्त मुद्रा को रिजर्व में रखे बिना साख का निर्माण नहीं कर सकता। व्यापारी साख के जितने साधन अपनाते हैं, उन सब के पीछे नकदी की गारण्टी होती है।

(iii) सीमान्त उपयोगिताओं तथा उत्पादकताओं की समकार (Equalizer of Marginal Utilities and Productivities) : मुद्रा, उपभोक्ता के लिए सीमान्त उपयोगिताओं के समकार का कार्य करती है। उपभोक्ता का प्रमुख उद्देश्य यह होता है किवह जिन वस्तुओं को खरीदना चाहता है, उन पर दी हुई मुद्रा खर्च करके अपनी संतुष्टि को अधिकतम बनाए। क्योंकि वस्तुओं की कीमत उनकी सीमान्त उपयोगिता को प्रकट करती है और कीमतें मुद्रा में व्यक्त की जाती है।

(iv) राष्ट्रीय आय को मापना (Measurement of National Income): वस्तु–विनिमय प्रणाली के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय को मापना संभव नहीं था। मुद्रा ने यह काम संभव बना दिया है। यह तब होता है जब देश में उत्पादित विविध वस्तुओं तथा सेवाओं को मुद्रा के रूप में आंका जाता है।

(v) राष्ट्रीय आय का वितरण (Distribution of National Income): मुद्रा राष्ट्रीय आय के वितरण में भी सहायक होती है। मजदूरी, ब्याज, लाभ और किराये के रूप में मुद्रा साधनों का भुगतान करती है। मुद्रा इन कार्यों के आधार पर भुगतान करने वाले की ऋण–शोधन क्षमता (solvency) की गारण्टी प्रदान करती है और अपने धारक को यह छूट देती है किवह जैसे चाहे, मुद्रा का प्रयोग करे।

4. अन्य कार्य (Other Functions)

(i) मुद्रा निर्णयों में सहायक (Helpful in Money Decision) – मुद्रा एक संचय का साधन है और उपभोक्ता अपनी दैनिक आवश्यकताओं को मुद्रा के अनुसार पूरा करता है। यदि उपभोक्ता के पास साईकिल है परन्तु निकट भविष्य में उसे स्कूटर की आवश्यकता है, तो ऐसी स्थिति में उपभोक्ता संचय की गई मुद्रा और साईकिल बेचकर स्कूटर खरीद सकता है। इस प्रकार मुद्रा निर्णय करने में सहायक होती है।

(ii) समन्वय का आधार (Basis of Adjustment) – व्यापार को सुचारू रूप से चलाने के लिए मुद्रा बाजार एवं पूंजी बाजार में समन्वय मुद्रा द्वारा ही होता है। विभिन्न प्रकार की विदेशी सहायता का पुनर्भुगतान का मुल्य मुद्रा द्वारा मापा जाता है और विदेशी विनिमय में समन्वय भी मुद्रा द्वारा स्थापित होता है।

1.7 मुद्रा का महत्व

अपने स्थैतिक और गत्यात्मक कार्यों के कारण एक अर्थव्यवस्था के लिए मुद्रा का बहुत महत्व है। इसके स्थैतिक कार्य परंपरागत अथवा स्थैतिक कार्यों से

उत्पन्न होते हैं। अपने गत्यात्मक कार्य में मुद्रा प्रत्येक शहरी के जीवन में और पूरी आर्थिक प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

मुद्रा का स्थैतिक कार्य (Static Role of Money) – अपने स्थैतिक कार्य में, मुद्रा का महत्व वस्तु–विनिमय की कठिनइयों को निम्न ढंगो से दूर करने में है–

1. **आवश्यकताओं के दाहरे संयोग दूर करना (To Remove Double Coincidence of Wants) :** विनिमय के माध्यम का काम करने से मुद्रा आवश्यकताओं के दोहरे संयोग की जरूरत तथा वस्तु–विनिमय प्रणाली से संबद्ध असुविधाओं एवं कठिनाइयों को समाप्त करती है। मुद्रा के रूप में चलाने से वस्तु–विनिमय के अकेले लेन–देन को क्रय और विक्रय के अलग–अलग लेन–देन में कर दिया जाता है। वस्तुओं की वस्तुओं के साथ सीधी अदला–बदली करने, अर्थात $C \leftrightarrow C$ की बजाय, वस्तुओं का मुद्रा के साथ विनिमय किया जाता है और मुद्रा आगे अन्य वस्तुओं को खरीदती है, जैसे $C \rightarrow M \rightarrow C$ जहां C वस्तुएं हैं और M मुद्रा।

2. **मूल्य के सामान्य माप के रूप में (As a Common Measure of Value) :** मूल्य की इकाई के रूप में कार्य करते हुए, मुद्रा मूल्य का सामान्य माप बन जाती है। मूल्य के मानक के रूप में मुद्रा का प्रयोग करने से सेवों की कीमत संतरों में और संतरों की कीमत चावल में बताने की जरुरत नहीं रहती। मुद्रा मूल्य को मापने का मानक है और मूल्य को मुद्रा में व्यक्त करना कीमत है। भिन्न वस्तुओं की कीमतों को डालर, रुपये, पाउण्ड आदि की इकाइयों में व्यक्त किया जाता है। इस प्रकार वस्तुओं की कीमतों को एक देश की मुद्रा इकाई के अनुसार मापा जाता है। वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य उस देश की मुद्रा इकाई में मापने से बाजार में उनका विनिमय मूल्य मापना आसान हो जाता है।

3. **स्थगित भुगतानों के मानक के रूप में (As a Standard of Deferred Payments) :** वस्तु–विनिमय प्रणाली में भेड़ या गेहूं के रूप में कर्जा लेना आसान था, परन्तु इस प्रकार की नाशवान वस्तुओं का भविष्य में पुनर्भुगतान करना कठिन होता था। मुद्रा ने कर्जे लेना और कर्जों का पुनर्भुगतान करना दोनों को आसान बना दिया है क्योंकि मुद्रा टिकाऊ है। वस्तुओं की अविभाज्यता को भी मुद्रा दूर करती है।

4. **मूल्य संचय के रूप में (As a Store of Value) :** मूल्य के संचय का कार्य करते हुए मुद्रा वस्तु–विनिमय में वस्तुओं को स्टोर करने की समस्या का हल करती है। मुद्रा एक बहुत तरल संपत्ति है, जिसे बहुत लंबे समय तक बिना खराब, नष्ट या हानि हुए रखा जा सकता है।

5. **मूल्य के हस्तांतरण के रूप में (As a Transfer of Value):** वस्तु–विनिमय में पशुओं, चावल आदि के रूप में मूल्य का एक स्थान से दूसरे स्थान पर हस्तांतरण करना कठिन होता था। मुद्रा,मूल्य को एक स्थान से दूसरे स्थान पर हस्तांतरण करने की सुविधा प्रदान करके वस्तु–विनिमय की इस कठिनाई को भी दूर करती है। एक व्यक्ति ड्राफ्ट, विनिमय–पत्र, चैक आदि के द्वारा अपनी मुद्रा हस्तांतररित कर सकता है। वह अपनी परिसंपत्तियों का एक स्थान पर नकदी में बेंचकर दूसरे स्थान पर खरीद सकता है।

मुद्रा का गत्यात्मक कार्य (Dynamic Role of Money)

1. उपभोक्ता के लिये (To the Consumer) : उपभोक्ता को अपनी आय वस्तुओं तथा सेवाओं के रूप में नहीं अपितु मुद्रा में प्राप्त होती है। मुद्रा हाथ में रहने पर वह जब और जितनी मात्रा में जरूरत पड़ने पर अपनी मर्जी की वस्तु अथवा सेवा खरीद सकता है। प्रो. **राबर्ट्सन** ने लक्ष्य किया है, ''मुद्रा से मनुष्य, उपभोक्ता के रूप में, अपनी क्रयशक्ति का सामान्यीकरण कर सकता है और अपने अधिकतम अनुकूल बैठने वाले ढंग से समाज पर अपने अधिकर प्रकट कर सकता है।'' मुद्रा उपभोक्ता की सीमान्त उपयोगिताओं को बराबर करने का कार्य भी करती है। उपभोक्ता का प्रमुख उद्देश्य यह होता है किवह जिन विभिन्न वस्तुओं को खरीदना चाहता है उन पर अपनी सीमित आय को ऐसे ढंग से खर्च करे ताकि उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो। ऐसा करने के लिए अधिक उपयोगिता वाली वस्तुओं को कम उपयोगिता वाली वस्तुओं से स्थानापन्न किया जाता है। मुद्रा के द्वारा उपभोक्ता अपनी मर्जी की विविध वस्तुओं पर अपनी आय को उपयुक्त ढंग से वितरित कर सकता है।

2. उत्पादक के लिए (To the Producer) : उत्पादक के लिये भी मुद्रा उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी उपभोक्ता के लिए। वह अपने आगतों तथा निर्गतों के मूल्य का हिसाब मुद्रा में रखता है। वह जितना कच्चा माल खरीदता है, वर्करों को जो मजदूरी का भुगतान करता है, जो पूंजी उधार लेता है, जो किराया देता है, विज्ञापन पर जो खर्च करता इत्यादि सभी उत्पादन के खर्चे हैं जिन्हें वह अपनी बहियों में दर्ज करता है। वस्तुओं को बेचकर प्राप्त होने वाली मुद्रा उसकी बिक्री है। दोनों में जो अन्तर हो वह उसका लाभ (या हानि) होगा। इस प्रकार उत्पादक मुद्रा की सहायता से अपनी उत्पादन की लागतों और प्राप्तियों का ही हिसाब नहीं लगाता, बल्कि अपने लाभों का भी हिसाब लगाता है। जैसा कि प्रो. राबर्ट्सन ने लक्ष्य किया है, ''मुद्रा की सहायता से मनुष्य उत्पादन के रूप में अपने कार्य पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकता है और इस प्रकार वस्तुओं और सेवाओं के सामान्य प्रवाह को प्रभावशाली ढंग से बढ़ा सकता है।

3. श्रम का विशिष्टीकरण तथा विभाजन (Specialisation and Division of Labour) : मुद्रा आधुनिक उत्पादन में बड़े पैमाने पर विशिष्टीकरण तथा श्रम के विभाजन में बहुत महत्वपूर्ण कार्य करती है। ''यदि प्रत्येक व्यक्ति उन उत्पादनों को अपने उद्योग के लिये जरूरी सामग्री और अपने उपभोग के लिये जरूरी वस्तुऐं वस्तु–विनिमय करने में अधिकांश समय और शक्ति लगाता रहे, तो विशिष्टीकरण और श्रम का वह विभाजन असम्भव हो जायेगा, जिस पर हमारा आर्थिक ढांचा टिका हुआ है।'' वास्तव में बड़े पैमाने पर उत्पादन मुद्रा के माध्यम से ही सम्भव है। सभी प्रकार के आगत जैसे कच्चा माल, श्रम मशीनरी इत्यादि मुद्रा से खरीदे जाते हैं और सभी निर्गत मुद्रा के बदले बेचे जाते हैं। प्रो. पीगू ने ठीक ही लक्ष्य किया है, ''आधुनिक जगत् में उद्योग पूर्णतया मुद्रा के वस्त्र में लिपटा है।''(In the modern world, industry is closely folded in a garment of money)

4. साख के आधार के रूप में : आधुनिक व्यापार साख पर आधारित है और साख मुद्रा पर आधारित है। मुद्रा के सभी लेन–देन चैकों, ड्राफ्टों, हुंडियों आदि के माध्यम से होते हैं। ये साख के साधन हैं जो अपने आप में मुद्रा नहीं हैं। बैंक जमा ही मुद्रा होती है। बैंक इस तरह के साख के साधन जारी करते हैं और

साख का निर्माण करते हैं। साख का निर्माण आगे निधियों को जमाकर्ताओं से निवेशकर्ताओं तक हस्तान्तरण करने में प्रमुख कार्य करता है। इस प्रकार साख, बैंक जमाओं के रूप में विद्यमान सार्वजनिक बचतों के आधार पर, निवेश का विस्तार करती है और अर्थव्यवस्था के भीतर आय के चक्रीय प्रवाह को बनाए रखने में सहायक होती है।

5. पूंजी निर्माण के साधन के रूप में : मुद्रा पूंजी निर्माण का साधन है। मुद्रा तरल परिसम्पत्ति है जिसे संग्रह किया जा सकता है और मुद्रा संग्रह करने का मतलब है बचतें और बचतें ब्याज अर्जित करने के लिए बैंक में जमा कराई जाती है। बैंक इन बचतों को आगे पूंजी पदार्थों में निवेश के लिए व्यापारियों को देता है ताकि वे विभिन्न स्त्रोतों और स्थानों से कच्चा माल खरीद सकें। इसे पूंजी गतिशील बनती है जिससे पूंजी निर्माण और आर्थिक वृद्धि होती है।

6. आर्थिक वृद्धि की सूचक के रूप में : मुद्रा पूंजी निर्माण का ही साधन नहीं है अपितु आर्थिक वृद्धि की सूचक भी हैं। राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय तथा आर्थिक कल्याण वृद्धि के सूचक है। मुद्रा के रूप में ही इनका हिसाब लगाया जाता है और मुद्रा के रूप में ही इन्हें मापा जाता है।

7. आय के वितरण और गणना में : आधुनिक अर्थव्यवस्था में उत्पादन के विविध साधनों के पुरस्कारों का भुगतान मुद्रा में कियाजाता है। मजदूर को मजदूरी मिलती है, पूंजीपति को ब्याज मिलता है, भूमिपति को किराया और उद्यमी को लाभ मिलता है। इन सबको इनका पुरस्कार मुद्रा में प्राप्त होता है। संगठनकर्ता प्रत्येक साधन की सीमान्त उत्पादकता का हिसाब मुद्रा में लगाता है और उसके अनुसार भुगतान कर सकता है।

8. राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में : मुद्रा, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को सुविधाजनक बनाती है। विनिमय के माध्यम, मूल्य के भंडार तथा मूल्य के हस्तांतरण के रूप में मुद्रा का प्रयोग होने से केवल देश के भीतर ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय रूप से भी वस्तुओं का विक्रय संभव हो गया है। व्यापार को सुगम बनाने के लिए मुद्रा एवं पूंजी बाजार स्थापित करने में मुद्रा सहायक हुई है। बैंक, वित्तीय संस्थाएं, शेयर बाजार, मंडियां, अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं आदि, मुदा अर्थव्यवस्था के आधार पर चलती हैं और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सहायता देती हैं।

9. अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्यायें सुलझाने में : मुद्रा अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्याएं सुलझाने में सहायक होती हैः जैसे किस चीज का उत्पादन किया जाए, किसके लिए उत्पादन किया जाए, कैसे उत्पादन किया जाए, और कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए। इसका कारण यह है कि मुद्रा अपने कार्यों के आधार पर उपभोक्ताओं, उत्पादकों और सरकार के बीच वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रवाह को सुगम बना देती है। प्रो. **राबर्टसन** के अनुसार ''यदि मुद्रा अर्थव्यवस्था विद्यमान है, तो समाज यह पता लगा सकता है कि लोगों को किस चीज की और कितनी चीज की जरूरत है। इसलिए समाज यह निर्णय कर सकता है कि किस चीज का और कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए और इस प्रकार समाज अपनी सीमित उत्पादक शक्ति का अधिकतम लाभ उठा सकता है।''

10. सरकार के लिए : सरकार के लिए मुद्रा का बहुत ही महत्व है। मुद्रा करों, जुर्मानों, फीसों और सरकार द्वारा लोगों को प्रदान की गई सेवाओं की कीमतों की वसूली को सुगम बना देती है। यह सार्वजनिक ऋणों को जारी करने, उनका प्रबन्ध करने, और विकास–तथा–विकासेत्तर कार्यों पर सरकारी खर्च को सरल बना देती है।

11. समाज के लिए : मुद्रा कई सामाजिक लाभ प्रदान करती है। मुद्रा के आधार पर ही समाज में साख का उच्च ढांचा निर्मित होता है जो उपभोग, उत्पादन, विनिमय और वितरण को सरल बनाता है। प्रो. डेवन पोर्ट का मत है, ''लगभग सभी बड़े राजनीतिक प्रश्न और अन्तर्राष्ट्रीय जटिलताएं मुद्रा मानक पर ही टिकी हैं।''

1.8 मुद्रा के दोष

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के मतानुसार मुद्रा तो वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय को आसान बनाने के लिए सुविधाजनक औजार मात्र है, परन्तु उनकी उत्पादित मात्राओं की निर्धारक नहीं है। मुद्रा के दोष मुद्रा के आवरण में छिपे हैं और कई बार पर्दे के पीछे जो होता है वह उससे नितान्त भिन्न होता है जो सामने होता हुआ लगता है। अब अर्थशास्त्री मुद्रा को एक आवरण मात्र नहीं समझते, अपितु उसे सम्पत्ति और कल्याण को बढ़ावा देने का अत्यन्त मूल्यवान सामाजिक साधन भी मानते हैं।

(क) आर्थिक दोष (Economic Defects):

मुद्रा में निम्न आर्थिक दोष पाये जाते हैं:

1. मुद्रा के मूल्य में अस्थिरता (Instability in the Value of Money):मुद्रा का पहला दोष यह है कि इसका मूल्य कालपर्यन्त स्थिर नहीं रहता। जब मुद्रा का मूल्य गिरता है तो उसका मतलब होता है कीमतों का स्तर बढ़ना अथवा स्फीति। इसके विपरीत मुद्रा का मूल्य बढ़ने का अर्थ है कीमतों का गिरना अथवा अवस्फीति। मुद्रा की पूर्ति बढ़ने या घटने से यह परिवर्तन होते हैं।यदि मुद्रा के मूल्य में बहुत अधिक परिवर्तन हो जाएं तो वे हानिकारक सिद्ध होते हैं।

स्फीति अथवा मुद्रा का मूल्य घटने से ऋणदाताओं और उपभोक्ताओं को प्रत्यक्ष उवं तत्काल नुकसान होता है। इसके विपरीत, अवस्फीति अथवा मुद्रा का मूल्य बढ़ने से उत्पादन, रोजगार तथा आय का स्तर गिर जाता है। इस प्रकार मुद्रा के मूल्य की अस्थिरता का उपभोक्ताओं, उत्पादकों तथा समाज के अन्य वर्गों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2. सम्पत्ति तथा आय का असमान वितरण (Unequal Distribution of Wealth and Income):मुद्रा का दूसरा दोष यह है कि मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप सम्पत्ति और आय के वितरण में असमानता उत्पन्न हो जाती है। स्फीति अथवा अवस्फीति से कुछ को लाभ होता है

और दूसरों को हानि, जिसके परिणामस्वरूप सम्पत्ति तथा आय का पुनर्वितरण होता है।

3. चक्रीय उतार–चढ़ाव (Cyclical Fluctuations):मुद्रा की संस्था का एक और दोष यह है कि इससे अर्थव्यवस्था में चक्रीय उतार–चढ़ाव आते हैं। जब मुद्रा की पूर्ति बढ़ती है तो तेजी आती है और जब मुद्रा की पूर्ति घटती है तो मन्दी आती है। तेजी के दौरान उत्पादन, रोजगार और आय बढ़ती है। मन्दी के दौरान उत्पादन, रोजगार और आय घटती हैं। इस तरह के चक्रीय उतार–चढ़ाव से लोगों पर अकथ मुसीबतें आ पड़ती हैं।

4. काला धन (Black Money):अधिक मुद्रा काले धन को बढ़ावा देती है। लोग अधिक आय पर सरकार को कम कर देना पसन्द करते हैं। ऐसे लोग धर्म के नाम पर पूजा–स्थल जगह–जगह बनवाते हैं। कालेज खुलवाकर, बाल कल्याण आश्रम को काफी मोटी रकम दान देकर सरकार से अपनी आय पर कर की दर कम करवा लेते हैं।

5. समाज में वर्ग संघर्ष (Class Struggle in Society) : काले धन के कारण समाज में कुछ व्यक्ति बहुत धनी हो जायेंगे और कुछ लोग काले धन के कारण मध्यमवर्ग से निर्धनवर्ग के हो जायेंगे। यदि समाज में अमीरों का प्रभुत्व बढ़ जायेगा, तब ऐसी स्थिति में जमाखोरी, महंगाई, गरीबी, बेरोजगारी और भुखमरी बढ़ जायेगी। मार्क्स (Marx)के अनुसार, ''समाज में मुद्रा की धनी वर्ग की तरफ पकड़ वर्ग संघर्ष का कारण बनती है।''

6. पूंजीकरण की समस्या(Problem of Capitalization) : अधिक मुद्रा समाज के औद्योगिक क्षेत्र में लगी होती है जहां लाभ कमाना ही प्रमुख उद्देश्य है। लेकिन वस्तु के गुणात्मक स्तर की तरफ ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता। इससे घटिया किस्म की वस्तुएं अधिक मात्रा में बनती हैं।

परन्तु उपरोक्त दोषों का यह मतलब नहीं कि हम फिर से वस्तु–विनिमय युग में चले जाएं और मुद्रा का प्रयोग छोड़ दें। वास्तव में मुद्रा के दोष तभी उत्पन्न होते हैं जब मुद्रा का अनियंत्रित ढंग से प्रयोग कियाजाता है। जैसा प्रो. राबर्ट्सन ने लक्ष्य किया है, ''यद्यपि मुद्रा मानव–जाति के लिए अनेक वरदानों का स्त्रोत है, तथापि यदि इसे नियंत्रित न रखा जाए तो यह अभिशाप और मुसीबत की जड़ बन जाती है।''

(ख) गैर–आर्थिक दोष (Non-Economic Defects):

मुद्रा के जिन आर्थिक दोषों का उल्लेख ऊपर किया गया है, उनके अतिरिक्त मुद्रा की संस्था ने समाज का नैतिक और राजनैतिक आचरण बिगाड़ दिया है। इससे भौतिकवाद पर आधारित भ्रष्टाचार, नैतिक पतन, राजनैतिक दिवालियापन और धर्म में कृत्रिमता आती है। वास्तव में मुद्रा ही ''चोरी, बेईमानी और धोखाधड़ी की जड़ है।मजे की बात यह है कि मुद्रा के प्रेम को तृष्णा नाम दिया गया है और उसे बुरी बला बताया गया है।''

लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि ऊपर बतायी गयी अधिकतर बुराइयां मुद्रा के अनुचित प्रयोग से उत्पन्न होती हैं, ये मुद्रा की स्वयं की बुराइयां नहीं है। अतः मुद्रा का गुलाम बनने और परेशानियों को निमंत्रित करने के बजाय इसका एक वफादार नौकर की तरह प्रयोग करना अत्याधिक आवश्यक है। ठीक ही कहा गया है कि मुद्रा, जो मनुष्य के लिए इतने अधिक वरदानों का स्त्रोत है, यदि नियंत्रित न की जाय तो संकट और उलझन का एक स्त्रोत बन जाती है।

बोध प्रश्न ख

1. मुद्रा के कुछ प्रमुख कार्यों को विस्तारपूर्वक बताएं।

....

....

....

....

2. मुद्रा के प्रमुख दोषों का अध्ययन कर व्याख्या करें।

....

....

....

....

3. निम्नलिखित कथनों में से कौन सही है और कौन गलत?

(i) मुद्रा मूल्य की सही माप है।

(ii) पूंजी को गतिशील बनाकर मुद्रा बड़े पैमाने के उत्पादन में सहायक होती है।

(iii) अपनी पसंद के उपभोग के चुनाव में मुद्रा सहायक होती है।

(iv) गरीबों के शोषण का एकमात्र कारण मुद्रा है।

(v) देशीय व्यापार और विदेश व्यापार इन देनों ही के विस्तार में मुद्रा सहायक होती है।

4. कालम B में दिए गए मुद्रा के कार्यों में से कौन सा कार्य होगा जब निम्नलिखित बात हो (कॉलम Aमें दी गई कियाएं)

	कॉलम A		**कॉलम B**
(क)	आपको बताया गया कि चीनी की कीमत 8 रु. किलो है।	**(i)**	विनिमय का माध्यम
(ख)	आप 10 रु. देकर एक किलो चीनी खरीदते है।	**(ii)**	मूल्य का संचय
(ग)	आप डाकघर से 100 रु. का राष्ट्रीय बचत सर्टीफिकेट खरीदते है जिसका भुगतान 6 वर्ष बाद होगा।	**(iii)**	मूल्य की माप
(घ)	एक व्यक्ति अपने वेतन में से अपनी बचत के रूप में 100 रु. रखता है।	**(iv)**	आस्थगित भुगतानों का मान

1.9 सारांश

मौद्रिक अर्थव्यवस्था आधुनिक अर्थव्यवस्था का केन्द्रबिन्दु है जिसमें मुद्रा का प्रयोग जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यापक रूप से किया जाता है। मुद्रा के आगमन से पहले विनिमय की वस्तु–विनिमय प्रणाली थी। वस्तु–विनिमय से बहुत सी समस्याएं उत्पन्न हुईं जिनसे न केवल विनिमय की प्रक्रिया कठिन हो गयी बल्कि बाजार का आकार छोटा होने के कारण उत्पादकों को भी बहुत छोट पैमाने पर उत्पादन करने के लिए मजबूर होना पड़ा। वस्तु विनिमय की इन विषमताओं के कारण अन्त में एक सामान्य विनिमय के माध्यम का आविष्कार हुआ जिसे मुद्रा कहते है।

मुद्रा कोई भी वह वस्तु हो सकती है जो आम सहमति से चुनी गई हो और जो भुगतान के साधन के रूप में सामान्यतया स्वीकार्य हो। मुद्रा को कई अवस्थाओं से गुजरना पड़ा, जैसे वस्तु–मुद्रा, धातु–मुद्रा, कागजी मुद्रा, बैंक मुद्रा, आदि। आजकल मुद्रा पूर्ति का अधिकांश भाग कागजी मुद्रा और बैंक मुद्रा के रूप में है।

आज के समय में मुद्रा केवल एक दावे के रूप में प्रचलित है और इसका यथार्थ मूल्य (intrinsic value) लगभग शून्य है। इसे व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है। क्योंकि यह अधिदिष्ट मुद्रा है, (यानि निर्गमन प्राधिकरण का विधिक समर्थन) अन्यथा यह कागज का केवल एक टुकड़ा मात्र है। मुद्रा की माँग इसलिए होती है कि यह पूर्णतया तरल परिसम्पत्ति है और इसलियें धन को संचित करने का सबसे सुविधाजनक रूप है। धन को संचित करने का दूसरा रूप मुद्रावत परिसम्पत्तियां हैं जो बहुत तरल है लेकिन पूर्णतया तरल नहीं है, क्योंकि इनसे वस्तुओं और सेवाओं का लेन–देन करने से पहले इन्हें मुद्रा में परिवर्तित करना होता है।

यद्यपि मुद्रा की स्वयं में कोई उपयोगिता नहीं है क्योंकि यह स्वयं कुछ उत्पादित नहीं करती, फिर भी मुद्रा बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसने उत्पादन बढ़ाने में बहुत सहायता की है। मुद्रा का महत्व उन कार्यों से पता चलता है जो यह करती है। मुद्रा के सबसे महत्वपूर्ण कार्य हैः (i)विनिमय का माध्यम (ii)मूल्य का माप, (iii)स्थगित भुगतानों का मान, (iv)मूल्य पर संचय। इन चार कार्यों के अतिरिक्त यह कई अन्य तरीकों से भी सहायक है जैसे राष्ट्रीय आय का वितरण, मूल्य का हस्तांतरण, साख निर्माण का आधार, उपयोगिता और लाभों को अधिकतम करना और परिसम्पत्तियों को तरलता और एकरूपता प्रदान करना है। आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यस्था पर मुद्रा का प्रभाव इतना अधिक हुआ है कि कोई इसे एक दिन के लिये भी समाप्त करने की कल्पना नहीं कर सकता क्योंकि ऐसा करने से आर्थिक क्रियाओं का पूरी तरह से विघटन हो जाएगा।

मुद्रा ने आर्थिक क्रियाओं के सभी क्षेत्रों, जैसे उपभोग, उत्पादन, विनिमय, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, लोक–वित्त आदि को प्रभावित किया है। मुद्रा के प्रयोग का शुद्ध परिणाम वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में तीव्र वृद्धि का होना है जिससे लोगों के उपभोग का स्तर ऊंचा हुआ है। इसके अतिरिक्त, इसने अधिक श्रमविभाजन, विशिष्टीकरण और तकनीकी परिवर्तनों द्वारा कार्यक्षमता को बढ़ाने में

भी सहायता की है, जिससे राष्ट्रीय आय का स्तर ऊंचा हुआ है। मुद्रा ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विस्तार में अत्यधिक सहायता की है।

तथापि, मुद्रा ने ऐसी स्थितियां भी पैदा की है जिससे श्रम के शोषण के अधिक अवसर हो गये और इससे वर्ग संघर्ष और औद्योगिक अशांति हुई। मुद्रा के प्रयोग से सभी प्रकार की सामाजिक बुराइयां भी बढ़ी, जैसे चोरी, डकैती, धोखेबाजी आदि, क्योंकि मुद्रा ने लालच और लोभ को प्रोत्साहित किया। इन सबके अतिक्ति मुद्रा के मूल्य में तीव्र उतार–चढ़ाव व्यापार और उद्योग के लिये हानिकारक सिद्व हो सकते है। लेकिन इस बारे में दो राय नहीं हो सकती कि मानव–जाति के लिये मुद्रा अभिशाप कम और वरदान अधिक साबित हुई है।

1.10 उपयोगी शब्दावली

- **अधिदिष्ट मुद्रा (Fiat money) :** मुद्रा जिसे लोगों को स्वीकार करना होता है क्योंकि इसे कानूनी समर्थन प्राप्त होता है।
- **यथार्थ मूल्य (Intrinsic Value) :** धातु के रूप में सिक्के का मूल्य।
- **वस्तु–विनिमय प्रणाली (Barter System) :** वस्तुओं और सेवाओं का प्रत्यक्ष और परस्पर विनिमय की प्रणाली।
- **चैक द्वारा निकाले जाने वाले निक्षेप (Chequable Deposits) :** बैंक में वे निक्षेप जो चैक के निर्गमन द्वारा किसी भी समय निकाले जा सकते है।
- **श्रम का विशिष्टीकरण (Specialisation of Labour) :** उत्पादन की वह प्रणाली जिसमें एक श्रमिक उत्पादन प्रक्रिया के एक वि”ोष भाग में कार्य करता है और बाकी प्रक्रिया दूसरों द्वारा की जाती है।
- **तरलता (Liquidity) :** परिसंपत्ति का वह गुण जिससे इसे तुरंत किसी अन्य परिसंपत्ति में परिवर्तित किया जा सकता है।

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3) i) आवश्यकताओं के दोहरे संयोग का अभाव

ii) मूल्य की एक सामान्य माप की समस्या

iii) वस्तुओं के उप–विभाजन के कारण हानि

iv) धन के संचय में कठिनाई

4) i) सही ii) गलत iii) सही iv) सही

ख 3) i) गलत ii) सही iii) सही iv) गलत

v) सही

4) क) iii), ख) i), ग) iv), घ) ii)

1.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 मुद्रा क्या है?

प्रश्न–2 वस्तु–विनिमय प्रणाली की असुविधाएं संक्षेप में बताइए और मुद्रा के विकास का वर्णन कीजिए।

प्रश्न–3 मुद्रा की प्रकृति और कार्यों का विवेचन कीजिए।

प्रश्न–4 आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में मुद्रा का महत्व बताइए। क्या मुद्रा को समाप्त किया जा सकता है?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)
- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकेषन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)
- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीष कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, ॆठच्च पब्लिकेषन 2016)
- प्रो0 षिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेषन 2017)
- एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
- के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
- शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016)
- एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

****

इकाई–2 मुद्रा की माँग और पूर्ति

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मुद्रा की माँग का अर्थ

2.3 मुद्रा की माँग के सिद्वांत

- **2.3.1** क्लासिकी विचारधारा
- **2.3.2** नव क्लासिकी सिद्वांत या कैम्ब्रिज समीकरण विचारधारा
- **2.3.3** केन्ज़ का मुद्रा की माँग का सिद्वांत

2.4 मुद्रा की पूर्ति

2.5 मुद्रा का संचलन–वेग

2.6 सारांश

2.7 उपयोगी शब्दावली

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- ❖ मुद्रा की माँग और पूर्ति की संकल्पनाओं को समझ सकें,
- ❖ यह जान सकें कि मुद्रा की माँग क्या है और यह क्यों की जाती है,
- ❖ मुद्रा की माँग के निर्धारण करने वाले तत्वों को बता सकें,
- ❖ मुद्रा की माँग से सम्बन्धित विभिन्न सिद्वांतों के मूल अन्तर को समझ सकें, और
- ❖ मुद्रा पूर्ति की परम्परागत और आधुनिक संकल्पनाओं में भेद कर सकें।

2.1 प्रस्तावना

पूर्व में आपने मुद्रा की प्रकृति और अर्थव्यवस्थाओं की प्रक्रिया में मुद्रा के महत्व, विनिमय का माध्यम, माप की इकाई, स्थगित भुगतानों का मान और मूल्य का संचय आदि के बारे में अध्ययन किया है। मुद्रा का इन कार्यों के लिये प्रयोग करने का मूल कारण लोग मुद्रा को एक ऐसा साधन समझते हैं जिससे वस्तुओं

और सेवाओं को प्राप्त किया जा सकता है। मुद्रा की भी माँग और पूर्ति होती है। मुद्रा की माग तो मुख्य रूप से सामान्य जनता द्वारा की जाती है जबकि इसकी सप्लाई सरका और देश की बैकिंग प्रणाली द्वारा की जाती है।

2.2 मुद्रा की माँग का अर्थ (Meaning of Demand for Money)

मुद्रा की माँग , मुद्रा के दो महत्वपूर्ण कार्यों से उत्पन्न होती है। प्रथम यह कि मुद्रा विनिमय के माध्यम का कार्य करती है और दूसरा कि मुद्रा मूल्य का संचय है। अतः व्यक्ति और व्यापारी मुद्रा को आंशिक रूप से नकदी में और आंशिक रूप से परिसम्पत्तियों में रखना चाहते हैं।

मुद्रा की माँग प्रत्यक्ष तौर से आय स्तर से संबद्ध होती है। आय–स्तर ऊंचा होने पर, मुद्रा की माँग भी अधिक होगी। दूसरा 'स्थानापत्ति' (substitution)दृष्टिकोण है जो परिसम्पत्तियों की सापेक्ष आकर्षणशीलता से संबंधित है जिनको मुद्रा से स्थानापन्न किया जा सकता है। जब ब्याज दरों के गिरने से बांडों जैसी वैकल्पिक परिसम्पत्तियां आकर्षक नहीं रहतीं, तो लोग अपनी परिसम्पत्तियों को नकदी में रखने पर अधिमान देते हैं, तथा मुद्रा की माँग बढ़ जाती है और विलोमशः। 'माप' और 'स्थानापत्ति' दृष्टिकोणों को मिलाकर मुद्रा की माँग की प्रकृति की व्याख्या की गई है जिसे लेन–देन माँग , सतर्कता माँग और सट्टा माँग में बांटा गया है। मुद्रा की माँग के तीन मत हैं– क्लासिकी, केन्ज़ीय तथा केन्ज़ीपरान्त। इन तीनों मतों की निम्न प्रकार विवेचना की गई है।'

मुद्रा एक राशि है। मुद्रा का स्टॉक किसी भी एक समय पर मुद्रा की मात्रा है। परिसम्पत्ति के रूप में मुद्रा की माँग इसलिये की जाती है कि लोग इसे रखना चाहते हैं। मुद्रा को रखने का उद्देश्य और इसे रखने की अवधि अलग–अलग व्यक्तियों के लिये अलग–अलग हो सकती है। एक व्यक्ति वस्तुओं और सेवाओं पर खर्च करने के लिये मुद्रा रख सकता है। वह जमाखोरी (hoarding)के लिये भी इसकी माँग कर सकता है (यानि निष्क्रिय नकद रखने के लिये)।

माँग का सिद्धांत निम्नलिखित दो मूल प्रश्नों से सम्बन्धित हैः

(1) एक व्यक्ति/परिवार को मुद्रा क्यों चाहिये?

(2) मुद्रा की माँग के मुख्य निर्धारक तत्व क्या है?

इन प्रश्नों के विभिन्न स्पष्टीकरण ही मुद्रा की माग के विभिन्न सिद्धांत हैं। अब इन सिद्धांतों पर एक–एक करके विचार किया जा रहा है।

2.3 मुद्रा की माँग के सिद्धांत (Theories of Demand for Money)

मुद्रा की माँग के बारे में दो विचारधाराएं हैः क्लासिकी और केन्ज़ की विचारधराएं। क्लासिकी विचारधारा से सम्बन्धित नव–क्लासिकी सिद्धांत है जो कि उन्हीं मान्यताओं पर आधारित है लेकिन इसमें निर्धारक तत्व क्लासिकी सिद्धांत से भिन्न हैं।

2.3.1 क्लासिकी विचारधारा

क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा के माँग सिद्धांत को स्पष्टतौर से निर्माण नहीं किया बल्कि उनके विचार मुद्रा के परिमाण सिद्धांत में पाये जाते हैं। उन्होंने मुद्रा के प्रचलन वेग (velocity of circulation)के रूप में मुद्रा की लेन–देन माँग पर बल दिया। ऐसा इसलिए कि मुद्रा विनिमय के माध्यम का कार्य करती है और वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय को सुगम बनाती है। फिशर के 'विनिमय के समीकरण' में

$MV = PT$

जहां Mमुद्रा की कुल मात्रा है, Vइसका चलन वेग, Pकीमत स्तर तथा Tमुद्रा में विनिमय की गई कुल वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा। इस समीकरण में PTमुद्रा की माँग को व्यक्त करता है जो अर्थव्यवस्था में किये गए लेन–देन के मूल्य पर निर्भर करता है। MVमुद्रा पूर्ति को व्यक्त करता है जो दी हुई है, और संतुलन में मुद्रा की माँग के बराबर होती है। इस प्रकार समीकरण बन जाता हैः

$MV = PT$

क्लासिकी अर्थशास्त्री से के नियम में विश्वास रखते थे, जिसके अनुसार पूर्ति अपनी माँग स्वयं उत्पन्न करती है, यह मानते हुए कि अर्थव्यवस्था में पूर्ण राजगार आय–स्तर पाया जाता है। इस प्रकार, फिशर के मत में मुद्रा की माँग लेन–देन के स्तर का एक स्थिर अनुपात है जिसका आगे राष्ट्रीय आय के स्तर के साथ एक स्थिर संबंध पाया जाता है।

2.3.2 नव–क्लासिकी सिद्धांत या कैम्ब्रिज समीकरण विचारधारा

मुद्रा के लिए केम्ब्रिज माँग समीकरण हैः

$Md = kPY$

Mdमुद्रा की माँग है जो अर्थव्यवस्था में संतुलन की स्थिति में मुद्रा की पूर्ति (Ms)के अवश्य बराबर होनी चाहिए ($Md = Ms$)। k वास्तविक मौद्रिक आय (PY)का भाग है जिसे लोग नकदी तथा माँग जमा में रखना चाहते हैं, और सफल वास्तविक आय है। यह समीकरण बताता है कि अन्य बातें समान रहने पर, सामान्य रूप में मुद्रा की माँग प्रत्येक व्यक्ति के नकदी आय–स्तर के समानुपातिक होगी।

आलोचनाएं

इसकी आलोचना इस बात से उत्पन्न होती है कि यह मुद्रा के मूल्य संचय (store of value) कार्य की उपेक्षा करता है। क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने केवल मुद्रा के विनिमय के माध्यम कार्य के ऊपर ही बल दिया जिसने क्रय और विक्रय की सुगमता के माध्यम का कार्य किया। उनके लिए अर्थव्यवस्था में मुद्रा तटस्थ (*neutral*) भूमिका निभाती थी। यह एक गलत धारणा थी क्योंकि मुद्रा परिसम्पत्ति कार्य भी करती है जब यह बिलों, बांडों, प्रतिभूतियों, ऋण पत्रों, वास्तविक परिसम्पत्तियों जैसे घर, कार, टी.वी. आदि अन्य प्रकार की परिसम्पत्तियों में परिवर्तित कर दी जाती है।

मुद्रा की माँग का शुरू का नव–क्लासिकल सिद्धांत कैम्ब्रिज अर्थशास्त्रियों एल्फ्रेड मार्शल (Alfred Marshall)और ए.सी. पिगू (A.C. Pigou)ने प्रारम्भ किया गया था।

कैम्ब्रिज विचारधारा के अनुसार 'मुद्रा की माँग ' (M^d)और 'राष्ट्रीय उत्पाद के मौद्रिक मूल्य' (Y)में एक आनुपातिक सम्बन्ध होता है। इसलिए मुद्रा का माँग का समीकरण निम्नानुसार होता है।

$M^d = K Y$ ....

उपरोक्त समीकरण में K एक अचर राशि है जिसका मूल्य शून्य से अधिक व 1 से कम है यानि 0<K<1। इस समीकरण को निम्न रूप में भी लिखा जा सकता हैः

$$K = \frac{M^d}{Y}$$

$\frac{M^d}{Y}$ का अर्थ है मुद्रा की आय के प्रति रु. माँग (प्रति समय इकाई)। दूसरे शब्दों में, कैम्ब्रिज अर्थशास्त्रियों के समीकरण में K औसत रूप में आय का वह अनुपात दर्शायेगा जिसे लोग मुद्रा के रूप में रखना चाहेंगे। इसे निम्न चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है। चित्र में मुद्रा की माँग में परिवर्तन का Y में परिवर्तन से प्रत्यक्ष

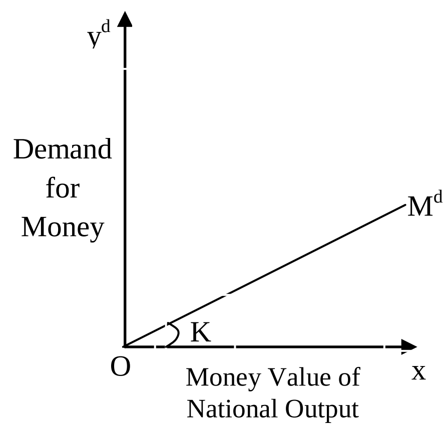

आनुपातिक सम्बन्ध दर्शाया गया है, इन दोनों के बीच अनुपात Kके बराबर है। कैम्ब्रिज समीकरण में मुद्रा की माँग को केवल मौद्रिक आय के फलन के रूप में दिखाया गया है।

समीकरण को इस प्रकार भी लिखा जा सकता है।

$M^d = K.P.Y.$

इसमेंP = सामान्य कीमत स्तर

Y = वास्तविक राष्ट्रीय आय

बोध प्रश्न क

1. मुद्रा की माँग की संकल्पना का विवेचना कीजिए।

....
....
....
....

2. मुद्रा की माँग के संबंध में क्लासिकी और नव–क्लासिकी सिद्धांतों के बीच समानताएं और असमानताएं बताइए।

....
....
....
....

3. निम्नलिखित कथनों में से कौन सही है और कौन गलत।

(i) मुद्रा के लिए मुख्य रूप से माँग जनता की ओर से होती है।

(ii) क्लासिकी सिद्धांत यह मानकर चलता है कि मुद्रा की माँग

(iii) इसलिए की जाती है कि यह अस्थगित भुगतानों के माध्यम का कार्य करती है।

(iv) कैम्ब्रिज विचारधारा के अनुसार मुद्रा के लिए माँग में परिवर्तन उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में राष्ट्रीय उत्पाद के मुद्रा मूल्य में परिवर्तन होता है।

(v) आम जनता मुद्रा को ऐसी परिसंपत्ति मानती है जिससे वस्तुएं और सेवाएं खरीदी जा सकती है।

2.3.3 कीन्स का मुद्रा की माँग का सिद्धांत (Keynesian Theory of Demand for Money)

कीन्स का मतः तरलता अधिमान

कीन्स ने अपनी पुस्तक General Theoryमें मुद्रा की माँग के लिए एक नया शब्द ''तरलता अधिमान'' प्रयोग किया उसने तीन उद्देश्य सुझाएं जो अर्थव्यवस्था में मुद्रा की माँग लाते हैंः (1) लेन–देन माँग , (2) सतर्कता माँग ,(3) सट्टा माँग ।

(1) मुद्रा की लेन–देन माँग (Transactions Demand for Money)

मुद्रा की लेन–देन माँग वस्तुओं और सेवाओं के लगातार भुगतान करने के लिए मुद्रा के विनिमय–माध्यम कार्य से उत्पन्न होती है। केन्ज़ के अनुसार 'निजी और व्यापार विनिमय के चालू लेन–देनों की नकदी के लिए आवश्यकता है।'' अन्य उद्देश्य का मतलब होता है ''आय की प्राप्ति और उसके भुगतान के बीच के समय को पूरा करना।'' इसी प्रकार व्यापारिक उद्देश्य का प्रयोजन यह होता है कि ''व्यवसाय लागतों के खर्च करने तथा विक्रय से प्राप्त आय के बीच के समय को पूरा करना।'' यदि खर्च करने और आय प्राप्ति के बीच का समय कम होगा, तो लोग चालू लेन–देन के लिए कम नकदी रखेंगे, और विलोमशः। मुद्रा की लेन–देन की माँग में परिवर्तन होते रहेंगे जो आय प्राप्त करने वालों और व्यापारियों की प्रत्याशाएं पर निर्भर करेंगे। ये प्रत्याशाएं आय के स्तर, ब्याज दर, व्यापार आर्वत (business turnover), आय की प्राप्ति और उसके भुगतान के बीच सामान्य समय, आदि पर निर्भर करती है। ये तत्व दिये होने पर मुद्रा की लेन देन माँग आय स्तर का प्रत्यक्ष समानुपातिक और धनात्मक फलन है, और इसे इस प्रकार भी व्यक्त किया जाता है, $L_1 = Ky$।

L_1मुद्रा की लेन–देन माँग है, k आय का भाग है जो लेन–देन उद्देश्य के लिए रखा जाता है, और Yआय है। इस समीकरण को नीचे चित्र में चित्रित किया गया है। जहां kY रेखा लेन–देन माँग और आय स्तर में रेखीय (linear) और समानुपातिक संबंध व्यक्त करता है। मान लीजिए कि k=1/4 और रु. 1000 करोड़ तो लेन–देन शेषों की माँग A पर रु. 250 करोड़ रु. होगी। आय के बढ़कर रु. 1200 करोड़ होने पर, लेन–देन माँग kY वक्र के बिन्दु Bपर रु. 300 करोड़ होगी। यदि अर्थव्यवस्था की स्थितियों में परिवर्तन के कारण लेन–देन माँग गिर जाती है और मान लीजिए कि kका मूल्य कम होकर 1/5 हो जाता है, तथा नया लेन–देन माँग वक्र kYहो जाता है। ऐसी स्थिति में रु. 1000 और रु. 1200 करोड़ आय स्तर पर, लेन–देन शेष क्रमशः वक्र kYके बिन्दुओं Cऔर Dपर रु. 200 और रु. 240 करोड़ होंगे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि धारण किये गए लेन–देन शेषों की वास्तविक राशि में परिवर्तनों का मुख्य निर्धारक आय में परिवर्तन होता है। लेन–देन शेषों में परिवर्तन Yमें परिवर्तनों के कारण होते हैं न कि kमें परिवर्तनों के कारण।

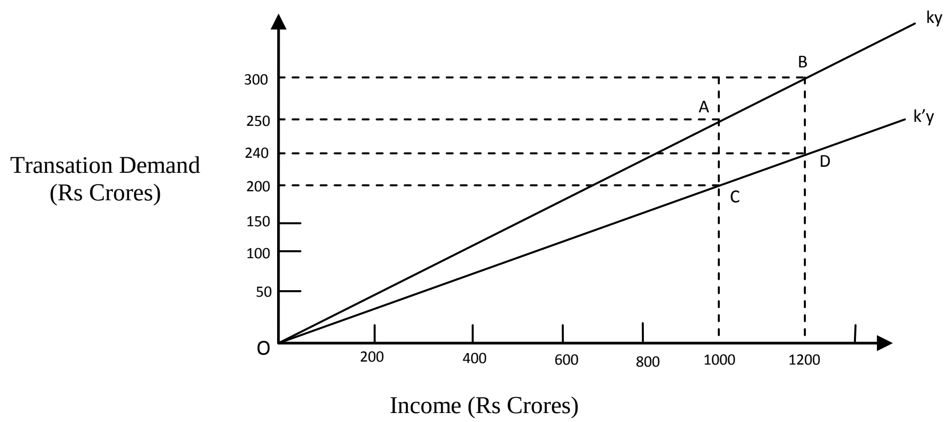

ब्याज दर और लेन–देन माँग (Interest Rate and Transactions Demand) – ब्याज की दर को मुद्रा की लेन–देन माँग का निर्धारक लेते हुए केन्ज़ ने L_1 फलन को ब्याज बेलोच माना। परन्तु उसने यह संकेत भी किया कि ''सक्रिय चलन में मुद्रा की माँग कुछ सीमा तक ब्याज की दर का भी फलन होती है, क्योंकि ऊंची ब्याज दर सक्रिय शेषों के अधिक किफायती प्रयोग को ले जा सकती है।'' अभी के वर्षों में दो केन्जोपरान्त अर्थशास्त्रियों बोमल और टोबिन ने यह दर्शाया है कि ब्याज की दर मुद्रा की लेन–देन माँग का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। उन्होंने यह भी बताया है कि मुद्रा की लेन–देन माँग तथा आय में सम्बंध रेखीय और समानुपातिक नहीं है। बल्कि, आय में परिवर्तन लेन–देन माँग में समानुपातिक छोटे परिवर्तन लाते हैं।

(2) मुद्रा की सतर्कता माँग (The Precautionary Demand For Money) – मुद्रा की सतर्कता माँग का संबंध ''आड़े समय के उन आकस्मिक खर्चे और लाभप्रद क्रयों के अपूर्वदृष्ट अवसरों के लिए प्रबंध करने की इच्छा से होता है।'' व्यक्ति तो बीमारी, दुर्घटना, बेराजगारी और अदूरदर्शी संभाव्यताओं (unforeseen contingencies)की व्यवस्था करने के लिए नकदी रखते हैं। तथा व्यापारी प्रतिकूल स्थितियों को पार करने के लिए या अप्रत्याशित सौदों से लाभ उठाने के लिए कुछ नकदी रिजर्व में रखते हैं। ''सतर्कता उद्देश्य के अन्तर्गत रखी गई मुद्रा कुछ–कुछ उस पानी के समान है जो तालाब में रिजर्व में रखा जाता है।'' मुद्रा की सतर्कता माँग आय के स्तर, व्यापार क्रिया, अप्रत्याशित लाभप्रद

सौदों के अवसरों, नकदी की प्राप्यता, तरल परिसम्पत्तियों को बैंक रिजर्व में रखने की लागत आदि पर निर्भर करती है।

(3) मुद्रा की सट्टा माँग (The Speculative Demand for Money) – मुद्रा की सट्टा माँग इस उद्देश्य के लिए होती है कि ''भविष्य के संबंध में मार्किट की तुलना में अधिक जानकारी द्वारा लाभ कमाए जा सकें।'' जिन व्यक्तियों और व्यापारियों के पास लेन–देन और सतर्कता उद्देश्यों के लिए मुद्रा रखने के बाद नकदी बच जाती है, उसे वे बांडों में निवेश करके सट्टाप्रद लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। सट्टा उद्देश्य के लिए रखी गई मुद्रा मूल्य का एक तरल संचय है।

बांड कीमतों और ब्याज की दर का एक दूसरे के साथ विपरीत संबंध होता है। कम बांड कीमतें ऊंची ब्याज दरों को और ऊंची बांड कीमतें कम ब्याज दरों की व्यक्त करती हैं। एक बांड पर निश्चित ब्याज प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, यदि रु. 100 के बांड पर 4 प्रतिशत ब्याज दिया जाता है और मार्किट ब्याज दर 8 प्रतिशत हो, तो इस बांड का बजार मूल्य गिरकर रु. 50 हो जाता है। यदि बाजार ब्याज दर कम होकर 2 प्रतिशत हो जाती है, तो बाजार में बांड का मूल्य बढ़कर रु. 200 हो जाएगा।

इसे निम्न समीकरण द्वारा हल किया जा सकता है:

$$V = \frac{R}{r}$$

जहां Vएक बांड की कीमत है, Rबांड पर वार्षिक प्रतिफल (या आय) है, और rबाजार ब्याज दर है। इस प्रकार एक बांड जिसकी कीमत रु. 100 (V) और उस पर ब्याज दर 4 प्रतिशत (r)है, उसे वार्षिक प्रतिफल (R) रु. 4 प्राप्त होता है। अर्थात $V = 4/0,04 = 100$। जब बाजार ब्याज दर बढ़कर 8 प्रतिशत हो जाती है तो V = रु. 4 / 0.08 = रु. 50। जब यह गिरकर 2 प्रतिशत होती है तो V= रु. 4 / 0.02 = रु. 200।

केन्ज़ ने सक्रिय और निष्क्रिय नगद शेषों में भेद किया है। सक्रिय शेष वे हैं जो लेन–देनों के लिये भुगतान के माध्यम के रूप में प्रयोग किये जाते हैं, बाकी सभी शेष निष्क्रिय शेष है। लेन–देन और पूर्वोपाय हेतु मुद्रा की माँग को कभी–कभी सक्रिय शेषों की माँग भी कहा जाता है जबकि सट्टे हेतु मुद्रा की माँग को निष्क्रिय शेषों की माँग कहा जाता है।

मुद्रा की कुल माँग

केन्ज़ के सिद्धांत के अनुसार मुद्रा की कुल माँग (M^d) L^1और L_2 का योग है

यानि$(M^d) = L^1(Y) + L_2(r)$

उक्त समीकरण में $L_1(Y)$लेन–देन एवं पूर्वोपाय हेतु मुद्रा की माँग को दर्शाता है, ये दोनों ही मौद्रिक आय के स्तर (Y)का वर्धमान फलन है। $L_2(r)$सट्टा हेतु मुद्रा की माँग को दर्शाता है जो ब्याज की दर (r)का ह्रासमान फलन है। यह समीकरण मुद्रा की माँग का एक योगात्मक फलन है जो यह दर्शाता है कि मुद्रा की माँग के दो घटक है: लेन–देन और पूर्वोपाय हेतु माँग (L_1)जो ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती और सट्टा हेतु माँग जो ब्याज दर से प्रभावित होती है।

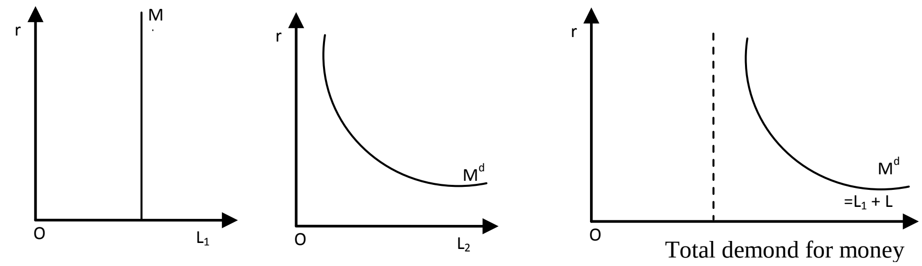

मुद्रा की माँग को वास्तव में विभिन्न प्रयोजनों के लिये विभक्त नहीं किया जा सकता जैसा कि योगात्मक फलन दर्शाता है। टोबिन (Tobin)और बोमल (Baumol)यह बताने का प्रयत्न किया है कि लेन–देन हेतु मुद्रा की माँग केवल आय–सापेक्ष ही नहीं है। बल्कि ब्याज–सापेक्ष भी है। यही तर्क पूर्वोपाय हेतु माँग के लिये भी दिया जा सकता है। दूसरी ओर, सट्टा हेतु माँग को कुल धन के वर्धमान फलन के रूप में दिखाया जा सकता है।

बोध प्रश्न ख

1. मुद्रा की माँग के संबंध में क्लासिकी सिद्धांत और केन्ज़वादी सिद्धांत के बीच मुख्य अंतर क्या है?

   ....
   ....
   ....
   ....

2. मुद्रा संचय के लिए सट्टा प्रयोजन का संक्षेप में विवेचन कीजिए।

   ....
   ....
   ....
   ....

3. तरलता जाल (liquidity trap) क्या है?

   ....
   ....
   ....
   ....

4. निम्नलिखित कथनों में से कौन सही हैं और कौन गलत?

   (i) निष्क्रिय नकदी शेष को प्रयोग लेन–देन के कार्य में किया जाता है।

   (ii) आय के स्तर और लेन–देन शेष के बीच ऋणात्मक संबंध होता है।

   (iii) मुद्रा के लिए सट्टा माँग और आय स्तर के बीच विपरीत का संबंध होता है।

   (iv) तरलता जाल (liquidity trap) की स्थिति में मुद्रा नीति अत्यंत कुशुल सिद्ध होती है।

2.4 मुद्रा की पूर्ति (The Supply of Money)

मुद्रा पूर्ति की परिभाषा

'मुद्रा की पूर्ति' शब्द – 'मुद्रा स्टॉक', 'मुद्रा का स्टॉक', 'मुद्रा की मूर्ति' तथा 'मुद्रा का परिमाण' आदि शब्दों का पर्याय है। किसी भी समय पर मुद्रा की पूर्ति का अर्थ है अर्थव्यवस्था में विद्यमान मुद्रा का कुल परिमाण। सबसे अणिक प्रचलित मत परम्परागत एवं केन्ज़ीय विचारधारा क अनुसार मुद्रा पूर्ति वह करेन्सी है, जो जनता के पास तथा कमर्शियल बैंकों में माँग जमा के रूप में विद्यमान है। माँग जमाओं से तात्पर्य कमर्शियल बैंकों में जमाकर्ताओं के चालू खातों से है। वे मुद्रा का तरल रूप है। क्योंकि जमाकर्ता अपने खातों में जमा राशि में से चैकों द्वारा चाहे जितनी राशि कभी भी निकाल सकते हैं और बैंकों को माँग पर तुरन्त भुगतान करना पड़ता है।

फ्रीडमैन की परिभाषा के अनुसार किसी विशेष समय पर मुद्रा की पूर्ति का अर्थ है, ''शब्दशः वे डालर जिन्हें लोग अपनी जेबों में लिए घूमते हैं अथवा जो उनके खातों में बैंकों में माँग जमा के रूप में और कमर्शियल बैंकों के सावधि जमाओं (time deposits) के रूप में भी विद्यमान है।'' सावधि जमा का तात्पर्य कमर्शियल बैंकों में ग्राहकों की मियादी जमा (fixed deposits) हैं।

सावधि जमाओं का निश्चित अवधि के पूरा होने से पहले भी मुद्रा निकलवाई जा सकती है। इस प्रकार सावधि जमाएं भी तरल होती हैं। सरकार द्वारा रखी गई मुद्रा तथा व्यापारिक बैंक में पड़ी मुद्रा को मुद्रा पूर्ति में शामिल नहीं किया जाता है। और फ्रीडमैन ने उन्हें मुद्रा पूर्ति में सम्मिलित कर लिया है।

किसी भी समय पर मुद्रा की पूर्ति में निम्नलिखित को शामिल किया जाता हैः

1. करेंसी (Currency) : इसमें कागजी नोट और सिक्के, जो प्रचलन में हैं, शामिल किये जाते हैं। कागजी नोटों में केन्द्रीय बैंक यानि भारत के रिजर्व बैंक द्वारा निर्गमित 2 रु. और उससे अधिक मूल्य वर्ग के नोट तथा भारत सरकार द्वारा निर्गमित 1 रु. के नोट आते हैं।

2. शुद्ध माँग निक्षेप (Net demand deposits) : बैंक के कुल माँग निक्षेपों में जनता से निक्षेप और एक बैंक के दूसरे बैंक के पास निक्षेप (यानि अन्तः बैंक निक्षेप) शामिल किये जाते हैं मुद्रा की पूर्ति में पहली प्रकार के माँग निक्षेप (जनता के निक्षेप ही शामिल किये जाते है) क्योंकि इसकी परिभाषा के आधार पर मुद्रा एक ऐसी चीज है जो जनता द्वारा रखी जाती है।

3. भारत के रिजर्व बैंक के पास 'अन्य निक्षेप' : अर्ध–सरकारी संस्थाओं, विदेशी केन्द्रीय बैंकों, विदेशी सरकारों, विश्व बैंक आदि के निक्षेप शामिल किये जाते हैं। भारत में कुल मुद्रा पूर्ति में इसका अनुपात लगभग नगण्य है।

4. मुद्रा पूर्ति पर जो आधुनिक साहित्य है उसमें मुद्रा और तरलता के अन्तर को काफी महत्व दिया गया है। मुद्रा (परम्परागत अर्थ में) ही लोगों के पास खर्च करने के लिये तरल परिसम्पत्तियों का भाग नहीं है बल्कि मुद्रावत् भी इसका एक भाग है। लोगों की व्यय करने की क्षमता अर्थव्यवस्था में कुल तरलता की राशि पर निर्भर करती है और कुल तरलता मुद्रा के कुल स्टॉक और मुद्रावत परिसम्पत्तियों, दोनों पर निर्भर करती है। **मुद्रावत (Near money) में निम्नलिखित निक्षेप जैसे–i)**डाक घर बचत बैंकों और व्यापारिक बैंकों में बचत निक्षेप **(saving deposits)**, और **ii)**बैंकों की मियादी जमा **(time deposits)**, अन्तः बैंक निक्षेपों के शुद्ध निक्षेप सम्मिलित हैं। बचत निक्षेप में चैक सुविधा उपलब्ध होती है और इससे

तरलता बढ़ती है। इसी प्रकार सावधि निक्षेपों को परिपक्वता से पहले भुनाया जा सकता है या उनके विरुद्ध ऋण लिया जा सकता है और ऐसा करने से तरलता बढ़ती है।

रिजर्व बैंक द्वारा दिये गये मुद्रा पूर्ति के चार वैकल्पिक मापों को निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

MयाM1 = लोगों के पास करेंसी + लोगों के माँग निक्षेप,

M2 = M1 + डाकघर बचत बैंको में बचत निक्षेप,

AMRयाM3 = M1 + लोगों के बैंको में मियादी जमा (सावधि निक्षेप), और

M4 = M3 + कुल डाक घर निक्षेप।

M1और M3वैचारिक रूप मे क्रमशः Mऔर AMRही हैं । लेकिन इनमें जो मदें शमिल की जाती है उनमें अन्तर है । M1और M3में सहकारी बैंकिंग क्षेत्र भी शामिल किया जाता है ।

डाकघर बचत निक्षेप, व्यापारिक बैंक निक्षेपों से काफी कम तरल है । डाक घर निक्षेप माँग कर निकाले जा सकते है लेकिनः

(i) इनका चैक द्वारा निकाले जाने वाला माँग बहुत छोटा होता है ।

(ii) किसी भी एक सप्ताह में इन्हें जितनी बार निकाला जा सकता है उस पर पाबन्दियॉ है ।

(iii) किसी भी एक समय निकाले जाने वाली राशि की भी अधिकतम सीमा होती है (जब तक कि डाक घर को इसके बारे मे अग्रिम नोटिस न दिया गया हो)।

मुद्रा पूर्ति को प्रभावित करने वाली एजेन्सीयाँ

लोगों के पास मुद्रा पूर्ति की मात्रा मुख्यतया देश के केन्द्रीय बैंक और व्यापारिक बैंको द्वारा प्रभावित होती है । अपनी राजकोषीय नीति के द्वारा सरकार भी कुछ हद तक मुद्रा पूर्ति को प्रभावित कर सकती है ।

केन्द्रीय बैंक और मुद्रा पूर्तिः

एक देश का केन्द्रीय बैंक मुद्रा पूर्ति को प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी होता है। दूसरी ओर यह निक्षेपों को परोक्ष रूप से प्रभावित करके मुद्रा पूर्ति को प्रभावित कर सकता है । हम जानते है कि व्यापारिक बैंक अपने नगद शेषों को ध्यान में रखकर निक्षेपों का निर्माण कर सकता है । यदि केन्द्रीय बैंक ऐसी विधियों का प्रयोग करता है कि व्यापारिक बैंको के नगद शेष घट जाए तो वे कम अग्रिम दे सकेंगे और कम निक्षेपों का निर्माण कर सकेंगे । इसी प्रकार यदि केन्द्रीय बैंक अपनी शक्ति का प्रयोग व्यापारिक बैंको के नगद शेष बढाने के लिये करता है तो इसका ऊपर बताये गये प्रभाव से बिलकुल विपरीत प्रभाव पड़ेगा । इस प्रकार केन्द्रीय बैंक मुद्रा पूर्ति को प्रभावित करने के लिये नियंत्रण के ऐसे उपायों का प्रयोग करता है जैसे कि व्यापारिक बैकों की सांविधिक न्यूनतम रक्षित निधि में परिवर्तन, बैंको के ब्याज दर ढांचे में परिवर्तन खुले बाजार की क्रियाए और व्यापारिक बैंको के लिए ऋण देने सम्बन्धि नीति आदि ।

व्यापारिक बैंक और मुद्रा की पुर्तिः

व्यापारिक बैंक माँग निक्षेपों या बैंक मुद्रा का निर्माण कर सकते है । इन निक्षेपों का निर्माण दो तरीकों से किया जाता है ।

(i) जब लोग अपने नगद पेसे को बैंक में जमा कराते है तो वे अपने नगद पैसे को माँग निक्षेपों में परिवर्तित कर देते है । ये निक्षेप प्राथमिक निक्षेप कहलाते हैं।

(ii) इन प्राथमिक निक्षेपों से जो नगदी बैंकिंग व्यवस्था में आती है उससे या तो बाजार से वित्तीय सम्पत्तियाँ (जैसे बिल, बाण्ड आदि) खरीद ली जाती हे या उसे उद्योग और व्यापार को उधार दे दिया जाता है । जब कोई बैंक किसी ग्राहक को ऋण देता है तो वह उसे नगद पैसा नही देता, बल्कि ग्राहक से खाते में ऋण की राशि क्रेडिट कर देता है । क्योकि इन निक्षेपों का प्राथमिक निक्षेपों के आधार पर निर्माण किया गया है। बैंकिंग प्रणाली की बैंक मुद्रा का निर्माण करने की सामर्थ्य निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करती हैः

(i) बैंकिंग प्रणाली के पास नगदी की उपलब्धता ।

(ii) बैंकिंग प्रणाली के ऋण लेने की इच्छा ।

(iii) नगदी व बैंक निक्षेपों का अनुपात ।

(iv) देश के केन्द्रीय बैंक की साख नियंत्रण नीति ।

सरकार और मुद्रा की पूर्ति

सरकार भी मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित करती है । जब भी सरकार कर लगाती है या जनता से ऋण लेती है तो वह जनता के पास नगदी की मात्रा को कम कर देती है। दूसरी ओर जब सरकार यह देखती है कि कराधान व सार्वजनिक ऋण से उसकी प्राप्तियाँ उसके खर्चों से कम है तो वह केन्द्रीय बैंक से (अपनी प्रतिभूतियों पर) अपने देयताओं को भुगतान करने के लिये ऋण लेती है । इससे जनता के पास और बैंकिंग प्रणाली के पास नगदी की उपलब्धता बढ़ जाएगी ।

इसलिये, निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि निम्नलिखित स्थितियों में अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति बढ़ेगीः

(i) जब जनता अपने पास कम नगदी रखना चाहती है और बैंकिंग प्रणाली से अधिक ऋण लेने को तेयार है ।

(ii) जब व्यापारिक बैंक अधिक साख का निर्माण करें ।

(iii) जब केन्द्रीय बैंक अधिक करेंसी का निर्गमन करे या ऐसी मुद्रा नीति अपनाये जो साख के विस्तार में सहायक हो।

2.5 मुद्रा का संचलन–वेग (Velocity of Money)

मुद्रा की पूर्ति पर अब तक किये गये वर्णन के अनुसार उसमें किसी एक समय पर मुद्रा की मात्रा बताया गया है । लेकिन इर्विंग फिशर (Irwing Fisher)व

मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के अन्य प्रतिपादक एक समय पर मूद्रा की पूर्ति के स्थान पर एक समय के दौरान मुद्रा की पूर्ति की संकल्पना में अधिक दिलचस्पी रखते थे।

लेन–देनों के संचालन वेग (transactions velocity) की संकल्पना का प्रयोग एक दी हुई अवधि के दौरान कुल लेने–देनों का मौद्रिक मूल्य ज्ञात करने के लिये किया । लेन–देन संचलन वेग को एक दी हुई अवधि के दौरान, लेन–देन क्रियाओं के लिये, मुद्रा की एक इकाई औसतन कितने हाथों से गुजरती है, के रूप में परिभाषित किया गया । उदाहरण के लिये, यदि एक सौ रू. का नोट दी हुई अवधि के दौरान औसतन 4 हाथों से गुजरता है तो इसका अर्थ है कि उस सौ रू. के नोट से 400 रू. के मुल्य के लेन–देन हुए । अतः लेन–देन संचलन वेग 4 है । ऊँचे संचलन वेग का अर्थ है कुल लेन–देनों के के लिये मुद्रा की कम मात्रा की आवश्यकता । मौद्रिक लेन–देन संचलन वेग भुगतानों की प्रथा और अर्थव्यवस्था की अन्य संरचनात्मक विशेषताओं पर निर्भर करता है । इन निर्धारक तत्वों में परिवर्तन बहुत ही धीमा होता है।

राष्ट्रीय आय लेखांकन प्रणाली का विकास होने से लेन–देन प्रचलन वेग का स्थान मौद्रिक आय संचलन वेग (income velocity)ने ले लिया । मौद्रिक आय संचलन वेग को मुद्रा की इकाई की उस औसत संख्या के रूप में परिभाषित किया जाता है जितनी बार इसे केवल अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं के भुगतान के लिये प्रयोग किया जाता है । मौद्रिक आय चलन वेग संरचनात्मक कारकों जैसे भुगतान–प्रथा, व्यवसाय संगठन और अर्थव्यवस्था में भुगतानों के हस्तांतरण के लिये क्रियाशील प्रक्रिया पर निर्भर करता है। अर्थव्यवस्था में मुद्रा के निष्क्रिय शेषों (जमाखोरी) का आय संचलन वेग शून्य होगा।

बोध प्रश्न ग

1. मुद्रा पूर्ति के अंतर्गत निम्नलिखित आते हैं:

   ....
   ....
   ....
   ....

2. भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित मुद्रा पूर्ति की विभिन्न मापों के बीच अंतर बताइए:

   M_1= ....

   M_2= ....

   M_3= ....

   M_4= ....

3. निम्नलिखित कथनों में से कौन सही है और कौन गलतः

(i) किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा का कुल स्टॉक उस अर्थव्यवस्था की समस्त तरलता का निर्धारण करता है।

(ii) M_1और M_3 के अंतर्गत जो मदें आती है वे AMR (समस्त मौद्रिक साधनों) के अंतर्गत आने वाली मदों से भिन्न होती हैं।

(iii) वाणिज्य बैंकों में बचत जमा का तुलना में डाक घरों में बचत जमा में बहुत अधिक तरलता होती है।

(iv) वाणिज्य बैंक प्राथमिक निक्षेपों का प्रयोग साख निर्माण के लिए करते हैं।

(v) सरकार के पास की मुद्रा को मुद्रा पूर्ति की माप में शामिल नहीं किया जाता।

2.6 सारांश

मुद्रा किसी देश की आर्थिक प्रणाली का एक महत्वमूर्ण अंग है। मुद्रा के दो मुख्य कार्य विनिमय का माध्यम और मूल्य का संचय है। लोग तीन कारणों से अपने पास पैसा नगद रूप से रखना चाहतें हैं। ये हैं – लेन–देन, पूर्वोपाय और सट्टा। पहले दो प्रयोजनों का सम्बन्ध मुद्रा की विनिमय का माध्यम की विशेषता से है और तीसरे प्रयोजन (सट्टा प्रयोजन) का सम्बन्ध मुद्रा की मूल्य संचय की विशेषता से है। क्लासिकी व नव–क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने केवल पहले दो कारणों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया जबकि केन्ज़ ने मुद्रा की माँग के सिद्धांत में तीनों का समावेश किया। तीसरे प्रयोजन को बताने का श्रेय केवल केन्ज़ को जाता है और मुद्रा सिद्धांत के लिये यह एक महत्वपूर्ण देन साबित हुई।

एक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति या मुद्रा का स्टॉक जनता द्वारा किसी भी समय पर अपने पास रखी जाने वाली मुद्रा है। जनता से तात्पर्य व्यक्तियों, फार्मों और संस्थाओं से है। रिजर्व बैंक आफ इंडिया द्वारा मुद्रा पूर्ति के कई माँग माप शुरू कियो गये जैसे M_1, M_2, M_3 और M_4। पहले M_1 माप का सामान्यतया प्रयोग किया जाता था। इसमें जनता द्वारा रखी गयी करेंसी और माँग निक्षेप शामिल किये गये हैं। लेकिन इसके बाद, M3 माप (जिसमें अन्तः बैंकों के शुद्ध सावधि निक्षेप शामिल किये जाते हैं) को M_1 के स्थान पर एक लोकप्रिय माप के रूप में प्रयोग किया जाने लगा। M_1 को मुद्रा पूर्ति की एक संकुचित परिभाषा कहा जाता है और M_3 को एक विस्तृत परिभाषा कहा जाता है यह ध्यान रखना होगा कि इन मापों के अन्तर संकल्पनात्मक नहीं बल्कि केवल इनके क्षेत्राधिकार में अन्तर है।

किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति को मूलतः तीन एजेंटों द्वारा प्रभावित किया जाता है। अर्थव्यवस्था का केन्द्रीय बैंक, व्यापारिक बैंक और सरकार। केन्द्रीय बैंक करेंसी नोटों और सिक्कों के निर्गमन द्वारा और अपनी मौद्रिक नीति व साख निर्माण पर नियंत्रण द्वारा मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित करता है। प्राथमिक निक्षेपों के आधार पर व्यापारिक बैंक व्युत्पन्न निक्षेपों का निर्माण करते हैं और साख का निर्माण करते है। सरकार भी विभिन्न कराधान, सार्वजनिक ऋण और व्यय नीतियों द्वारा की पूर्ति को प्रभावित करती है।

मुद्रा की एक इकाई एक दी हुई समय अवधि में जिनते हाथों से गुजरती है उसे संचलन वेग कहते हैं। औसतन जितनी बार मुद्रा की एक इकाई एक निर्दिष्ट समय में सभी प्रकार के लेन–देनों के लिये एक से दूसरे के पास जाती है, उसे मौद्रिक लेन–देन का संचलन वेग कहते हैं। जबकि मौद्रिक आय संचलन वेग का अर्थ है जितनी बार मुद्रा की एक इकाई केवल अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं का भुगतान करने के लिये एक निश्चित समय अवधि में प्रयोग की जाती है। यह माना जाता है कि संचलन वे में परिवर्तन अति लघु वेग से होता है।

2.7 उपयोगी शब्दावली

- **मुद्रा की माँग (Demand for Money) :** अपने पास मुद्रा रखना।
- **लेन–देन हेतु मुद्रा की माँग (Transaction Demand for Money):** दिन–प्रति–दिन के लेन–देन या चल रहे कामकाज से निपटने के लिए अपने पास रखी जाने वाली मुद्रा की राि"ा।
- **पूर्वोपाय हेतु मुद्रा की माँग (Precautionary Demand for Money):** व्यय में अप्रत्याि"ात वृद्धि या विलंब से भुगतान की स्थिति से निपटने के लिये माँग की गई मुद्रा की राि"ा।
- **सट्टा हेतु मुद्रा की माँग (Speculative Demand for Money):** सट्टेबाजों द्वारा माँग की गई मुद्रा राि"ा जिसकी सहायता से वे बांडों में सट्टेबाजी करके उनकी कीमतों के गिरने पर उन्हें खरीदकर और कीमतों के चढ़ने पर उन्हें बेच कर पूंजीगत लाभ कमा सकें।
- **तरलता जाल (Liquidity Trap):** बांडों के बाजार में वह स्थिति जब ब्याज की दर गिरकर न्यूनतम स्तर तक आ जाती है और सट्टा हेतु मुद्रा की माँग पूर्णतः लोचदार हो जाती है।
- **ब्याज की सामान्य दर (Normal Rate of Interest):** ब्याज की वह दर जो सामान्य स्थितियों में बाजार में होती है। इस सामान्य दर के संदर्भ में ही चालू दर को ऊंचा या नीचा माना जाता है।
- **सक्रिय और निष्क्रिय नकद शेष (Active and Idle Cash Balances):** जिन नकद शेषों का प्रयोग लेन–देनों के भगतान के माध्यम के रूप में किया जाता है उन्हें सक्रिय शेष कहा जाता है। बाकी बचे नकद शेषों को निष्क्रिय नकद शेष कहा जाता है।
- **मुद्रा की संकुचित परिभाषा (Narrow Definition of Money):** भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दी हुई मुद्रा पूर्ति की माप जिसके अनुसार जनता द्वारा अपने पास रखी हुई करेंसी और माँग जमा के कुल योग को मुद्रा कहा जाता है।
- **मुद्रा की व्यापक परिभाषा (Broader Definition of Money):** मुद्रा की व्यापक और संकुचित परिभाषाओं के बीच एक मात्र आंतर बैंको की निवल सावधि जमा से संबंधित है। मुद्रा पूर्ति की व्यापक परिभाषा के अंतर्गत निवल सावधि जमा भी आ जाती है।

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3	i) सही	ii) गलत
	iii) सही	iv) सही
ख 4	i) गलत	ii) गलत
	iii) सही	iv) गलत
ग 3	i) गलत	ii) सही
	iii) गलत	iv) सही
	v) सही	

2.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 मुद्रा की माँग क्यों की जाती है? इस संबंध में केन्ज़वादी विचारधारा क्लासिकी विचारधारा से किस प्रकार भिन्न है?

प्रश्न–2 मुद्रा को अपने पास रखने के विभिन्न प्रयोजनों के संबंध में विवेचन कीजिए। मुद्रा की माँग क्या आय के स्तर और ब्याज की दर का फलन है?

प्रश्न–3 भारत में उपयोग में लाई जाने वाली मुद्रा पूर्ति की विभिन्न माप कौन–कौन सी है? इनमें से सबसे अधिक प्रयोग में कौन सी माप होती है?

प्रश्न–4 मुद्रा की संकुचित परिभाषा मुद्रा की व्यापक परिभाषा से किस प्रकार से भिन्न है?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)
- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकेषन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)
- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीष कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, ैठच्क पब्लिकेषन 2016)
- प्रो0 षिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेषन 2017)
- एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
- के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
- शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016)
- एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

****

इकाई–3 मुद्रा और कीमतें

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 मुद्रा का परिमाण सिद्धांत

3.2.1 नगद लेन–देन दृष्टिकोण

3.2.2 नगद शेष दृष्टिकोण

3.2.3 नगद शेष दृष्टिकोण और नगद लेन–देन दृष्टिकोण की तुलना

3.3 केन्ज़ का मुद्रा और कीमतों का सिद्धांत

3.4 मिल्टन फ्रिडमैन का मुद्रा का परिमाण सिद्धांत

3.5 सारांश

3.6 उपयोगी शब्दावली

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- मुद्रा के मुल्य और कीमत स्तर को निर्धारित करने वाले कारकों को बता सकें,
- मुद्रा का परिमाण सिद्धांत बता सकें,
- मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के प्रति नगद लेन–देन और नगद शेष दृष्टिकोण के अन्तर बता सकें,
- मुद्रा के क्लासिकी सिद्धांत की तुलना में केन्ज़ के सिद्धांत की श्रेष्ठता बता सकें, और
- मिल्टन फ्रीड मैन द्वारा मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के पुनः विवरण का विश्लेषण कर सकें।

3.1 प्रस्तावना

मुद्रा के मूल्य से अभिप्राय एक देश में वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने की मुद्रा की शक्ति से है। क्राउथर के अनुसार, ''मुद्रा का मूल्य वह है जो वह खरीद सकती है।'' (The value of money is what it will buy) कुरीहारा की परिभाषा अधिकस्पष्ट है। उसके शब्दें में ''मुद्रा के मूल्य से अभिप्राय वस्तुओं और सेवाओं के रूप में मुद्रा की एक इकाई की खरीदने की शक्ति है'' (The value of money refers to the purchasing power of a unit of money in terms of goods and services) 'मुद्रा का मूल्य' वाक्यांश एक सापेक्ष धारणा है जो मुद्रा की एक इकाई और वस्तुओं और सेवाओं, जिन्हें वह क्रय कर सकती है, के बीच संबंध व्यक्त करता है। वस्तुओं और सेवाओं को, दी हुई कीमतों पर, मुद्रा की एक इकाई से खरीदा जाता है। परन्तु मुद्रा के मूल्य और कीमत–स्तर में विपरीत संबंध होता है। यदि V मुद्रा का मूल्य हो और Pकीमत स्तर, तो $V = 1/P$। जब कीमत स्तर बढ़ता है तो मुद्रा का मूल्य गिरता है, और इसके विपरीत।

मुद्रा के मूल्य और अन्य चीजों के मूल्य में एक मूल अन्तर है। मुद्रा का मूल्य सामान्य क्रय शक्ति दर्शाता है यानि सामान्य वस्तुओं पर अधिकार दर्शाता है। अन्य वस्तुओं की ऊंची कीमत मुद्रा के नीचे विनिमय मूल्य में प्रतिबिम्बित होती है। अन्य वस्तुओं की नीची कीमत का अर्थ है मुद्रा का ऊंचा विनिमय मूल्य। इसलिये मुद्रा का मूल्य सामान्य कीमत स्तर (b)का व्युतक्रम (reciprocal)है और इसे 1/P के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

मूल समस्या उन कारकों को स्पष्ट करने की है जो मुद्रा के मूल्य को निर्धारित करते हैं या मुद्रा की क्रय शक्ति में जिन कारणों से परिवर्तन होता है। उन्हें स्पष्ट करने की है। इस इकाई में आप मुद्रा के मूल्य और कीमतों से संबंधित विभिन्न सिद्धांतों के बारे जानेंगे। इस में आप मुद्रा के परिमाण सिद्धांत, केन्ज़वादी सिद्धांत और मिल्टन फ्रिडमैन के मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के संबंध में विशेष रूप से जानकारी प्राप्त करेगें।

3.2 मुद्रा का परिमाण सिद्धांत (Quantity Theory of Money)

क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने सामान्य कीमत स्तर में होने वाले परिवर्तनों को मुद्रा के परिमाण सिद्धांत की सहायता से समझाने का प्रयास किया। यह सिद्धांत अमेरिका के अर्थशास्त्री इर्विंग फिशर के नाम के साथ जुड़ा हुआ है, मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के अनुसार मुद्रा का मूल्य किसी दिए हुए समय पर अर्थव्यवस्था में संचलन में मुद्रा की मात्रा पर निर्भर करता है।

मुद्रा का परिमाण–सिद्धांत बताता है कि मुद्रा का परिमाण ही कीमत–स्तर अथवा मुद्रा के मूल्य का मुख्य निर्धारक है। यदि मुद्रा के परिमाण में परिवर्तन होगा तो वह ठीक उसी अनुपात में कीमत स्तर में परिवर्तन ला देगा। *फिशर* के शब्दों में, ''यदि अन्य चीजें अपरिवर्तित रहें तो, ज्यों–ज्यों मुद्रा चलन की मात्रा बढ़ती है, त्यों–त्यों कीमत–स्तर भी प्रत्यक्ष अनुपात में बढ़ता है और मुद्रा का मूल्य घटता

जाता है और विलोमशः भी। (Other things remaining unchanged, as the quantity of money in circulation increases, the price level also increases in direct proportion and the value of money decreases and vice versa).

परम्परागत रूप से **मुद्रा का परिमाण सिद्धांत यह बताता है कि अन्य बाते पूर्ववत् रहने पर, मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन होने से सामान्य कीमत स्तर में प्रत्यक्ष व आनुपातिक परिवर्तन होते हैं।**

मुद्रा के परिमाण सिद्धांत की दो व्याख्याएं हैः

(i) नगद लेन–देन दृष्टिकोण

(ii) नगद–शेष दृष्टिकोण

3.2.1 नगद लेन–देन दृष्टिकोण (Cash Transaction Approach)

मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के नगद लेन–देन दृष्टिकोण का श्रेय साइमन न्यूकाम (Simon Newcome)और इर्विंग फिशर को दिया जाता है इसलिए इसे फिशर का समीकरण भी कहा जाता है। फिशर ने सामान्य कीमत स्तर (P)में परिवर्तनों को संचलन में मुद्रा की मात्रा में परिवर्तनों (M), इसके संचलन वेग (V) और लेन–देनों की मात्रा (T) की सहायता से स्पष्ट किया गया है। फिशर का विनिमय का समीकरण निम्नलिखित हैः

MV = PT

या (MV)मुद्रा की समस्त पूर्ति = कुल वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य (IT)

फिशर के अनुसार किसी भी अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा निम्नलिखित दो बातों पर निर्भर करती हैः

(i) लोगों के पास नगदी की मात्रा (M), और

(ii) नगदी का प्रचलन वेग (V)

अर्थव्यवस्था में नगदी निष्क्रिय नहीं रहती (जमाखोरी की स्थिति को छोड़कर)। यह लेन–देनों की आवश्यकताओं को पूरा करती है। इस प्रकार एक से दूसरे के पास जाती है। **एक दी हुई समायावधि में एक करेंसी नोट जितने हाथों से गुजरती है या जितनी बार उसका प्रयोग किया जाता है उसे उसका संचलन वेग** (velocity of circulation)**कहते हैं।** उदाहरण के लिये यदि कोई एक सौ रू. का नोट एक दिन में 4 हाथों से गुजरता है तो इससे लेन–देनों की 400 रू. की आवश्यकता पूरी हुई। यद्यपि नगदी (M) 100 रू. थी लेकिन मुद्रा की मात्रा (MV) 400 रू. थी।

अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा का पता लगाने के लिये हमें मुद्रा के **औसत चलन प्रचलन वेग** आकलन करना होगा। **मुद्रा के औसत प्रचलन वेग को अर्थव्यवस्था में वर्ष के दौरान नगदी की मात्रा से गुणा करने पर अर्थव्यवस्था में उस वर्ष के दौरान मुद्रा की कुल पूर्ति ज्ञात हो जाती है।**

मुद्रा की माग मुख्यतया लेन–देनों के प्रयोजन से की जाती है। अतः एक दी हुई अवधि में मुद्रा की कुल माँग उस अवधि में वस्तुओं और सेवाओं के लेन–देनों के कुल मूल्य के बराबर होगी। और वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य वस्तुओं और सेवाओं लेन–देनों की मात्रा (T)को उनकी औसत कीमतों (P)से गुणा करने से पता लगेगा।

उपरोक्त वर्णित समीकरण MV = PT को एक अन्य रूप में लिखा जा सकता हैः

$$P = \frac{MV}{T}$$

इस समीकरण का अर्थ है कि किसी भी एक समय पर कीमत स्तर मुद्रा की कुल पूर्ति और उस समय लेन–देन की गयी वस्तुओं और सेवाओं की कुल मात्रा का अनुपात है।

मान्यताएँ

फिशर की मुद्रा के परिमाण सिद्धांत की व्याख्या निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैः

(1) इसमें यह माना गया है कि मुद्रा का संचलन वेग (V)स्थिर है और यह नगदी की मात्रा (M)में परिवर्तन या कीमत–स्तर (P)में परिवर्तन से प्रभावित नहीं होता।

(2) यह भी माना गया है कि वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा (T) स्थिर रहती है क्यांकि ये प्राकृतिक साधनों की मात्रा, जलवायु, उत्पादन की तकनीकें, श्रम की उत्पादिता, यातायात की सुविधाओं आदि पर निर्भर करती है।

अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति की मान्यता यानि कोई भी उत्पादक साधन बेकार नहीं है जिसका कि वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन बढ़ाने में प्रयोग किया जा सकता है।

(3) मुद्रा के परिमाण सिद्धांत में कीमत (P) एक निष्क्रिय कारक है। यह समीकरण में दिये गये अन्य कारकों से तो प्रभावित होती है लेकिन स्वयं किसी को प्रभावित नहीं करती। समीकरण में कीमत (P) व अन्य कारकों का सम्बन्ध एक–तरफा है क्योंकि कीमत (P) अन्य कारकों द्वारा निधारित होती है। संक्षेप में, मुद्रा के परिमाण सिद्धांत की फिशर की व्याख्या की मुख्य बातें निम्नलिखित हैंः

(क) कीमत स्तर (P), नगदी की मात्रा (M), मुद्रा का औसत संचलन वेग (V), और लेन–देन की गयीवस्तुओं और सेवाओं की मात्रा (T), से निर्धारित होता है

(ख) P, स्वयं परिवर्तित नहीं होता

(ग) क्योंकि V, और T, को स्थिर माना गया है, अतः M, में परिवर्तन से P, में आनुपातिक परिवर्तन होता है।

फिशर ने मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के मौलिक समीकरण को एक विस्तारित रूप में उसने मुद्रा को दो भागों में वर्गीकृत कियाः

(i) लोगों के पास नगदी, और

(ii) बैंक निक्षेप।

मौलिक समीकरण में उसने मुद्रा के विस्तारित व्याख्या में उसने नई चल राशियों का प्रयोग किया अर्थात् माँग निक्षेप (M^1) और माँग निक्षेपों का प्रचलन वेग (V^1)। का संशोधित रूप निम्नलिखित होगाः

$PT = M^1V^1 + M^1V^1$

या $P = \frac{MV+MV}{T}$

फिशर के अनुसार Vअल्प काल में स्थिर होता है और M^1अपने आप से परिवर्तित नहीं होगा क्योंकि प्राथमिक मुद्रा, बैंक निधियों और बैंक निक्षेपों की मात्रा में एक स्थिर सम्बन्ध होता है। इस प्रकार बिस्तारित रूप में भी फिशर का निष्कर्ष सामान्य कीमत स्तर में परिवर्तनों का एक मात्र कारण मुद्रा की मात्रा में परिर्वतनों का होना है।

नगद लेन–देन दृष्टिकोण की आलोचनाः

1. मुद्रा का परिमाण सिद्धांत कुछ अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। उसकी अन्य बातें पूर्ववत् रहने की मान्यता का अर्थ है कि V और T स्थिर बने रहते हैं। वास्तव में M में परिवर्तन पहले Vको और फिर Tको प्रभावित करते है। फिशर ने यह भी मान्यता की कि M, P को प्रभावित करता है लेकिन Pसे प्रभावित नहीं होता। वास्तव में समीकरण के सभी चर आपस में एक दूसरे पर आश्रित होते हैं। मुद्रा का परिमाण सिद्धांत इसी बात की उपेक्षा करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि मुद्रा (M) कारण है तथा कीमत (P) प्रभाव है।

2. यह सिद्धांत स्थैतिक प्रकृति का होने के कारण ऐसे समाज पर लागू हो सकता है जो स्थैतिक स्थितियों में रहता है।

3. यह सिद्धांत अन्य मौद्रिक कारकों और सापेक्षिक कीमतों के महत्व को समझे बिना मुद्रा (M) और कीमतों (P) में एक अवास्तविक प्रत्यक्ष कारणात्मक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करता है। यह कीमत स्तर के निधारण में मुद्रा की मात्रा की भूमिका को आवश्यकता से अधिक महत्व देता है।

4. यह केवल कुछ मौद्रिक कारकों की ही नहीं बल्कि अमौद्रिक कारकों की भी उपेक्षा करता है जैसे कि उद्योग की विविधता, मानवीय इच्छाओं में अन्तर, यातायात सुविधाएं, बैंक साख का प्रयोग, आदि। इन कारकों का वास्तव में कीमत स्तर पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

5. पूर्ण राजगार की स्थिति होने की मान्यता करता है और इसके अनुसार पूर्ण रोजगार के बाद Mमें हुआ कोई भी परिवर्तन Pको बढ़ा देगा। लेकिन जब साधन बेकार हों तो उत्पादन का पूर्ति वक्र लोचदार होगा और ऐसी स्थिति में मुद्रा की मात्रा (M) में वृद्धि से कीमत (P) की बजाय वास्तविक आय और उत्पादन बढ़ सकता है। पूर्ण रोजगार की स्थिति बहुत असंभावित है।

6. फिशर के समीकरण में Pऔर Tबहुत स्पष्ट नहीं हैं। Pमें सभी प्रकार की वस्तुओं और साधनों की कीमतें शामिल होती हैं। संभव है कि ये विपरीत दिशाओं में परिवर्तित हो रही हों या इनमें से कुछ में परिवर्तन हो ही न रहा हो। इसी प्रकार T में सभी प्रकार की वस्तुएं व सेवाएं शामिल होती हैं। P और T चरों को प्राप्त करने के लिये इन Pऔर Tको मिलाना व्यवहार में बहुत कठिन प्रतीत होता है।

7. फिशर केवल यह बताता है कि M में परिवर्तन से Pमें परिवर्तन होता है। लेकिन वह उस प्रक्रिया की उपेक्षा करता है जिसमें M, P को प्रभावित करता है।

8. फिशर के अनुसार मुद्रा की आवश्यकता का प्रयोजन केवल लेन–देन है। यह इस तथ्य की उपेक्षा करता है कि मुद्रा का मूल्य के संचय के रूप में और सट्टेबाजी के लिये भी प्रयोग किया जाता है।

9. विनिमय का समीकरण मौद्रिक कारकों के कारण सापेक्षिक कीमतों के ढांचे में होने वाले परिवर्तनों को व्यक्त नहीं कर सकता।

10. फिशर मुद्रा (M) और कीमत (P) के बीच ब्याज की दर की एक कड़ी के रूप में भूमिका को समझने में भी असफल रहा।

11. अल्पावधि घटकों की उपेक्षा (Neglects Short Period Factors): मुद्रा का परिमाण सिद्धांत इसलिए अवास्तविक है कि यह दीर्घकाल में M और P के सम्बन्ध का विश्लेषण करता है इस प्रकार यह उन अल्पावधि घटकों की उपेक्षा करता है जो इस सम्बन्ध को प्रभावित करते हैं।

12. मुद्रा के संचय कार्य की उपेक्षा (Neglects Store of Value Function of Money) : मुद्रा के परिमाण सिद्धांत की एक और कमजोरी यह है कि यह मुद्रा की पूर्ति पर ध्यान केन्द्रित करता है और मुद्रा की माँग को स्थिर मानकर चलता है। दूसरे शब्दों में यह मुद्रा के संचय मूल्य कार्य की उपेक्षा करता है और केवल मुद्रा के विनिमय माध्यम फलन पर ध्यान देता है। इस प्रकार यह सिद्धांत एकतरफा है।

13. वास्तविक शेष प्रभाव की उपेक्षा (Neglects Real Balance Effect) : 'डान पेटिनकिन' ने फिशर की इसलिए आलोचना की है कि वह वास्तविक शेष प्रभाव का अर्थात नकदी शेषों का वास्तविक मूल्य का प्रयोग करने में असफल रहा है। कीमत–स्तर गिरने से नकदी शेषों का वास्तविक मूल्य बढ़ जाता है जिससे व्यय बढ़ता है और परिणामतः अर्थव्यवस्था में आय, उत्पादन और रोजगार में वृद्धि होती है।

14. स्थैतिक (Static) : फिशर का सिद्धांत स्थैतिक है, क्योंकि इसकी मान्यताएं अवास्तविक हैं, जैसे दीर्घकाल, पूर्ण रोजगार आदि। इसलिए यह एक आधुनिक गत्यात्मक अर्थव्यवस्था पर लागू नहीं होता।

15. ऊपर बतायी गयी आलोचनाओं के बावजूद, फिशर के मुद्रा के परिमाण सिद्धांत ने विद्यार्थियों और नीति–निर्धारकों का समान रूप से ध्यानाकर्षण किया है। आर्थिक इतिहास में ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं जो मुद्रा के परिमाण सिद्धांत की इस व्याख्या की यथार्थता को सिद्ध करते हैं। भारत में पिछले कुछ वर्षों में कीमतों में तीव्र वृद्धि अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति की अत्यधिक वृद्धि से संबद्ध

बताई जाती है। फिर भी यहां इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि मुद्रा का परिमाण सिद्धांत जो कहता है वही पूर्ण सत्य नहीं है।

बोध प्रश्न क

1. मुद्रा का परिमाण सिद्धांत क्या है?

   ....
   ....
   ....
   ....

2. फिशर ने मुद्रा के परिमाण सिद्धांत का जो रूप दिया है उसकी मान्यताएं क्या है?

   ....
   ....
   ....
   ....

3. निम्नलिखित कथनों में कौन सही है और कौन गलत?

   (i) मुद्रा के विनिमय और सामान्य कीमत स्तर की गति एक ही दिशा में होती है।

   (ii) मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के अनुसार मुद्रा का मूल्य किसी समय बिन्दु पर किसी अर्थव्यवस्था में संचलन के अंतर्गत की मुद्रा की मात्रा पर निर्भर करता है।

   (iii) फिशर के अनुसार किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा निम्नलिखित पर निर्भर करती हैः

   (iv) **(क)** जनता के पास नकदी की मात्रा, या

   (v) **(ख)** नकदी के संचलन का वेग।

   (vi) मुद्रा की सभी इकाइयों का संचलन एक ही दर पर नहीं होता।

   (vii) मुद्रा की माग केवल लेन–देन के प्रयोजनों के ही लिए की जाती है।

   (viii) फिशर के मुद्रा का परिमाण सिद्धांत यह मानकर चलता है कि पूर्ण रोजगार की वृद्धि के बाद ही M में किसी भी प्रकार की वृद्धि होने से P में भी वृद्धि होगी।

3.2.2 नगद शेष दृष्टिकोण (Cash Balances Approach)

कुछ केम्ब्रिज अर्थशास्त्रियों ने, जिनमें एलफर्ड मार्शल, ए.सी–पिगू, जे.एम. केन्ज़ और डी.एच. राबर्टसन प्रमुख हैं। मुद्रा के परिमाण सिद्धांत का एक भिन्न रूप दिया जिसे नगद शेष दृष्टिकोण या कैम्ब्रिज व्याख्या कहते हैं। मुद्रा के परिमाण सिद्धांत की शुरू की व्याख्या में मुद्रा के पूर्ति पक्ष को महत्व दिया गया था परन्तु नगद शेष दृष्टिकोण में मुद्रा के माग पक्ष को महत्व दिया गया। **इस विचारधारा के अनुसार मुद्रा का मूल्य मुद्रा की माँग पर निर्भर करता है, लेकिन मुद्रा की माँग इसके मूल्य को संचित करने के कार्य से उत्पन्न होती है।**

मार्शल के अनुसार नगद शेष विचारधारा का सारः ''समाज की प्रत्येक स्थिति में लोगों की आय का एक अंश ऐसा होता है जिसे वे नगद रखना लाभप्रद समझते हैं। यह पांचवा, दशवां या बीसवां अंश हो सकता है... नकदी के रूप में साधनों के नियंत्रण से उनका व्यवसाय सरल एवं निर्विध्न हो जाता है और यह उन्हें सौदेबाजी में एक लाभप्रद स्थिति में रखता है।'' लोग अपनी वार्षिक आय और धन का कुछ भाग 'सुलभ क्रय शक्ति' के रूप में रखते हैं। इसलिए मुद्रा की समस्त माँग उनकी वार्षिक आय और सम्पत्ति के आकार पर निर्भर करती है।

मार्शलीय समीकरण (Marshall's Equation)

मार्शल ने अपना सिद्धांत समीकरण के रूप में प्रस्तुत नहीं किया था। उसके अनुयायियों ने इस सिद्धांत की बीजगणितीय व्याख्या की है। फ्रिडमैन ने मार्शल के मत का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया हैः ''प्रथम सन्निकटीकरण (approximation) के रूप में, हम यह मान लें कि कोई व्यक्ति जो राशि अपने पास रखना चाहता है उस राशि का उस व्यक्ति की आय से कुछ सम्बन्ध है क्योंकि वही उस व्यक्ति के क्रयों तथा विक्रयों की मात्रा को निर्धारित करती है। हम समाज के सभी मुद्रा–धारकों के नकदी शेषों का जोड़ करते हैं और उस कुल योग को उनकी कुल आय के भिन्न (fraction) के रूप में व्यक्त करते हैं। इस प्रकार हम लिख सकते हैं।

$$M = kPY$$

जहां Mबहिर्जात रूप से निर्धारित मुद्रा की पूर्ति को व्यक्त करता है, kवास्तविक मौद्रिक आय का (PY) का वह भिन्न है जिसे लोग नकदी तथा माँग जमा के रूप में रखना चाहते हैं, Pकीमत स्तर है और Y समाज की कुल वास्तविक आय है। इस प्रकार कीमत स्तर

$P = \frac{M}{ky}$अथवा मुद्रा का मूल्य (अर्थात कीमत–स्तर का $\frac{1}{P} = \frac{kY}{M}$

केम्ब्रिज समीकरण (Cambridge Equation)

पीगू पहला केम्ब्रिज अर्थशास्त्री था जिसने नकदी शेष सिद्धांत को समीकरण के रूप में प्रस्तुत किया। उसने नगद शेष समीकरण को निम्नानुसार व्यक्त किया है।

$$P = \frac{kR}{M}$$

जहां P मुद्रा की क्रय–शक्ति अथवा मुद्रा का मूल्य (अर्थात कीमत–स्तर का व्युत्क्रम) है, K कुल वास्तविक संसाधनों अथवा आय (R) का अनुपात है जिसे लोग वैध मुद्रा के दावों के रूप में रखना चाहते हैं, R कुल संसाधन या वास्तविक आय है। और M वैध मुद्रा की वास्तविक इकाईयों की संख्या को व्यक्त करता है।

पीगू के अनुसार मुद्रा की माग के अन्तर्गत केवल वैध मुद्रा अथवा नकदी ही नहीं आती अपितु बैंक शेष भी आते हैं। बैंक नोटों तथा बैंक शेषों को मुद्रा की माँग में सम्मिलित करने के लिए पीगू ने अपने समीकरण का संशोधित रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

$$P = \frac{kR}{M}\{c + h(1 - c)\}$$

जहां c लोगों द्वारा वैध मुद्रा एवं प्रतीक सिक्कों के रूप में वास्तव में रखी गई कुल वास्तविक आय का अनुपात है, (1-c) बैंक नोटों तथा बैंको शेषों का अनुपात है, और h वास्तविक वैध मुद्रा का वह अनुपात है जिसे बैंकर अपने ग्राहको द्वारा धारित नोटों तथा शेषों के मुकाबले रखते है।

पीगू ने लक्ष्य किया कि जब समीकरण P = kR/M esa k, R, c एवं h को स्थिरांक मान लिया जाता है तो दोनों समीकरण आयताकार अतिपरवलय (rectangular hyperbola) के रूप में एकिक लोच (unitary)रखता है। इसे निम्न चित्र में दिखाया गया है जिसमें DD_1 मुद्रा माँग वक्र है और Q_1M_1,Q_2M_2 और Q_3M_3मुद्रा के पूर्ति वक्र हैं जो इस मान्यता पर खींचे गये हैं कि किसी निश्चित समय पर मुद्रा की पूर्ति स्थिर होती है। मुद्रा के मूल्य अथवा पीमू की मुद्रा की क्रय–शक्ति P को अनुलम्ब अक्ष पर लिया गया है। चित्र बताता है कि जब मुद्रा की पूर्ति QM_1 से बढ़कर OM_2हो जाती है तो मुद्रा का मूल्य OP_1 से घटकर OP_2 रह जाता है। मुद्रा के मूल्य में होने वाला P_1P_2 पतन मुद्रा की पूर्ति में होन वाली M_1M_2वृद्धि के ठीक बराबर है। यदि मुद्रा की पूर्ति तीन गुना बढकर OM_1 से OM_3 हो जाए तो मुद्रा का मूल्य OPठीक एक–तिहाई घटकर OP_3 रह जाएगा। इस प्रकार मुद्रा का माँग वक्र DD_1एक आयताकार अतिपरवलय है क्योंकि यह मुद्रा के मूल्यों में परिवर्तन को मुद्रा की पूर्ति के ठीक प्रतीत अनुपात में प्रदर्शित करता है।

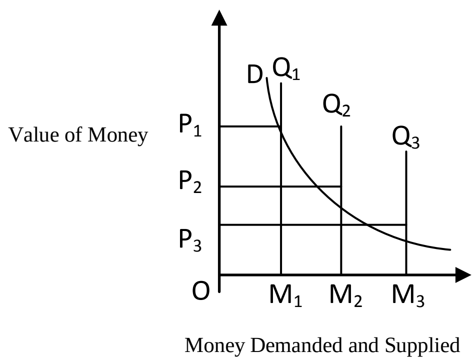

राबर्ट्सन का समीकरण (Robertson’s Equation)

मुद्रा के मूल्य अथवा उसके व्युत्क्रम कीमत–स्तर को निर्धारित करने के लिए राबर्ट्सन ने पीगू के समीकरण से मिलता–जुलता समीकरण बनाया। दोनो के समीकरणों में केवल इतना अन्तर है कि पीगू ने कुल वास्तविक संसाधन R के स्थान पर राबर्ट्सन ने कुल सौदों का परिमाण T रखा। राबर्ट्सन का समीकरण यह है।

$$M = PkT$$

अथवा $P = \frac{M}{kT}$

जहां Pकीमत स्तर है, M मुद्रा की कुल मात्रा, k वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा (T) का अनुपात है जिसे लोग नकदी शेष के रूप में अपने पास रखना चाहते हैं और Tसमाज द्वारा एक वर्ष में खरीदी गई वस्तुओं तथा सेवाओं की कुल मात्रा है।

यदि हम Pको कीमत–स्तर की बजाय मुद्रा का मूल्य मान लें, जैसा कि पीगू के समीकरण में है, तो राबर्ट्सन का समीकरण ठीक पीगू के समीकरण P=kT/M का रूप धारण कर लेता है। राबर्ट्सन का समीकरण पीगू के समीकरण से अच्छा समझाा जाता है क्योंकि वह मुद्रा के मूल्य का एक अधिक सरल स्पष्टीकरण है।

नकदी शेष सिद्धांत की आलोचनाएं (Criticisms of the Cash Balance Theory)

मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के नकदी शेष सिद्धांत की निम्न आधार पर आलोचना की गई है–

1. **स्वयं–सिद्ध (Truisms) –** सभी नकदी शेष समीकरण भी स्वयं–सिद्ध उक्तियां हैं। कोई भी केम्ब्रिज समीकरण ले लीजिए: जैसे मार्शल का P = Mk/Y अथवा पीगू का P = kR/M अथवा राबर्ट्सन का P = M/kT प्रत्येक मुद्रा की मात्रा तथा कीमत–स्तर के बीच समानुपाती सम्बन्ध स्थापित करता है।

2. **कीमत–स्तर मुद्रा की कय–शक्ति को नहीं मापता (Price Level does not measure the Purchasing Power) –** केन्ज़ ने अपनी पुस्तक A Treatise on Money (1930) में पीगू के नकदी शेष समीकरण की तथा अपने ही वास्तविक शेष समीकरण की आलोचना की है। पीगू ने गेहूं का कीमत–स्तर मापा है जैसे उसने स्वयं उपभोग इकाईयों में मापा है, उसमें गभीर दोष है। दोनों ही समीकरणों में कीमत–स्तर मुद्रा की क्रय–शक्ति को नहीं मापता।

3. **कुल जमा को अधिक महत्व (More Importance to Total Deposits) –** ''केम्ब्रिज समीकरण की एक और त्रुटि यह है कि यह उन कुल जमा विचारणाओं पर लागू होता है जो मूलतः केवल आय–जमा से सम्बन्ध रखती हैं'', और k को जो महत्व दिया गया है ''वह उस स्थिति में भ्रामक बन जाता है जब उसे आय–जमा से परे लेजाया जाता है।''

4. **अन्य कारको की उपेक्षा (Neglect of other Factors) –** फिर नकदी शेष समीकरण इस बारे में कुछ नहीं बताता कि आय व्यवसाय तथा बचत के उद्देश्यों से धारित जमाओं के अनुपातों में परिवर्तन के कारण कीमत–स्तर में क्या परिवर्तन होगें।

5. **बचत–निवेश के प्रभाव की उपेक्षा (Neglect of Saving-Investment Effect) –** फिर, यह समीकरण अर्थव्यवस्था में बचत–निवेश असमानता के कारण कीमत स्तर में होने वाले परिवर्तनों का विश्लेषण करने में असमर्थ है।

6. **k और y स्थिर नहीं (k and y not Constant) –** केम्ब्रिज समीकरण यह मानकर चलता है कि k और y (अथवा R या T) स्थिरांक हैं। यह मान्यता अव्यवहारिक है, क्योंकी यह जरूरी नहीं कि नकदी शेष kऔर लोगों की आय y अल्पावधि के दौरान भी स्थिर रहें।

7. कीमतों के गत्यात्मक व्यवहार को स्पष्ट करने में असफल (Fails to Explain Dynamic Behaviour of Prices) – सिद्धांत यह तर्क प्रस्तुत करता है कि मुद्रा की कुल मात्रा समानुपातिक रूप से सामान्य कीमत–स्तर को प्रभावित करती है। जबकि वास्तविकता यह है कि मुद्रा की मात्रा कीमत–स्तर को ''निश्चय ही एक अव्यवस्थित तथा अप्रत्याशित ढंग'' से प्रभावित करती है।

8. मुद्रा मात्रा और कीमत स्तर में सीधा सम्बन्ध नहीं (No Direct Relation between Money Quantity and Price Level)– नकदी शेष सिद्धांत की एक कमजोरी यह भी है कि वह अन्य ऐसे प्रभावों की उपेक्षा करता है जैसे ब्याज की दर जो कीमत स्तर पर निर्णायक एवं महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। मुद्रा की मात्रा और कीमत–स्तर में प्रत्यक्ष संबंध नहीं है बल्कि ब्याज की दर, निवेश, उत्पादन, रोजगार और आय के मार्ग से अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

9. मुद्रा की माग ब्याज निरपेक्ष नहीं (Demand for Money not Interest Inelastic) – मुद्रा की मात्रा और कीमत–स्तर में कारणवाचक घटक के रूप में ब्याज की दर की उपेक्षा का परिणाम यह हुआ कि मुद्रा की माँग को ब्याज निरपेक्ष मान लिया गया। इसका तात्पर्य है कि मुद्रा केवल विनिमय के माध्यम का काम करती है और इसमें अपने आप में मूल्य के भंडार जैसी कोई उपयोगिता नहीं है।

10. वस्तु बाजार की उपेक्षा (Neglect of Goods Market) – फिर, नकदी शेष दृष्टिकोण में ब्याज की दर के प्रभाव को छोड़ देने का परिणाम यह हुआ कि नव–क्लासिकी अर्थशास्त्री वस्तुओं और मुद्रा बाजारों की परस्पर निर्भरता को पहचान नहीं पाए।

11. वास्तविक नकदी प्रभाव की उपेक्षा (Neglect Real Balance Effect) – पेटिनकिन ने केम्ब्रिजीय अर्थशास्त्रियों की इस बात के लिए भी आलोचना की है कि वे वस्तु बाजार तथा मुद्रा बाजार में समन्वय स्थापित करने में असफल रहे हैं। इसका प्रमाण वह द्विभाजन (dichotomy)है जिसे वे दोनों बाजारों के बीच बनाए रखते हैं। द्विभाजन का मतलब है अर्थव्यवस्था में निरपेक्ष कीमत–स्तर को मुद्रा की माग तथा पूर्ति निर्धारित करती है और सापेक्ष कीमत–स्तर को वस्तुओं की माग तथा पूर्ति निर्धारित करती है।

12. मुद्रा की माँग – लोच इकाई नहीं(Elasticity of Demand for Money not Unity)–नकदी शेष सिद्धांत यह स्थापित करता है कि मुद्रा की माग की लोच इकाई होती है जिसका मतलब है कि मुद्रा की माग में वृद्धि होने से कीमत–स्तर में अनुपाती कमी हो जाती है।

13. मुद्रा की सट्टा माँग की उपेक्षा (Neglects Speculative Demand for Money) – नकदी शेष सिद्धांत की एक और बड़ी कमजोरी यह है कि यह मुद्रा की सट्टा माँग पर ध्यान नहीं देता। नकदी शेष की सट्टा माँग की उपेक्षा का परिणाम यह होता है कि मुद्रा की माँग पूर्णरूप से मुद्रा आय पर निर्भर हो जाती है, और परिणामतः पुनः ब्याज की दर की भूमिका और मुद्रा के मूल्य संचय कार्य की उपेक्षा हो जाती है।

3.2.3 नगद लेन देन दृष्टिकोण तथा नगदी शेष दृष्टिकोण की तुलना

नगद लेन–देन सिद्धांत और नकदी शेष सिद्धांत में कुछ समानताएं एवं असमानताएं पाई जाती हैं। इनका विवेचन इस प्रकार किया गया है–

1. समानताएं (Similarities)

दोनों सिद्धांतों में निम्न समानताएं हैंः

1. समान निष्कर्ष (Same Conclusion) – कीमत स्तर और मुद्रा की मात्रा में सीधा और समानुपात संबंध होता है तथा मुद्रा के मूल्य और मुद्रा की मात्रा के बीच विपरीत अनुपाती संबंध पाया जाता है

2. समान समीकरण(Similar Equations) – फिशर का समकरण P=MV/T, राबर्ट्सन के समीकरण P=M/kT के समान है। फिर भी, दोनों में केवल अंतर दो चिन्हों, V और k, में है जो एक दूसरे के व्युत्क्रम (reciprocal)हैं। जबकि V=1/k और k=1/V। यहां V, व्यय करने की दर को व्यक्त करता है और k मुद्रा की मात्रा को जो लाग नकदी शेषों के रूप में रखना चाहते हैं या खर्च करना नहीं चाहते हैं।

3. मुद्रा समान तत्व के रूप में (Money as the Same Phenomenon) – दोनों दृष्टिकोणों में मुद्रा की कुल मात्रा को दिए गए चिन्ह एक ही तत्व को व्यक्त करते हैं। फिशर के समीकरण में MV+M 'V' पीगू और राबर्ट्सन के समीकरणों में M और केन्ज के समीकरण में n मुद्रा की कुल मात्रा को व्यक्त करते हैं।

असमानताएं (Dissimilarities)

उपरोक्त समानताओं के बावजूद दोनों दृष्टिकाणों में बहुत–सी असमानताएं पाई जाती है –

1. मुद्रा के कार्य (Functions of Money)– दोनों विवरण मुद्रा के विभिन्न कार्यों पर बल देते हैं। फिशर का दृष्टिकोण विनिमय के माध्यम कार्य पर बल देता है, जबकि केम्ब्रिज दृष्टिकोण मुद्रा के मूल्य–संचय कार्य पर बल देता है।

2. प्रवाह और स्टॉक (Flow and Stock)– फिशर के सिद्धांत में मुद्रा प्रवाह धारणा है, जबकि केम्ब्रिज सिद्धांत में यह स्टॉक धारणा है। पहला समयावधि से संबद्ध है और दूसरा निश्चित समय से।

3. Vऔर kभिन्न (V and k Different)– दोनों विवरणों में Vऔरk चिन्हों के अर्थ भिन्न हैं। फिशर के समीकरण में Vव्यय की दर को व्यक्त करता है और राबर्ट्सन के समीकरण मेंk नकदी शेषों को व्यक्त करता है जिसे लोग अपने पास रखना चाहते हैं। पहला चलन की लेन–देन गति पर बल देता है और दूसरा आय गति पर।

4. कीमत–स्तर की प्रकृति (Nature of Price Level)–फिशर के समीकरण में Pसभी वस्तुओं और सेवाओं के औसत कीमत स्तर को व्यक्त करता है। परन्तु केम्ब्रिज समीकरण में Pअन्तिम या उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों को व्यक्त करता है।

5. T की प्रकृति (Nature of T) – फिशर के समीकरण में Tमुद्रा से विनिमय की गई वस्तुओं और सेवाओं की कुल मात्रा को व्यक्त करती है, जबकि केम्ब्रिज विवरण में यह मुद्रा से विनिमय की गई अन्तिम या उपभोक्ता वस्तुओं को व्यक्त करती है।

6. मुद्रा के लिए माँग और पूर्ति पर बल (Emphasis on Demand and Supply for Money) – फिशर का दृष्टिकोण मुद्रा की पूर्ति पर बल देता है, जबकि केम्ब्रिज दृष्टिकोण मुद्रा की माँग और पूर्ति दोनों पर बल देता है।

7. प्रकृति में भिन्न (Different in Nature) – दोनों विवरण प्रकृति में भिन्न हैं। फिशर का विवरण यांत्रिक है क्योंकि यह इस बात की व्याख्या नहीं करता कि V में परिवर्त कैसे Pमें परिवर्तन लाते हैं। दूसरी ओर केम्ब्रिज विवरण वास्तविक है क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक घटकों का अध्ययन करता है जो kको प्रभावित करते हैं।

बोध प्रश्न ख

1. मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के सबंध में नकदी शेष दृष्टिकोण क्या है?
   ....
   ....
   ....
   ....
2. फिशर दृष्टिकोण पर कैम्ब्रिज दृष्टिकोण की श्रेष्ठता के सबंध में बताएं।
   ....
   ....
   ....
   ....
3. निम्नलिखित कथनों में कौन सही है और कौन गलत?

   (i) मार्शल के समीकरण में Pकेवल Mपरिवर्तन से ही नहीं बल्कि Kमें परिवर्तन से भी प्रभावित होता है।

   (ii) मार्शल के दृष्टिकोण में 'V' 'K' के पारस्परिक संबंध (reciprocal)का प्रतिनिधित्व करता है।

   (iii) कुल वास्तविक आय के अनुपात के कुछ भाग को वैध मुद्रा में और कुछ भाग को बैंक जमा में रखा जाता है।

   (iv) विनिमय के समीकरण में 'K' मुद्रा आय के उस अंश का द्योतक होता है जिसे लोग करेंसी के रूप में रखना चाहते है।

3.3 केन्ज़ का मुद्रा और कीमतों का सिद्धांत (The Keynesian Theory of Money and Prices)

General Theory के अध्याय 21 में केन्ज़ ने क्लासिकी मुद्रा सिद्धांतवादियों की इस बात के लिए आलोचना की है कि उन्होने मुद्रा सिद्धांत तथा मूल्य सिद्धांत को अलग–अलग रखा है। उन्होने मुद्रा का परिमाण सिद्धांत एक नए रूप में प्रस्तुत किया। ऐसा करने के लिए केन्ज़ ने मुद्रा सिद्धांत को मूल्य सिद्धांत से एकीकृत करने का प्रयत्न किया और मुद्रा सिद्धांत में ब्याज का सिद्धांत भी मिला दिया ''परन्तु उत्पादन के सिद्धांत के माध्यम से ही मूल्य सिद्धांत तथा मुद्रा सिद्धांत परस्पर समुचित रूप से स्थित हुए हैं।''

केन्ज़ का कहना है कि कीमतों पर मुद्रा के परिमाण में परिवर्तन का प्रभाव अप्रत्यक्ष एवं असमानुपती (non-proportional) होता है।

केन्ज़ को शिकायत है कि ''अर्थशास्त्र को दो कक्षों में विभक्त कर दिया गया है और मूल्य सिद्धांत एवं मुद्रा सिद्धांत तथा कीमतों के बीच कोई दरवाजा या खिड़की नहीं रखी गई।'' ''वस्तुओं की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित सापेक्ष (relative)कीमत स्तर तथा मुद्रा की माँग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित निरपेक्ष (absolute)कीमत स्तर के बीच इस द्वि–विभाजन का कारण यह है कि क्लासिकी–मौद्रिक अर्थशास्त्री मूल्य सिद्धांत तथा मुद्रा सिद्धांत को एकीकृत करने में असफल रहे हैं। परिणामतः मुद्रा पूर्ति में होने वाले परिवर्तन केवल निरपेक्ष कीमत स्तर को प्रभावित करते हैं, परन्तु सापेक्ष कीमत स्तर पर कोई प्रभाव नहीं डालते।

केन्ज़ द्वारा पुनः व्यवस्थापित मुद्रा का परिमाण सिद्धांत (Keynes' Reformulated Quantity Theory of Money)

1. केन्ज़ द्वारा पुनः व्यवस्थापित मुद्रा का परिमाण सिद्धांत निम्न मान्यताओं पर आधारित हैंः
2. जब तक थोड़ी–बहुत बेरोजगारी भी रहती है तब तक उत्पादन के सभी साधनों की पूर्ति पूर्ण लोचदार होती है।
3. सभी बेकार साधन समरूप, पूर्णतया विभाज्य एवं परस्पर परिवर्तनशील होते हैं।
4. पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते हैं जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन बढ़ने पर कीमतें नहीं बढ़ती या घटतीं।
5. जब तक कोई भी बेकार संसाधन रहते हैं, तब तक प्रभावी माँग तथा मुद्रा का परिमाण उसी अनुपात में बढ़ता है।

इन मान्यताओं के दिए हुए होने पर मुद्रा के परिमाण तथा कीमतों में होने वाले परिवर्तनों के बीच कार्य–कारण की केन्जीय श्रृंखला ब्याज की दर के माध्यम से अप्रत्यक्ष होती है। इसलिए जब मुद्रा का परिमाण बढ़ता है तो उसका पहला असर ब्याज की दर पर पड़ता है जो गिरने लगती है। ब्याज की दर गिरने से

निवेश की मात्रा बढ़ेगी। बढ़े हुए निवेश के कारण गुणक प्रभाव के माध्यम से प्रभावी माँग बढ़ेगी जिसके परिणामस्वरूप आय, उत्पादकता और रोजगार बढ़ेगे, क्योकि बेरोजगारी की स्थिति में उत्पादन के साधनों की पूर्ति का वक्र लोचदार होता है, मजदूरी तथा गैर–मजदूरी साधन स्थिर पारिश्रमिक दर पर उपलब्ध होते हैं। क्योंकि पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते हैं, इसलिए जब तक थेड़ी–सी बेरोजगारी भी रहती है तब तक उत्पादन में वृद्धि होने पर कीमतें नहीं बढ़ेगी।

''परन्तु जब एक बार पूर्ण रोजगार की स्थिति आ जाती है तो मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन होने पर उत्पादन में बिल्कुल कोई परिवर्तन नहीं होता और यही बात प्रभावी माँग के संबंध में होती है। पूर्ति में परिवर्तनों के होने से उत्पादन की पूर्ति की लोच, जो बेरोजगारी की स्थिति में अनन्त थी, गिर कर शून्य हो जाती है। मुद्रा की पूर्ति में होने वाले परिवर्तनों का सम्पूर्ण प्रभाव कीमतों पर पड़ता है जो प्रभावी माँग में वृद्धि के साथ ठीक उसी अनुपात में बढ़ती है।''

इसलिए पुनः व्यवस्थापित मुद्रा का परिमाण सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि मुद्रा के परिमाण में वृद्धि होने पर कीमतें तभी बढ़ती हैं जब पूर्ण रोजगार की स्थिति आ जाती है, उससे पहले नहीं। इस प्रकार, केन्ज ने सिद्ध किया कि मुद्रा की मात्रा का कीमत स्तर पर प्रभाव प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष होता है। केन्ज ने इसे कारणता का विपरीत सिद्धांत (Contra-Quantity Theory of Money)कहा। इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है,

$$\Delta M \downarrow \; R \uparrow \Delta I \uparrow \Delta Y \uparrow \Delta O \uparrow \; \Delta N \; \uparrow \; \Delta C \uparrow \; \Delta P$$

जहां Δ परिवर्तन है, M मुद्रा, R ब्याज दर, Iनिवेश, Y आय, O उत्पादन, N रोजगार, Cलागत और Pकीमत–स्तर है।

पुनः व्यवस्थापित मुद्रा के परिमाण सिद्धांत को आगे चित्र Aऔर B में दिखाया गया है। जहां OTCतो मुद्रा के परिमाण से संबंधित उत्पादन वक्र है और PRCमुद्रा के परिमाण से संबंधित कीमत वक्र है। चित्र का भाग (A)बताता है कि जब मुद्रा का परिमाण Oसे बढ़कर Mपर चला जाता है, तो OTCवक्र के OTभाग पर उत्पादन का स्तर भी बढ़ जाता है। जब मुद्रा का परिमाण OMस्तर पर पहुंच जाता है तो पूर्ण रोजगार उत्पादन OQ_F किया जाता है। परन्तु Tबिन्दु के बाद उत्पादन वक्र अनुलम्ब हो जाता है, क्योंकि मुद्रा के परिमाण में हाने वाली और वृद्धि, उत्पादन को पूर्ण रोजगार स्तर OQ_F से आगे नहीं बढ़ा सकती।

चित्र के भाग (B)मुद्रा के परिमाण और कीमतों के बीच संबंध को व्यक्त करता है। जब तक बेरोजगारी रहेगी, कीमतें स्थिर रहेंगी, चाहे मुद्रा के परिमाण में कितनी ही वृद्धि क्यों न हो। कीमतें तभी बढ़ने लगती हैं जब पूर्ण का स्तर आ जाता है। चित्र में, उत्पादन के पूर्ण रोजगार स्तर OQ_F के अनुरूप मुद्रा के OMपरिमाण पर कीमत स्तर OPस्थिर रहता है। परन्तु मुद्रा के परिमाण में OMसे आगे होने वाली वृद्धि से कीमतें उसी अनुपात में बढ़ती हैं जिस अनुपात में मुद्रा का परिमाण बढ़ता है। इसे कीमत वक्र PRCके RCभाग द्वारा दिखाया गया है।

चित्रः

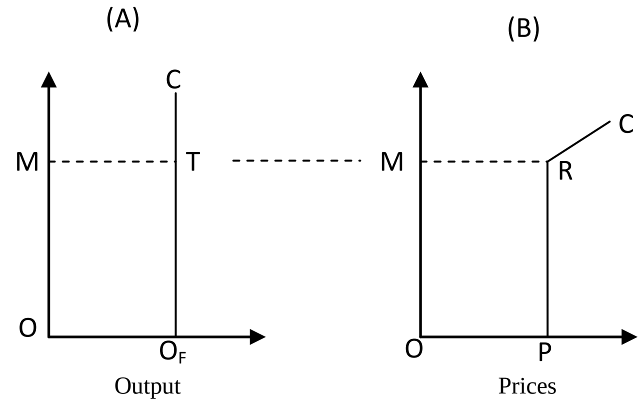

इसकी जटिलताएं (Its Complications)

वास्तविक जगत इतना जटिल है कि जिन मान्यताओं पर पुनः व्यवस्थापित मुद्रा का परिमाण सिद्धांत आधारित है, उनका सरलीकरण ठीक नहीं सिद्ध होगां। निम्न जटिलताएं इस कथन को सीमित करेंगी कि जब तक बेरोजगारी है, तब तक जिस अनुपात में मुद्रा का परिमाण परिवर्तित होगा उसी अनुपात में रोजगार परिवर्तित होगा और जब पूर्ण रोजगार होगा, तो जिस अनुपात में मुद्रा का परिमाण परिवर्तित होगा उसी अनुपात में कीमतें परिवर्तित होगीं।

(1) जिस अनुपात में मुद्रा का परिमाण परिवर्तित होगा ठीक उसी अनुपात में प्रभावी माँग परिवर्तित होगी।

(2) क्योंकि संसाधन समरूप हैं, इसलिए ज्यों–ज्यों धीरे–धीरे रोजगार बढ़ेगा त्यों–त्यों घटते प्रतिफल होंगे, स्थिर प्रतिफल नहीं होंगे।

(3) संसाधन अन्तः परिवर्तनीय नहीं हैं, इसलिए कुछ वस्तुएं बेलोच पूर्ति की स्थिति में पहुंच जाएंगी जबकि अन्य वस्तुआं के उत्पादन के लिए उपलब्ध संसाधन अभी भी बेरोजगार होंगे।

(4) पूर्ण रोजगार की स्थिति आने से पूर्व मजदूरी बढ़ने लगेगी।

(5) सीमान्त लागत में प्रवेश होने वाले साधनों का पारिश्रमिक उसी अनुपात में नहीं बढ़ेगा।

केन्ज़ के सिद्धांत की आलोचना

केन्ज़ स्वयं अपनी दोनों पुस्तकों (A Treatise on Money और The general Theory) में अपने मूलभूत समीकरणों के कुछ दोषों का वर्णन किया है। इसके अलावा कुछ अन्य अर्थशास्त्री भी विभिन्न कारणों के आधार पर आलोचना करते हैं।

1. केन्ज़ का सिद्धांत एक बहुत सामान्य सिद्धांत है। इसकी सहायता से कीमतों में वास्तविक परिवर्तनों का अध्ययन करना कठिन है। विशिष्ट वस्तुओं के वितरण की बाजार स्थितियां इतनी ज्यादा बदलती रहती हैं, विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन की तकनीकी स्थितियां इतनी भिन्न होती हैं और विभिन्न वस्तुओं की माँगकी स्थितियों में परिवर्तनों का विभिन्न वस्तुओं पर प्रभाव इतना भिन्न होता है कि जो बातें कुल माँग , कुल उत्पादन और सामान्य तकनीकी स्थितियों आदि के रूप में कही गयी हैं वे कीमतों के सिद्धांत के संदर्भ में केवल एक शुरू की कड़ी ही मानी जा सकती है और कुछ नहीं।

2. केन्ज़वाद निरूपण की प्रकृति मूल रूप में स्थैतिक है। वास्तविक जगत में उत्पादन और उपभोग के कार्य किसी अवधि के आगे भी चलते रहते हैं। वेभूतकाल से चले आ रहे होते हैं या भविष्य में जारी रहने वाले होते हैं। भविष्य में उनके संघटन एवं उस कारण सापेक्ष कीमतों के सेट में परिवर्तन होता है। स्थैतिक होने के कारण केन्ज़वादी सिद्धांत इनका स्पष्टीकरण नहीं कर पाता।

3. मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन से ब्याज की दर में परिवर्तन के द्वारा उत्पादन के स्तर को परिवर्तित किया जा सकता है। यह प्रभाव बहुत सी बातों पर निर्भर करता है। इसमें शक नहीं कि मुद्रा की पूर्ति को परिवर्तित करके, ब्याज की दर को और उत्पादन के स्तर को परिवर्तित करना संभव है। लेकिन यह तभी होगा जबकि लागतों और आगमों से संबंधित अन्य बातें उचित रूप से परिचालित हों।

केन्ज़ के मुद्रा और कीमतों के विश्लेषण की श्रेष्ठता

1. केन्ज ने मौद्रिक सिद्धांत को मूल्य के सिद्धांत के साथ संघठित किया। मूल्य का सिद्धांत बताता है कि कीमत (जो मुद्रा रूप में व्यक्त मूल्य है) उत्पाद बाजार में माँग और पूर्ति की स्थितियों से निर्धारित होती है और ये स्थितियां सीमान्त लागत, सीमान्त आगम और लोच आदि कारकों से प्रभावित होती हैं। यह भी दर्शाता है कि उत्पादन और रोजगार की अल्पकालीन बेलोचदार पूर्ति से उत्पादन लागतें बढ़ती हैं और इससे कीमतें बढ़ती हैं।

2. मूल्य सिद्धांत और मुद्रा के सिद्धान्त को संघठित करने के अलावा केन्ज नेउत्पादन के सिद्धांत और मुद्रा के सिद्धांत को भी संघठित किया।

3. क्लासिकी सिद्धांत के अनुसार मुद्रा की पूर्ति में प्रत्येक वृद्धि स्फीतिकारी होती है। केन्ज़ के अनुसार पूर्ण रोजगार की स्थिति के बाद ही मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि स्फीतिकारी होती है। इस प्रकार मुद्रा की पूर्ति में स्फीतिकारी और गैर–स्फीति वृद्धि में भेद करके केन्ज़ का सिद्धांन्त स्फीति को सही रूप में समझने में सहायक है।

4. केन्ज़ के सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण गुण यह है कि इसने इस पुरानी धारणा को दूर किया कि कीमतें प्रत्यक्ष रूप से मुद्रा की मात्रा से निर्धारित होती हैं। उनके अनुसार मुद्रा की मात्रा और कीमतों के बीच जो कारणात्मक प्रक्रिया है वह अप्रत्यक्ष, अनिश्चित, जटिल है और वह ब्याज की दर में परिवर्तिन द्वारा लायी जाती है।

5. केन्ज़ का सिद्धांत सामान्य कीमत–स्तर और व्यक्तिगत कीमतों में भेद करता है। विभ्न्नि वस्तुओं की अलग–अलग कीमतें नकी माँग और पूर्ति तथा बाजार के प्रकार से निर्धारित होती हैं जबकि सामान्य कीमत स्तर बहुत सी बातों पर निर्भर करता है।

3.4 मिल्टन फ्रिडमैन का मुद्रा का परिमाण सिद्धांत

केन्ज़ के अनुसार फिशर और कैम्ब्रिज अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित मुद्रा का परिमाण सिद्धांत बहुत एक पक्षीय है। यह मुद्रा की पूर्ति और कीमत स्तर में सीधा सम्बन्ध मानता है। इसी कारण इस सिद्धांत की लोकप्रियता घटी। 1956 में मिल्टन फ्रिडमैन ने एक पुस्तक 'स्टडीज इन क्वांटिटी थ्योरी ऑफ मनी' (Studies in Quantity Theory of Money) सम्पादित की जिसने मुद्रा के परिमाण सिद्धांत की पुनः प्रतिस्थापना में सहायता की।

1. इसके द्वारा दिये गये तर्क निम्नलिखित हैं:
2. आधुनिक सिद्धांत मुद्रा की माँग का सिद्धान्त है,
3. फ्रिडमैन के अनुसार मुद्रा एक परिसम्पत्ति की भाति कार्य करती है। मुद्रा धन का केवल एक रूप है, इसके अन्य रूप बौण्ड, शेयर, भौतिक वस्तुएं और मानवीय धन है। इनमें से प्रत्येक की भिन्न विशेषताएं हैं। प्रत्येक मुद्रा या   वस्तु के रूप में प्रतिफल प्रदान करती है। फ्रिडमैन के अनुसार, मुद्रा की दूसरी प्रकारकी माँग लेन–देन हेतु है और इसमें मुद्रा विनिमय के माध्यम का कार्य करती है।
4. फ्रिडमैन के अनुसार मुद्रा की माँग कीमत और आय स्तरों के अतिरिक्त मुद्रा को रखने की लागत द्वारा भी निर्धारित होती है। मुद्रा को रखने की लागत में

   क) परिसम्पत्तियों के वैकल्पिक रूपों पर ब्याज की दर

   ख) कीमत स्तर में   परिवर्तत की संभावित दर, शामिल हैं।

इनमें से किसी एक या दोनों मे वृद्धि मुद्रा की उस मात्रा को कम कर देगी जो लोग अपने पास नगद रखना चाहते हैं। मुद्रा को रखने की ऊंची लागत पर लोग अपने नगद शेषों को कम कर देगें। विलोमतः ब्याज की दर में कमी या कीमत स्तर में कमी मुद्रा रखने की लागत को घटाती है। लोग अधिक नगद–शेष रखने को प्रेरित होंगे। संक्षेप में मुद्रा की माँग और नगद शेषों को रखने की लागत में विपरीत सम्बन्ध होता है।

पूर्व में वर्णित बातों के आधार पर फ्रैडमैन ने मुद्रा के माँग फलन की परिभाषा निम्नलिखित समीकरण के रूप में दी गई है:

$$M = f(P, Y, 1/p, dp/dt, rb, re, w, u)$$

इसमें:

M - मुद्रा का सामान्य स्टॉक

P - कीमत स्तर

Y- 'स्थायी' आय

1/p, dp/dt - वास्तविक परिसम्पत्ति के प्रति रू. मौद्रिक मूल्य में मूल्य वृद्धि या मूल्यह्रास के रूप में प्रतिफल की दर

rb- बौण्डों पर प्रतिफल

re - शेयरों पर प्रतिफल

w - गैर–मानवीय और मानवीय धन का अनुपात

u- धन अर्जनकर्ताओं की रूचि व प्राथमिकताएं

इस माँग फलन के आधार पर फ्रिडमैन का तर्क था कि नगद शेषों की माग को प्रभावित करने वाले कारकों को तीन श्रेणियों में वर्ग्रीकृत किया जा सकता है:

1. विभिन्न प्रकार की परिसम्पत्तियों में रखी गयी वास्तविक आय व धन का स्तर
2. नगद शेषों को रखने की अवसर लागत और

3. धन के धारकों की रूचि और प्राथमिकताएं।

फ्रिडमैन द्वारा पूंजी सिद्धांत के मूल नियमों (आय, पूंजी का प्रतिफल है, और पूंजी आय के वर्तमान मूल्य का) का मौद्रिक सिद्धांत पर प्रयोग शायद केन्ज़ के सामान्य सिद्धांत के बाद मौद्रिक सिद्धांत में सबसे महत्वपूर्ण घटना है। फ्रिडमैन के विश्लेषण का शायद सर्वाधिक महत्वपूर्ण आशय यह है कि यह 'आय' की संकल्पना को मौद्रिक विश्लेषण के प्रसंग में लाता है। उसके विश्लेषण में आय संपत्ति से होने वाली प्राप्ति के सिद्धांत के अनुरूप होती है, राष्ट्रीय आय के लेखाकरण के लिए सुविधा के अनुरूप नहीं।

फ्रिडमैन के मुद्रा के सिद्धांत का आलोचनात्मक विश्लेषणः फ्रिडमैन के प्रयोगाम्मक कार्य की मुख्य आलोचना यह है कि उसके कार्य से प्राप्त परिणाम, उसने जिस तरह से मुद्रा की व्याख्या की उस पर निर्भर करते हैं। यद्यपि फ्रिडमैन ने मुद्रा के स्टॉक और समस्त धन के सम्बन्ध पर जोर दिया, फिर भी उसने अपने प्रयोगात्मक अध्ययन में ब्याज की दरों को मुद्रा की माँग के महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व के रूप में नहीं पाया। उसका विश्लेषण यह दर्शाता है कि मुद्रा की माँग और ब्याज की दर में सम्बन्ध कमजोर है।

बोध प्रश्न ग

1. मुद्रा और कीमतों के संबंध में केन्जवादी सिद्धांत क्या है?

....
....
....
....

2. फ्रिडमैन ने मुद्रा के परिमाण सिद्धांत को क्या रूप दिया?

....
....
....
....

3. फ्रिडमैन के अनुसार मुद्रा की माँग के निर्धारक क्या है? उनकी व्याख्या कीजिए।

....
....
....
....

4. निम्नलिखित कथनों में से कौन सही है और कौन गलतः

(i) केन्ज़ के अनुसार अर्थव्यवस्था में मुद्रा तटस्थ रहती है।

(ii) केन्ज़ इस कथन से सहमत नहीं था कि मुद्रा की मात्रा में वृद्धि और कीमतों के स्तर में वृद्धि के बीच प्रत्यक्ष कार्य–कारण संबंध होता है।

(iii) मुख्य रूप से कून्ज़ के प्रयासों के फलस्वरूप ही मुद्रा के परिमाण सिद्धांत की पुनः चर्चा होने लगी है।

(iv) फ्रिडमैन का कहना है कि चूंकि मुद्रा की पूर्ति स्थिर होती है अतः मुद्रा की माँग ही आर्थिक क्रिया को प्रभावित करती है।

3.5 सारांश

सामान्य कीमत स्तर में बारबार उतार–चढ़ाव होने के कारण अर्थशास्त्रियों को इस संबंध में विशेष रूप से ध्यान देना पड़ा। कीमत–स्तर में उतार–चढ़ाव के अनेक कारण हैं लेकिन सिद्धांतकारों के अनुसार कीमतों में उतार–चढ़ाव का मुख्य कारण मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन का होना है।

फिशर के नकदी लेन–देन दृष्टिकोण के अनुसार कीमत स्तर (P)में परिवर्तन का संबंध मुद्रा की मात्रा (M)में परिवर्तन, उसके संचलन वेग (V)और लेन–देन की मात्रा (T)के साथ होता है। यह मानते हुए कि Vऔर Tसमयोपरांत स्थिर होते हैं, फिशर ने मुद्रा की मात्रा और कीमत स्तर के बीच प्रत्यक्ष और आनुपातिक संबंध स्थापित किया। फिशर के दृष्टिकोण की जा आलोचनाएं की जाती हैं उनका आधार मुख्यतः ये मान्यताएं ही हैं।

फिशर के मुद्रा के परिमाण सिद्धांत में मुद्रा के पूर्ति पक्ष पर जोर दिया गया है, परन्तु नकदी शेष दृष्टिकोण में मुद्रा के माग पक्ष पर जोर दिया गया है। नकदी शेष दृष्टिकोण के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति अपनी सुविधा के लिए अपनी आय के कुछ अंश को नकद या तरल रूप में रखना पसंद करता है। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत उस तरलता के महत्व पर तो बल दिया ही गया है जो संतुलन आय और रोजगार के निर्धारण में महत्वपूर्ण होती है परन्तु साथ ही साथ अर्थव्यवस्था में उतार–चढ़ाव के नियंत्रण में मुद्रा–नीति की सीमाओं की ओर भी ध्यान दिया गया है।

केन्ज़ ने मुद्रा के परिमाण संबंधी क्लासिकी सिद्धांत की आलोचना की और कहा कि अर्थव्यवस्था में जब तक ऐसे कुछ संसाधन उपलब्ध हैं जिनका उपयोग नहीं किया गया है तब तक मुद्रा की मात्रा में वृद्धि और कीमत स्तर में वृद्धि के बीच कोई प्रत्यक्ष और कार्य–कारण संबंध नहीं होता। यह संबंध अप्रत्यक्ष और अत्यंत दूर का होता है क्योंकि ब्याज की दर में परिवर्तन के द्वारा अत्यंत जटिल संबंध स्थापित हो जाता है।

मिल्टन फ्रिडमैन ने मुद्रा के उस परिमाण सिद्धांत की पुनः स्थापना की जो मुद्रा की माँग का सिद्धांत है, उत्पादन, मुद्रा आय अया कीमतों का सिद्धात नहीं है। पूंजी के रूप में मुद्रा की माँग का निरूपण करने के संबंध में फ्रिडमैन ने केन्ज़वादी सिद्धांत से अपने को अलग रखा। उसने शुरूआंत संपत्ति की वृहत् संकल्पना से की, जिसके अंतर्गत आय के सभी स्त्रोत (मानव जाति को सम्मिलित करते हुए) आ जाते हैं। फ्रिडमैन मुद्रा की माँग तथा कुल संपत्ति और संपत्ति को किसी और रूप में रखने से उससे होन वाली मुद्रा आय के बीच संबंध स्थापित करता है। वह मुद्रा के माँग फलन को निकालता है जो कीमत स्तर, बौंड, इक्विटी–आय, कीमत स्तर में परिवर्तन की दर, आय और रूचि चर पर निर्भर करते हैं।

3.6 उपयोगी शब्दावली

- **माँग जमा (Demand Deposits)**: बैंक जमा जिसे नोटिस दिए बिना किसी भी समय निकाला जा सकता है।

- **संचय (Hoarding)** : किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह द्वारा सक्रिय संचलन से पैसा निकालकर उसे खर्च करने के बजाय अपने पास जमा रखना।
- **पूंजी की सीमान्त क्षमता (Marginal Efficiency of Capital)**: ब्याज की वह दर जो किसी परियोजना के वर्तमान मूल्य को घटा कर शून्य के बराबर कर देती है
- **मुद्रा नीति (Monetary Policy)** : आर्थिक नीति का वह भाग जो स्फीति के नियंत्रण, भुगतान शेष को ठीक करने, असंतुलन को दूर करने जैसे आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अर्थव्यवस्था में मुद्रा के स्तर या तरलता को विनियमित करता है।
- **उपभोग प्रवृति (Propensity to Consume)** : आय में अत्यंत अल्प वृद्धि का वह अनुपात जिसे बढ़े हुए उपभोग व्यय पर लगाया जाएगा।
- **वास्तविक आय (Real Income)** : वास्तविक वस्तुओं और सेवाओं के रूप में मापी गई आय जो उपर्युक्त को खरीद सकती है।
- **मानव सम्पत्ति (Human wealth) :** किसी समाज के व्यक्तियों का कौ"ाल और योग्यता जिसकी सहायता से वे आय का सृजन करते है।

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3	i) गलत	ii) सही	iii) गलत	iv)	v)गलत
	vi) सही				
ख 3	i) सही	ii) सही	iii) सही	iv) सही	
ग 4	i) सही	ii) सही	iii) गलत	iv) गलत	

3.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 फिशर के विनिमय समीकरण की व्याख्या कीजिए। नकदी शेष समीकरण फिशर के समीकरण पर किस प्रकार सुधार है?

प्रश्न–2 मुद्रा और कीमतों के संबंध में केन्ज़ के सिद्धांत का विवेचन कीजिए। क्या यह कीमत स्तर में परिवर्तन की सही व्याख्या है?

प्रश्न–3 मुद्रा का परिमाण सिद्धांत क्या है? मुद्रा के मूल्य को निर्धारित करने वाले कारकों को समझने के संदर्भ में इसके महत्व की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न–4 बताए कि मिल्टन फ्रिडमैन ने परंपरागत मुद्रा के परिमाण सिद्धांत को किस प्रकार पुनः स्थापित किया।

प्रश्न–5 निम्नलिखित के संबंध में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

(i) कैम्ब्रिज विनिमय समीकरण।

(ii) मुद्रा और कीमतों के क्लासिकी विश्लेषण पर केन्ज़ के विश्लेषण की श्रेष्ठता

(iii) मुद्रा के परिमाण सिद्धांत में फिशर और फ्रिडमैन के निरूपणों के बीच मूल अंतर।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)
- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकेषन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)
- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीष कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, ैठच्च् पब्लिकेषन 2016)
- प्रो0 षिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेषन 2017)
- एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
- के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
- शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016)
- एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

****

इकाई–4 मुद्रास्फीति

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 मुद्रास्फीति का अर्थ

4.3 मुद्रास्फीति के रूप

4.3.1 माँग जन्य मुद्रास्फीति

4.3.2 लागतजन्य मुद्रास्फीति

4.4 मुद्रास्फीति के प्रभाव

4.5 मुद्रास्फीति के नियंत्रण

4.6 सारांश

4.7 उपयोगी शब्दावली

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- मुद्रास्फीति का अर्थ और परिभाष स्पष्ट कर सकें,
- मुद्रास्फीति के विभिन्न रूपों को समझा सकें,
- स्फीति अन्तराल की संकल्पना को स्पष्ट कर सकें,
- माँग जन्य और लागतजन्य मुद्रास्फीति की व्याख्या कर सकें,
- मुद्रास्फीति के प्रभाव समझ सकें, और
- मुद्रास्फीति को कैसे नियंत्रित किया जा सकता है, इस बारे में सुझाव दे सकें।

4.1 प्रस्तावना

अंग्रेजी के Inflation शब्द का हिन्दी पर्याय मुद्रास्फीति या केवल स्फीति होता है। 'स्फीति' बहुत ही विवादास्पद शब्द है। इससे तात्पर्य था – मुद्रा की मात्रा में अत्यधिक वृद्धि के परिणामस्वरूप कीमतों में द्रुत (galloping) वृद्धि। स्फीति ''ऐसा विनाशकारी रोग है जो मौद्रिक नियंत्रण के अभाव से जन्म लेता है और

जिसके परिणाम व्यापार के नियमों को खोखला बना देते हैं, बाजारों में तबाही मचा देते हैं और समझदार तक का वित्तीय विनाश कर देते हैं।'' पिछले कुछ वर्षों से आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में मुद्रास्फीति की समस्या कुछ ज्यादा ही विकट हो गई है। ये अर्थव्यवस्थाएं कीमत वृद्धि के विशिष्ट कारणों का पता लगाने और कीमत स्थिरता हेतु नीति बनाने में संलग्न है।

इससे पूर्व निरन्तर कीमत वृद्धि की मम्भीर समस्या का सामना केवल विकसित अर्थव्यवस्थाओं को ही करना पड़ता था। लेकिन हाल में विकसित देशों में भी यह समस्या उत्पन्न हो गयी है। इस इकाई में हम मुद्रास्फीति के अर्थ व प्रकृति, मुद्रास्फीति के रूप, मुद्रास्फीति के प्रभाव और इस समस्या का समाधान करने के लिये उपलब्ध उपायों पर विचार करेंगे।

4.2 मुद्रास्फीति का अर्थ

फ्रीडमैन के शब्दों में, ''स्फीति सदैव एवं सर्वत्र एक मौद्रिक घटना होती है, और उसे उत्पादन की अपेक्षा केवल मुद्रा का परिमाण तेजी से बढ़ाकर लाया जा सकता हैं। (Inflation is always and everywhere a monetary phenomenon...and can be produced only by a more rapid increase in the quantity of money than output.) **हिक्स** ने लक्ष्य किया है, ''हमारी वर्तमान कठिनाइयां केवल मौद्रिक प्रकृति की नहीं हैं।'' स्फीति को कीमतों में होने वाली निरन्तर वृद्धि के रूप में परिभाषित करते हैं। **जानसन** के अनुसार कीमतों में निरन्तर वृद्धि स्फीति है। (Inflation is a sustained rise in prices) ब्रूमैन इसे ''सामान्य कीमत स्तर में निरन्तर होने वाली वृद्धि के रूप में (a continuing increase in the general price level) परिभाषित करता है। **शपीरो** की परिभाषा इससे मिलती–जुलती है। उसके अनुसार स्फीति ''कीमतों के सामान्य–स्तर में हाने वाली निरन्तर तथा अत्यधिक वृद्धि है।'' (It is a persistent and appreciable rise in the general level of prices) **डर्नबर्ग** तथा **मैक्डूगल** की परिभाषा अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है। वे लिखते हैं, ''यह शब्द प्रायः कीमतों में निरन्तर होती रहने वाली वृद्धि को निर्दिष्ट करता है जिसे किसी सूचक द्वारा मापा जाता है जैसे उपभोक्ता कीमत सूचकांक ("The term usually refers to a continuing rise in prices as measured by an index such as the consumer price index. (CPI)"

पिगू के अनुसार मुद्रास्फीति की स्थिति तब होती है

''जब उत्पादक साधनों द्वारा किये गये उत्पादन की तुलना में उन्हें इस उत्पादन के लिये भुगतान के रूप में प्राप्त मौद्रिक आय अधिक तेजी से बढ़ती है।'' एक अन्य स्थान पर उन्होंने कहा है कि **''जब मौद्रिक आय, उपार्जन सम्बन्धी किया से अधिक तेजी से बढ़ती है तो मुद्रास्फीति की स्थिति होती है।''**

इस प्रकार मुद्रास्फीति की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(1) मुद्रास्फीति की स्थिति में हमेशा कीमतों में वृद्धि होती है। वास्तव में कीमतों में यह वृद्धि निरन्तर होती है।

(2) मुद्रास्फीति वास्तव में एक आर्थिक घटना है क्योंकि आर्थिक प्रणाली में इसका जन्म होता है और आर्थिक शक्तियों की क्रियाओं और उनकी पारस्परिक क्रियाओं से यह फलती–फूलती है।

(3) मुद्रास्फीति एक गत्यात्मक प्रक्रिया है जिसे प्राय दीर्घावधि के दौरान देखा जा सकता है।

(4) चक्रीय उतार–चढ़ाव को मुद्रास्फीति नहीं समझना चाहिए।

(5) मुद्रास्फीति एक मौद्रिक घटना है जो सामान्यतया मुद्रा की अत्यधिक पूर्ति के कारण होती है।

(6) विशुद्ध मुद्रास्फीति केवल पूर्ण रोजगार के बाद शुरू होती है।

4.3 मुद्रास्फीति के रूप

स्फीतिकारी स्थितियों के वर्गीकरण के विभिन्न आधार हो सकते हैं। कीमत वृद्धि की मात्रा और गति के आधार पर विभिन्न प्रकार की मुद्रास्फीतियों में भेद किया जा सकता है। वर्गीकरण का आधार वे प्रक्रियाएं भी हो सकती है जो इसे प्रेरित करती हैं। इसका वर्गीकरण समय के आधार पर भी किया जा सकता है, मुद्रास्फीति कभी छुट–फुट होती है तो कभी यह व्यापक होती है अन्त में मुद्रास्फीति **खुली**(Open) हो सकती है या **दुमित** (suppressed) हो सकती है।

कीमत वृद्धि की मात्रा के आधार पर वर्गीकरण : कीमत वृद्धि की तीव्रता के आधार पर मुद्रास्फीति के चार रूप हो सकते हैः

1. **मंद (creeping) मुद्रास्फीति,**
2. **चलती (walking) मुद्रास्फीति,**
3. **तेज (running) मुद्रास्फीति और**
4. **सरपट, द्रुत या अति स्फीति (jumping/galloping or hyper inflation)**

1. **मंद अथवा रेंगती स्फीति** (Creeping Inflation) : जब कीमतों में वृद्धि बहुत धीरे–धीरे होती है, तो इसे मंद स्फीति कहते हैं। कीमतों में निरन्तर वृद्धि 3 प्रतिशत प्रतिवर्ष से कम दर से होती है तो उसे मंद स्फीति कहा जाता है। कीमतों में ऐसी वृद्धि आर्थिक वृद्धि के लिए सुरक्षित एवं आवश्यक मानी गई हैं।

2. **चलती हुई स्फीति** (Walking or Trotting Inflation) : जब कीमतें साधारण रूप से बढ़ती हैं और वार्षिक स्फीति दर एक अंक की होती है। दूसरे शब्दों में जब कीमतों में वृद्धि की दर 3 से 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष के बीच अथवा 10 प्रतिशत से कम, तो वह चलती हुई स्फीति कहलाती है। इस दर पर स्फीति सरकार के लिए खतरे की घंटी होती है।

3. **दौड़ती हुई स्फीति** (Running Inflation) : जब कीमतें तीव्रता से 10 से 20 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ती हैं तो उसे दौड़ती हुई स्फीति कहते हैं। ऐसी स्फीति गरीब और मध्य वर्गों पर बुरा प्रभाव डालती है। इसके नियंत्रण के लिए शक्तिशाली मौद्रिक और फिस्कल उपाय अपनाने की आवश्यकता होती है, नही ंतो यह अतिस्फीति की ओर ले जाती है।

4. **द्रुत, सरपट या अति स्फीति** की स्थिति में कीमतें हर समय बढ़ती रहती है और इस वृद्धि की कोई सीमा नहीं होती। अति स्फीति की स्थिति एक

देश की मौद्रिक प्रणाली में अत्यधिक असामान्यताओं की सूचक है। ऐसी मुद्रास्फीति की स्थिति में, उन सभी परिसम्पत्तियों का वास्तविक मूल्य कम हो जाता है जबकि आय स्थिर होती है। वेतन, बचत, गिरवी, बीमा पॉलिसी, बाण्ड आदि इस प्रकार की परिसम्पत्तियों और आय के सर्वोत्तम उदाहरण हैं।

प्रक्रियाओं के आधार पर वर्गीकरण' जब मुद्रास्फीति का वर्गीकरण उन प्रक्रियाओं के आधार पर किया जाता है जो इसे प्रेरित करती है तो इसके तीन रूप हो सकते हैं:

1. **घाटे की अर्थव्यवस्था से प्रेरित मुद्रास्फीतिः** जब मुद्रास्फीति सरकार द्वारा घाटे की वित व्यवस्था यानि सरकार द्वारा आय से अधिक व्यय करने से होती है तो इससे घाटे की अर्थव्यवस्था से प्रेरित मुद्रास्फीति कहते हैं।

2. **मजदूरी–प्रेरित मुद्रास्फीतिः** जब मुद्रास्फीति मौद्रिक मजदूरी में वृद्धि के कारण होती है तो उसे मजदूरी–प्रेरित मुद्रास्फीति कहते हैं।

3. **लाभ–प्रेरित मुद्रास्फीतिः** निर्माताओं के लाभों में वृद्धि से होने वाली मुद्रास्फीति को लाभ–प्रेरित मुद्रास्फीति कहते हैं।

शान्तिकालीन मुद्रास्फीति वह होती है जिसमें शांति के समय सरकार के व्यय में वृद्धि से कीमतें बढ़ती हैं। आकस्मिक, मुद्रास्फीति (sporadic inflation) आंशिक प्रकृति की होती है जो किसी विशेष वस्तु की पूर्ति में असामान्य कमी के कारण होती है। उदाहरण स्वरूप फसल के खराब हो जाने से खाद्य पदार्थों की कीमतों में वृद्धि, या एकाधिकार की ऐसी स्थिति के कारण कीमतों में वृद्धि जिसमें उद्देश्य उत्पादन को कम करना हो, या ऐसी वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि, जिनका उत्पादन युद्ध के कारण अवरूद्ध हुआ है या जिनकी उत्पादन क्षमता कम की गयी हो।

मुद्रास्फीति खुली या द्रमित हो सकती है।

खुली स्फीति (Open Inflation) : जब वस्तुओं या उत्पादन के साधनों का बाजार स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करता है और वस्तुओं एवं साधनों की कीमतों का निधार्रण अधिकारियों द्वारा बिना किसी सामान्य हस्तक्षेप के होता है तो वह खुली स्फीति होती है। सरकार द्वारा वस्तुओं के वितरण पर कोई रोक या नियंत्रण नहीं होते हैं। माँग में वृद्धि और पूर्ति में कमी बनी रहती है जिनसे खुली स्फीति आती है। अनियंत्रित खुली स्फीति अंततः अति स्फीति लाती है।

दमित स्फीति (Suppressed Inflation) : जब सरकार खुली स्फीति को रोकने के लिए भैतिक और मौद्रिक नियंत्रण लगाती है तो यह दमित स्फीति कहलाती है। कीमतों में तीव्र वृद्धि को रोकने के लिए लाइसंसिंग, कीमत नियंत्रण और राशनिंग के प्रयोग के कारण बाजार तंत्र सामान्य रूप से काम नहीं कर पाता। जब तक ऐसे नियंत्रण रहते हैं तब तक वर्तमान माँग स्थगित रहती है और माँग नियंत्रित से अनियंत्रित वस्तुओं की ओर होती है। परन्तु ज्योंही ये नियंत्रण हटा लिए जाते हैं तो खुली स्फीति होती है। दमित स्फीति अर्थव्यवस्था को विपरीत रूप से प्रभावति करती है। जब वस्तुओं का वितरण नियंत्रित होता है तो अनियंत्रित वस्तुओं की कीमतें बहुत तेजी से बढ़ती हैं। दमित स्फीति काम करने की प्रवृत्ति को हटाती है क्योंकि लोग अपनी इच्छा के मुताबिक वस्तुएं प्राप्त नहीं कर पाते हैं। वस्तुओं को नियंत्रित आवंटन से संसाधनों का कुआवंटन भी होता है। जिसके परिणामस्वरूप उत्पादक संसाधनों को आवश्यक से अनावश्यक उद्योगों की ओर लाते हैं। अन्ततः दमित स्फीति काला बाजारी, भ्रष्टाचार, जमाखोरी, और मुनाफाखोरी लाती है।

मुद्रास्फीति के बारे में बहुत साहित्य उपलब्ध है जिनमें इसके विभिन्न पहलुओं का विवेचन किया गया है। लेकिन इन सब पर इस इकाई में अध्ययन करना संभव नहीं है। यहा पर हम मुद्रा स्फीति के स्रोतों के मुख्य स्पष्टीकरणों पर ही विचार करेंगे।

4.3.1 माँग जन्य मुद्रास्फीति (Demand-Pull Inflation)

जब समग्र माँग (aggregate demand) पूर्ण रोजगार के उत्पादन स्तर से अधिक होती है। उपभोक्ता और निवेशकर्ता, अधिकतम सम्भव उत्पादन से भी अधिक खरीदना चाहते हैं। इस प्रकार की मुद्रा स्फीति को माँग आधिक्य मुद्रास्फीति भी कहते हैं। माँग जन्य मुद्रास्फीति मुद्रा की मात्रा में वृद्धि के कारण हो सकती है। मुद्रा की मात्रा में वृद्धि ब्याज दर को घटाती, है जो निवेश को प्रेरित करती है। इससे उपभोग व्यय भी बढ़ता है।

मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि के बिना भी माँग जन्य मुद्रास्फीति हो सकती है। ऐसा तब होगा जब समग्र माँग या तो पूँजी की सीमान्त उत्पादिता के बढ़ने से या उपभोग प्रवृति के बढ़ने से बढ़ती है।

निम्नांकित चित्र माँग जन्य मुद्रास्फीति की स्थिति को दर्शाता है। इस चित्र में D_1 से D_5 तक समग्र माँग दर्शाते हैं और Sवक्र दी हुई पूर्ति दर्शाता है। समग्र माँग वक्र जैसे–जैसे D_1 से D_5तक ऊपर जाता है, कीमत स्तर OP_1से OP_5 तक बढ़ता जाता है। समग्र माग फलन में D_1 से D_3 तक विवर्तन (shift) से कीमत व समग्र उत्पादन दोनों बढ़ते हैं क्योकि अर्थवयवस्था पूर्ण रोजगार की स्थिति पर नहीं पहुंची है। इसे **बाधा** (bottleneck) **मुद्रास्फीति कहते है।** एक बार Cबिन्दु यानि पूर्ण रोजगार की स्थिति पर पहुंचने पर Dवक्र में और अधिक विवर्तन से केवल कीमत–स्तर में वृद्धि होगी। इस **यथार्थ** (true) **मुद्रास्फीति**भी कहते हैं।

चित्रः

Price Level

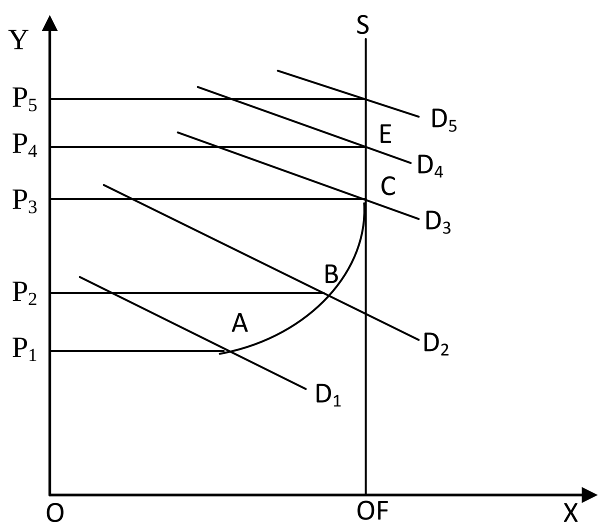

Output
Demand Pull Inflation

4.3.2 लागतजन्य मुद्रास्फीति (Cost-Push Inflation)

1950 के दशक में मुद्रास्फीति के पूर्ति या लागत विश्लेषण ने अर्थशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया लागत–जन्य मुद्रास्फीति इस बात पर जोर देता है कि मुद्रास्फीति वस्तुओं की लागत या पूर्ति कीमत में वृद्धि के कारण होती है। यह मुख्यतया तीन कारणों से होती हैः

(i) मजदूरी दर में वृद्धि

(ii) लाभ की गुंजाइश में वृद्धि, या

(iii) सामग्री लागतों में वृद्धि।

जब तेजी से बढ़ती हुई मौद्रिक मजदूरी के साथ–साथ अर्थव्यवस्था के कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों में उत्पादिता नहीं बढ़ती है तो इन क्षेत्रों में कीमतें बढ़ जाती हैं। मौद्रिक प्रणाली के शुरू होने के समय से ही एक आम आदमी का कीमत वृद्धि के लिये स्वाभाविक स्पष्टीकरण लागत वृद्धि के रूप में ही होता है। ऐसी कोई भी कीमत वृद्धि नहीं है जिसके लिये कुछ लोगों ने लाभ प्राप्त करने वालों, सट्टेबाजों, जमाखोरों या अपनी सामर्थ्य से अधिक व्यय करने वाले मजदूरों व किसानों को दोषी न ठहराया हो।

कुल माँग फलन और कुल पूर्ति फलन के रूप में यदि ऐसी मुद्रास्फीति को व्यक्त किया जाए तो हम कहेंगें कि अर्थव्यवस्था में लागत–जन्य मुद्रास्फीति ऐसे विभिन्न कारकों के दबाव में होती हे जो कुल पूर्ति फलन को ऊपर की ओर ले जाते है। निम्नांकित चित्र में लागत–जन्य मुद्रासफीति की स्थिति दिखायी गयी है।

Price Level

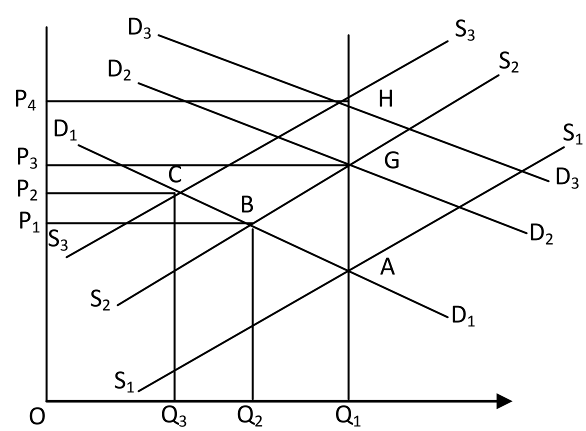

Output

उदाहरण स्वरूप A बिन्दु, जिस पर माँग वक्र D_1 और पूर्ति वक्र S_1एक दूसरे को काटते हैं, पूर्ण रोजगार संतुलन की स्थिति को दर्शाता है। सन्तुलन उत्पादन OQ_1 है और संतुलन कीमत OP_1 है। यदि कुल पूर्ति फलन विवर्तित होकर S_2 हो जाता है तो उत्पादन घटकर OQ_2 हो जाता है और कीमत बढ़कर OP_2 हो जाती है। जब पूर्ति फलन और बढ़ता है और S_3 हो जाता है तो उत्पादन घटकर OQ_3 हो जाता है और कीमत बढ़कर OP_3 हो जाती है। इस प्रकार कीमत वृद्धि और उत्पादन में कमी तब तक होती रहेगी जब तक कि पूर्तिफलन ऊपर की ओर विवर्तित होता रहेगा।

पहले भी बताया जा चुका है कि पूर्ति फलन के ऊपर की ओर विवर्तित होने के मुख्य कारण ये हैं:

1. श्रम संगठनों द्वारा प्राप्त की गयी ऊची मौद्रिक मजदूरी,

2. एकाधिकारी और अल्पाधिकारी उद्योगों में व्यावसायिक फर्मों द्वारा प्राप्त लाभ की अधिक गुंजाइश, और

3. अर्थव्यवस्था की उत्पादन प्रक्रिया के लिये महत्वपूर्ण कच्चे माल की ऊंची कीमतें। इन तीन कारकों से जो मुद्रास्फीति होती है उसे क्रमशः मजदूरी प्रेरित मुद्रास्फीति, लाभ प्रेरित मुद्रास्फीति और सामग्री लागत प्रेरित मुद्रास्फीति कहते हैं।

बोध प्रश्न क

1. मुद्रास्फीति किसे कहते हैं?

....
....
....
....

2. स्फीति अन्तराल क्या होता है?

....
....
....
....

3. माँग जन्य मुद्रास्फीति और लागत जन्य मुद्रास्फीति में भेद कीजिए।

....
....
....
....

4. बताइये कि निम्नलिखित कथनों में कौन सही है और कौन गलत है:

   (i) यदि एक अर्थव्यवस्था में कीमत वृद्धि 20% होती है तो यह कहा जा सकता है कि इसमें मुद्रास्फीति बहुत ऊँची है।

   (ii) मुद्रास्फीति का अर्थ है ऊँची कीमतों की स्थिति।

   (iii) जब सरकार अपने राजस्व से अधिक व्यय करती तो इसे अर्थव्यवस्था में घाटे से प्रेरित मुद्रास्फीति कहते हैं।

   (iv) मुद्रास्फीति केवल तभी होती है जब साधन पहले से ही पूरी तरह कार्यरत हों।

   (v) यदि कीमतें पूर्ण रोजगार से पहले ही बढ़ती हैं तो ऐसी स्थिति को बाधा मुद्रास्फीति कहते हैं।

   (vi) मंद मुद्रास्फीति को आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है।

4.4 मुद्रास्फीति के प्रभाव

मुद्रास्फीति से जब तक उत्पादन के कारकों को अतिरिक्त रोजगार मिलता है तब तक इसे बुरा नहीं समझा जाता। लेकिन जैसे ही यह नियंत्रण से बाहर हो जाती है यह बुरी हो जाती है और क्रय शक्ति को कम कर देती है। ''मुद्रास्फीति की तुलना एक डाकू से की जा सकती है। यह अपने शिकार को कुछ चीजों से वंचित कर देती है। डाकू और मुद्रास्फीति में यह अन्तर है कि डाकू दिखायी देता है लेकिन मुद्रा स्फीति दिखायी नहीं देती, एक डाकू का एक समय में शिकार एक, दो या कुछ व्यक्ति हो सकते हैं लेकिन मुद्रास्फीति का शिकार पूरा देश होता है, डाकू को न्यायालय तक ले जाया जा सकता है लेकिन मुद्रास्फीति वैध है।'' मुद्रास्फीति अर्थव्यवस्था को विघटित करती है और आर्थिक व सामाजिक उथल–पुथल के लिये रास्ता बनाती है। नैतिक पतन भी लाती है। एक उद्यमी जिससे अधिक मजदूरी की माँग की जाती है, और जो ऐसी माँग को पूरा करने का प्रयत्न करता है, एक अवकाश प्राप्त व्यक्ति जो नियत पेंशन से अपना गुजारा करने का प्रयत्न करता है, एक नियत आय वाला व्यक्ति जो बैंक व अन्य संस्थाओं से ऋण लेकर अपनी गृहस्थी की आवश्यकताओं को पूरा करता है और एक गृहिणी जो बढ़ती हुई कीमतों के समय में घरवालों को भोजन प्रदान करने के लिये जुझती है, के लिये मुद्रास्फीति एक गम्भीर आर्थिक समस्या है।

(1) उत्पादन पर प्रभाव : जब तक अर्थव्यवस्था में साधन बेरोजगार हैं थोड़ी सी मुद्रास्फीति उचित है क्योंकि इससे आशा की किरणें फूटती हैं जो व्यापारियों को अधिक निवेश करने को प्रेरित करती है। यह स्थिति पूर्ण रोजगार के स्तर पर पहुंचने तक ही रह सकती है। पूर्ण रोजगार के बाद कीमतें बढ़ने लगती हैं और संयत (moderate) मुद्रास्फीति अति स्फीति का रूप ले लेती है। इसका उत्पादन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। यह कीमत तंत्र की निर्विघ्न क्रिया को विकृत कर देती है, पूंजी निर्माण में रूकावट डालती है, सट्टेबाजी और जमाखारी को प्रोत्साहित करती है और इसके कारण उत्पादक साधनो का दुरुपयोग होता है। संक्षेप में, मुद्रास्फीति व्यवसाय को बाजारों को चालाकी से प्रभावित करके लाभ कमाने के लिये प्रोत्साहित करती है, कुशल उत्पादन द्वारा लाभ प्राप्त करने को नहीं।

(2) वितरण पर प्रभाव : मुद्रास्फीति आय का पुनः वितरण करती है क्योंकि सभी कारकों की कीमतें समान अनुपात में नहीं बढ़ती। इससे श्रमिकों और नियत आय वाले वर्ग की तुलना में उद्यमियों को अधिक लाभ होता है। अप्रत्याशित लाभों के कारण सट्टेबाजों, जमाखोरों, काले बाजार में धंधा करने वालों और तस्करों को फायदा होता है। मुद्रा के मूल्य में परिवर्तनों के फलस्वरूप धन का भी पुनः वितरण होता है। कीमतों में एक समान वृद्धि नहीं होती और अंशतः ऋण मुद्रा में व्यक्त किये जाते हैं।मुद्रास्फीति एक प्रकार का छुपा हुआ कर है जो गरीबों के लिये बहुत हानिकारक है। इससे गरीब और गरीब होते जाते हैं।

समाज में धन और आय के पुनर्वितरण पर स्फीति के प्रभावों को मापने के दो तरीके हैं। प्रथम,मजदूरी, वेतन, लगान, ब्याज, लाभांश और लाभ जैसे साधन–आमदनियों के वास्तविक मूल्य में परिवर्तन के आधार पर। द्वितीय, स्फीति के परिणामस्वरूप, दीर्घकालीन आय के आकार वितरण के आधार पर अर्थात् क्या स्फीति से धनी वर्गों की आय बढ़ी है और मध्यम और गरीब वर्गों की आय घटी है। स्फीति वास्तविक आय के वितरण में परिवर्तन लाती है – उनसे जिनकी मुद्रा आय अपेक्षाकृत बेलोच है और उन तक जिनकी मुद्रा आय अपेक्षाकृत लोचशील है।

(3) ऋणी और ऋणदाता : ऋणी ऋणदाता से उधार लेते हैं जिसे बाद में ब्याज सहित वापस करना होता है। इन पर मुद्रास्फीति का अलग–अलग समय पर अलग–अलग प्रभाव पड़ता है मुद्रास्फीति के दौरान जब कीमतें बढ़ती हैं (क्योंकि उससे मुद्रा का वास्तविक मूल्य कम हो जाता है) तो ऋणी जा ऋण वापस करते हैं उसका वास्तविक मूल्य इस ऋण के उस समय के वास्तविक मूल्य से कम होता है जब उन्होंने यह लिया था इस प्रकार ऋणी को लाभ होता है। दूसरी ओर, ऋणदाताओं को जब ऋण वापस मिलता है तो उसका वास्तविक मूल्य (वस्तुओं और सेवाओं के रूप में मूल्य) ऋण के समय के वास्तविक मूल्य से कम होता है और इस प्रकार ऋणदाता को हानि उठानी पड़ती है।

(4) उद्यमी : जब कीमतें बढ़ती है तो उत्पादकों, व्यापारियों, सट्टेबाजों और उद्यमियों को अप्रत्याशित लाभों के कारण फायदा होता है क्योंकि उत्पादन लागत की तुलना में कीमत वृद्धि अधिक तेज दर से होती है। इसके अतिरिक्त कीमत वृद्धि और लागत वृद्धि में एक अन्तराल होता है। इसकेअलावा, उत्पादकों को तो यह फायदा भी होता है कि उनके स्टॉक की कीमतें मुद्रास्फीति के कारण बढ़ जाती हैं और क्योंकि व्यापार के लिये इन्होंने ऋण लिया है इसलिये ऋणी होने से भी इन्हें फायदा होता है।

(5) निवेशकः जिन लोगों के पास कम्पनियों के ऐसे हिस्से या स्टॉक होते हैं जिन पर स्थिर दर से ब्याज नहीं मिलता उन्हें स्फीति के दौरान लाभ होता है। क्योंकि कीमतें बढ़ रही होती हैं तब व्यापार क्रियाओं का विस्तार होता है और परिणामस्वरूप कम्पनियों के लाभ बढ़ जाते हैं। जब लाभ बढ़ते हैं तो कीमतों की अपेक्षा इक्विटियों पर लाभांश अधिक तेजी से बढ़तें हैं। इसके विपरीत वे जो ऋण–पत्रों, प्रतिभूतियों, बाण्डों आदि में निवेश करते हैं जिनकी एक स्थिर ब्याज दर होती है, स्फीति में घाटा सहते हैं क्योंकि वे एक निश्चित रकम पाते हैं जबकि उनकी क्रय–शक्ति घटती जाती है।

(6) किसान : कृषक तीन प्रकार के होते हैं–जमींदार, भूमिधर और भूमिहीन कृषि मजदूर। जब कीमतें बढ़ती हैं तो जमींदारों की हानि होती है क्यांकि उन्हें स्थिर लगान ही प्राप्त होते हैं। परन्तु जो किसान फार्मों के मालिक हैं और उन पर स्वयं खेती करते हैं, उन्हें स्फीति के दौरान लाभ होता है। क्योंकि भूमि राजस्व और आगतों की कीमतें उतनी नहीं बढ़तीं जितनी कि फार्म उत्पादनों की कीमतें बढ़ती हैं। दूसरी ओर कीमतों के बढ़ने से भूमिहीन कृषि मजदूरों को बहुत हानि होती है। परन्तु उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतें तेजी से बढ़ती हैं। इसलिए भूमिहीन कृषि मजदूर हानि में रहते हैं। इसके साथ ही किसान साधारणतया ऋणी होते हैं और मुद्रास्फीति की स्थिति में उन्हें वास्तविक रूप में कम भुगतान करना पड़ता है जबकि भू–राजस्व और करों आदि में अधिक वृद्धि नहीं होती। इस प्रकार किसानों को मुद्रास्फीति के दौरान सामान्यतया फायदा भी होता है।

(7) श्रमजीवी (Wage earners) **:** मजदूरी पाने वालों को लाभ भी हो सकता है और हानि भी, परन्तु उनका लाभ या हानि इस बात पर निर्भ करेगी कि बढ़ती कीमतों से उनकी मजदूरी किस गति से समायोजन करती है। यदि उनकी यूनियनें मजबूत हैं, तो वे उनकी मजदूरी को निर्वाह–व्यय सूचकांक से सम्बद्ध करा सकती हैं। इस तरह से, वे अपने को स्फीति के बुरें प्रभावें से बचा सकते हैं लेकिन यदि वे असंगठित है जैसे कृषक मजूदर, तो उन्हे अधिक कष्ट उठाने पड़ते हैं। इसके साथ ही समस्या यह है कि मालिकों द्वारा मजदूरी बढ़ाने और कीमतों के बढ़ने में समय पश्चता (time lag) रहता है। इसलिए वर्करों को

हानि ही होती है क्योंकि हो सकती है कि जब तक मजदूरी बढ़ाई जाए तब तक निर्वाह–व्यय सूचकांक और बढ़ चुका हो। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि मजदूरी पाने वालों की स्थिति भी सफेदपोशों जैसी ही होती है।

(8) मध्यम वर्ग और वेतन प्राप्त करने वाले व्यक्ति : मुद्रास्फीति का सबसे बुरा प्रभाव उन व्यक्तियों पर पड़ता है जिनकी आय निश्चित होती है और जिन्हें प्रायः मध्यम वर्ग कहते हैं जब स्फीति आती है, तो वेतन लेने वाले वर्करों को जैसे–क्लर्कों, अध्यापकों तथा अन्य सफेदपोशों को हानि होती है।जब कीमतें बढ़ती हैं तो वेतन–भोगी अपने वेतनों का बढ़ती कीमतों के साथ समायोजन धीरे–धीरे कर पाते हैं। इसी प्रकार वे व्यक्ति जो पहले की गयी बचतों, निश्चित, ब्याज, किराये, पेंशन, आदि से अपना निर्वाह करते हैं, उन्हें कीमतों के बढ़ने से बहुत कष्ट सहना पड़ता हैक्योंकि उनकी आय नियत रहती है। मध्यम वर्ग जो कठिन परिश्रम और कम खर्च करके अपने बच्चों की शिक्षा के लिये और बीमारी आदि अप्रत्याशित खर्चो के लिये बचत करता है, भयंकर मुद्रास्फीति के समय में स्वयं को निराशाजनक स्थिति में पाता है।

(9) सरकार : एक मिश्रित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र कीमत स्तर के उतार–चढ़ावों से प्रभावित होता है। जैसे–जैसे कीमतें बढ़ती है वैस–वैसे सरकार को अपनी परियोजनाओं को पूरा करने के लिये वस्तुओं, सेवाओं और कच्चे माल पर अधिकाधिक व्यय करना होता है। अनुमानित व्यय में संशोधन करना होता है। सरकारी बाण्डों पर ब्याज दरें निश्चित होती हैं और इसे कीमतों में संभावित वृद्धि की क्षतिपूर्ति के लिए नहीं बढ़ाया जाता है। सरकार ऋण सेवा और भार समाप्त करने के लिए अध्कि करों को लगाती है। स्फीति से करों का वास्तविक मूल्य भी घट जाता है। इस प्रकार, सरकार के पक्ष में धन का पुनर्वितरण करदाताओं को लाभ के रूप में प्राप्त होता है। चूंकि सरकार को कर देनेवाले लोग उच्च आय वर्ग के होते हैं अतः वे सरकार के ऋणदाता भी होते हैं क्योंकि वे ही सरकारी बांडों को रखते हैं। ऋणदाता के रूप में, उनकी सम्पत्ति का वास्तविक मूल्य घटता है और करदाता के रूप में, स्फीति में उनकी देनदारियों का भी वास्तविक मूल्य घटता है।

(10) जनता का मनोबल : मुद्रास्फीति के कारण व्यापारियों और ऋणियों के पक्ष में धन का मनमाने ढ़ंग से पुनः वितरण होता है, इससे उपभोक्ताओं, ऋणदाताओं, और छोटे दुकानदारों, छोटे निवेशकों और नियत आय प्राप्त करने वालों को हानि होती है। इससे जनता का मनोबल गिरता है। अति मुद्रास्फीति के समय नैतिक स्तर और जनता का मनोबल बहुत अधिक गिर जाता है।

4.5 मुद्रास्फीति का नियंत्रण

हम ऊपर पढ़ चुके हैं कि स्फीति तब आती है जब समस्त पूर्ति उनती नहीं बढ़ पाती जितनी समस्त माँग बढ़ जाती है इसलिये पूर्ति बढ़ाकर और समस्त माँग को नियंत्रित करने के लिये मुद्रा आय घटाकर स्फीति रोकी जा सकती है। मुद्रास्फीति के नियंत्रण के लिये मौद्रिक व राजकोषीय उपाय करने होते हैं जिनके द्वारा समग्र माँग के स्तर को घटाया जाता है ताकि इसे अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार उत्पादन के बराबर किया जा सके। प्रत्यक्ष और परोक्ष करों की संख्या व दर तथा ब्याज की दर बढ़ा कर निवेश या उपभोग या दोनों के स्तर को घटाया जा सकता है। मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के उपायों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता हैः

1. मौद्रिक उपाय,
2. राजकोषीय उपाय, और
3. प्रत्यक्ष नियंत्रण तथा अन्य उपाय

(1) मौद्रिक उपाय (Monetary Measures) : मौद्रिक उपायों का लक्ष्य मुद्रा–आय घटाना होता है।

(क) साख नियंत्रण (Credit Control): मौद्रिक उपाय 'मौद्रिक नीति' है। साख की मात्रा तथा गुणवत्ता को नियंत्रित करने के लिए देश का केन्द्रीय बैंक अनेक तरीके अपनाता है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए वह बैंक–दर बढ़ाता है, खुले बाजार में प्रतिभूतियां बेचता है, रिजर्व अनुपात बढ़ाता है और अनेक चयनात्मक साख–नियंत्रण उपाय अपनाता है, जैसे सीमा आवश्यकताएं बढ़ाना और उपभोक्ता साख का नियमन करना।

यदि लागताधिक्य कारणों से स्फीति आई है तो मौद्रिक नीति उसे रोकने में सफल नहीं हो सकेगी। मौद्रिक नीति केवल माँग ाधिक्य साधनों के कारण उत्पन्न स्फीति को ही रोकने में सहायक हो सकती है।

(ख) करेन्सी का विमुद्रीकरण (Demonetisation of Currency): मौद्रिक उपायों में से एक उपाय यह है कि ऊंची राशि की करेन्सी का विमुद्रीकरण कर दिया जाए। यह उपाय प्रायः तब अपनाया जाता है तब देश में काले धन की बहुतायत होती है।

(ग) नई करेन्सी का जारी करना (Issue of New Currency) : पुरानी करेन्सी की जगह नई करेन्सी जारी कर दी जाए। इसके अन्तर्गत कई पुराने करेन्सी नोटों के बदले एक नया करेन्सी नोट दिया जाता है। बैंक जमाओं का मूल्य भी तदनुरूप नियत किया जाता है। यह तरीका तब अपनाया जाता है जब बहुत अधिक करेन्सी नोट जारी किए जा चुके हों और देश में अतिस्फीति हो। यह उपाय बहुत सफल तो है परन्तु है अन्यायपूर्ण, क्योंकि इससे छोटे जमाकर्ताओं को सबसे अधिक चोट पहुंचती है।

अल्पविकसित देशों में एक विकसित व संघठित मुद्रा बाजार के अभाव के कारण मौद्रिक नीति बहुत प्रभावशाली नहीं होती। चुनी हुई आर्थिक क्रियाओं में मुद्रास्फभति को नियंत्रित करने के लिये चयनात्मक साख नियंत्रण नीति का प्रयोग किया जात है। इस नीति के अन्तर्गत जो वाणिज्य बैंकों को कुछ निश्चित वस्तुओं के विरुद्ध उधार न देने के आदेश देना, या कुछ निश्चित वस्तुओं के विरुद्ध या निश्चित क्षेत्रों में बैंक द्वारा स्वीकृति दी जाने वाली कुछ साख सीमाओं को घटाना। मौद्रिक नीति की अपनी कुछ सीमाएं हैं और केवल इसी नीति के द्वारा मुद्रास्फीति जैसी गम्भीर समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता। भारत में रिजर्व बैंक की महंगी मुद्रा नीति (dear money policy), जिसका उद्देश्य बैंक साख को कम करना है, कीमत वृद्धि को नहीं रोक पाई।

(2) राजकोषीय उपाय (fiscal measures) : मौद्रिक उपायों की सीमाओं के कारण मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के लिये राजकोषीय उपायों का प्रयोग महत्वपूर्ण हो जाता है। राजकोषीय उपायों में कराधान, सरकारी व्यय और सार्वजनिक ऋण आते हैं। सरकार को कराधान के द्वारा उद्यमियों और निवेशकों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना अधिकाधिक क्रय शक्ति को समेट लेना चाहिये।

सरकारी व्यय में कमी और सरकार के कुल राजस्व में वृद्धि यानि बचत का बजट (surplus budget) अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति को रोकने का एक सफल राजकोषीय उपाय है। एक अवरोही कर ढांचे (regressive tax structure)के साथ–साथ अनुत्पादक व्यय को कम करके अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति के प्रभाव को सफलतापूर्वक कम किया जा सकता है। ऐसी कर नीति बनाना, जिससे माँग तो कम की जा सके लेकिन उत्पादन निरुत्साहित न हो, एक अन्य राजकोषीय उपाय है। निजी बचतों का मुद्रास्फीति को रोकने मे महत्वपूर्ण योगदान होता है। सरकार को निजी बचतें बढ़ाने के उपाय करने चाहिये मुद्रास्फीति के समय सरकार को अपने पिछले ऋण वापस नहीं करने चाहिये जिससे कि मुद्रा की मात्रा में वृद्धि को रोका जा सके।

(3) प्रत्यक्ष नियंत्रण : बहुत से देश मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के लिये प्रत्यक्ष उपाय करते है। ये उपाय कीमत नियंत्रण और आवश्यक वस्तुओं की राशनिंग हैं। राशनिंग और कीमत नियंत्रण जैसे उपाय अल्पविकसित देशों में बहुत प्रभावी सिद्ध नहीं हो पाए है। क्योंकि ऐसे उपायों को कार्यान्वित करने के लिये इन देशों में सक्षम और ईमानदार प्रशासनिक व्यवस्था के अभाव में बाजारों से बहुधा वस्तुएं गायब हो जाती हैं। जिससे काला–बाजारी, घूसखोरी और रिश्वत के अवसर बढ़ते हैं।

विलासिता की वस्तुओं के स्थान पर आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने के उपाय करने चाहिये, मजदूरी–कीमत उच्चक्र (wage-price spiral) को रोकने के लिये बहुधा मजदूरी को नियंत्रित करने की स्थिति में मजदूरी व लाभों को स्थिर करना आवश्यक हो सकता है। मजदूरी और लाभों पर नियंत्रण साथ ही साथ अधिकाधिक आय को कम करता है। और इससे वस्तुओं व सेवाओं को प्रभावी माँग का स्तर नीचा रहता है। अधिकाधिक विदेशी पूंजी प्राप्त करने के प्रयत्न करने चाहिए। उत्पादन बढ़ानें के लिये हर संभव प्रयत्न करना चाहिये। ऐसी परियोजनाओं में निवेश को प्राथमिकता देनी चाहिए जिनमें उत्पादन शीघ्र होता हो।

मुद्रास्फीति को शुरू की अवस्था में नियंत्रित करना सरल है। एक अवस्था के बाद यह अपने आप बढ़ने लगती है और स्फीतिकारी समस्या इतनी भंयकर हो जाती है कि इसे नियंत्रित करना कठिन हो जाता है।

मुद्रास्फीति एक दैत्य के समान है जिससे लड़ने के लिये कई प्रकार के हथियारों का प्रयोग करना आवश्यक होता हैं। मुद्रास्फीति को नियंत्रित करनें के लिये किसी भी एक उपाय पर निर्भर नहीं किया जा सकता है।

बोध प्रश्न ख

1. मुद्रास्फीति का उत्पादन पर क्या प्रभाव होता है?

   ....

   ....

   ....

   ....

2. मुद्रास्फीति का नियंत्रण करने के मुख्य राजकोषीय उपाय बताइये।

   ....

   ....

....

....

3. बताइये कि निम्नलिखित कथनों में कौन सही हैं और कौन गलत हैं:

(i) मुद्रास्फीति की स्थिति में लाभ प्राप्त करने वालों को कीमत पर मजदूरी अर्जित करने वालों को फायदा होता है।

(ii) मुद्रास्फीति से ऋणियों को लाभ होता है और ऋणदाताओं को हानि।

(iii) मुद्रास्फीति के दौरान गरीब और गरीब हो जाते हैं।

(iv) मुद्रास्फीति से ईक्विटी शेयर होल्डरों को सामान्यता फायदा होता है और बॉण्ड होल्डरों को हानि होती है।

(v) मुद्रा और साख की पूर्ति को सीमित करके मुद्रास्फीति को नियंत्रित किया जा सकता है।

4.6 सारांश

मुद्रास्फीति कीमतों में निरन्तर वृद्धि की स्थिति है। मुद्रास्फीति तब होती है जब अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति से अधिक होती है। मुद्रास्फीति केवल पूर्ण रोजगार के बाद ही शुरु होती है। मुद्रास्फीति को इसकी गति, समय, प्रक्रिया और कीमत वृद्धि की मात्रा के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है।

मुद्रास्फीति मुख्यतः दो प्रकार की होती है जैसे माँग जन्य मुद्रास्फीति और लागतजन्य मुद्रास्फीति। जब समग्र माँग पूर्ण रोजगार उत्पादन स्तर से अधिक होती है तब माँग जन्य मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। माँग जन्य मुद्रास्फीति मुद्रा की मात्रा में वृद्धि के कारण हो सकती है। लागतजन्य मुद्रास्फीति की स्थिति में उत्पादन लागत में वृद्धि होने से कीमतें बढ़ जाती हैं। उत्पादन लागत मजदूरी में वृद्धि या कच्चे माल की लागत में वृद्धि या लाभ में वृद्धि से बढ़ सकती है। ऐसी मुद्रास्फीति की स्थिति पूर्ति की और से उत्पन्न होती है, माँग की ओर से नहीं और यह सारी अर्थव्यवस्था में फैल जाती है।

मुद्रास्फीति से ऋणियों को लाभ और ऋणदाताओं को हानि होती है। जब कीमतें बढ़ती हैं तो उत्पादकों, व्यापारियों और सट्टेबाजों को अप्रत्याशित लाभों के कारण फायदा होता है। मुद्रास्फीति से उत्पादन लागत भी बढ़ती है लेकिन उत्पादन लागत की तुलना में कीमत वृद्धि की दर अधिक तेज होती है। मुद्रास्फीति को नियंत्रित करना आवश्यक है और इसके लिये विभिन्न मौद्रिक और राजकोषीय उपाय किये जाते हैं। यह प्रभावी माँग के आधिक्य से होती है इसलिये इसे नियंत्रित करने के उपाय का आशय है कुल प्रभावी माँग को कम करना। ऊंची बैंक दर, खुली बाजार की प्रक्रियाएं और अन्य साख नियंत्रण के उपाय मौद्रिक उपाय कहलाते हैं और इनका प्रयोग साधारणतया देश का केन्द्रीय बैंक करता है। सरकारी व्यय, कर, सार्वजनिक ऋण, बचतें आदि राजकोषीय उपाय के अंतर्गत आते हैं। कुछ अन्य महत्वपूर्ण उपाय भी हैं जैसे कि उत्पादन का समायोजन,

उपयुक्त मजदूरी नीति, कीमत नियंत्रण और राशनिंग। लेकिन ये उपाय मौद्रिक व राजकोषीय उपायों के पूरक मात्र ही हैं।

4.7 शब्दावली

- **लागत जन्य मुद्रास्फीति** (Cost-push Inflation): मौद्रिक मजदूरी, कच्चे माल की कीमत और लाभ की गुंजाइ"ा आदि में वृद्धि से उत्पादन लागत के बढ़ने के कारण होने वाली मुद्रास्फीति।
- **माँग जन्य मुद्रास्फीति** (Demand-pull Inflation): समग्र माँग का आय व रोजगार के स्तर से अधिक होने के कारण होने वाली मुद्रास्फीति। माँग अधिक्य निजी क्षेत्र या सार्वजनिक क्षेत्र किसी में भी हो सकता है।
- **सरपट या अति मुद्रास्फीति** (Galloping or Hyper Inflation): मुद्रास्फीति की वह स्थिति जिसमें कीमतें हर समय बढ़ती रहती हैं और कीमत वृद्धि की कोई सीमा नहीं होती।
- **मुद्रास्फीति**(Inflation): सामान्य कीमत स्तर में निरंतर वृद्धि जो समग्र मुद्रा मूर्ति में ऊंची दर से वृद्धि के कारण होती है।
- **खुली मुद्रास्फीति** (Open Inflation): मुद्रास्फीति की वह स्थिति जब कीमतें बिना किसी रुकावट के बढ़ती हैं।
- **दमित मुद्रास्फीति** (Suppressed Inflation): वह स्थिति जब सरकार द्वारा कुछ नीतियों के अपनाने सेकीमत वृद्धि को रोका जाता है।

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 4	i) गलत	ii) गलत,	iii) सही,	iv) सही	v) सही
ख 3	i) गलत,	ii) सही,	iii) गलत,	iv) सही,	v) सही

4.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 मुद्रास्फीति की परिभाषा दीजिए और स्फीतिकारी प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न–2 माँग जन्य मुद्रास्फीति और लागतजन्य मुद्रास्फीति की विशेषताएं बताइये।

प्रश्न–3 एक विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में उत्पादन और वितरण पर मुद्रास्फीति के प्रभावों का विवेचन कीजिए।

प्रश्न–4 मुद्रास्फीति को क्यों नियंत्रित करना चाहिए? इसे नियंत्रित करने के लिये अपनाये जाने वाले उपायों को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न–5 निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणीयां लिखियें:

(i) स्फीति अन्तराल

(ii) कीमत वृद्धि की मात्रा के आधार पर मुद्रास्फीति का वर्गीकरण

(iii) मुद्रास्फीति और श्रमिक

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)
- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकेषन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)
- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीष कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, SBPD पब्लिकेषन 2016)
- प्रो0 षिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेषन 2017)
- एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
- के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
- शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016)
- एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

****

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

DC B.COM-102

मुद्रा बैंकिंग एवं वित्तीय संस्थान

खण्ड – 2

बैंकिंग सिद्धान्त तथा कार्य प्रणाली

इकाई – 5 83–106

वाणिज्य बैंक

इकाई – 6 107–126

भारत में वाणिज्य बैंक

इकाई – 7 127–148

केन्द्रीय बैंक

इकाई – 8 149–170

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया

इकाई – 9 171–186

भारतीय मुद्रा बाजार

विशेषज्ञ समिति

1. डॉ. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
2. डॉ देवश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
3. प्रो. आर.सी. मिश्रा, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन एवं वाणिज्य विद्याशाखा, उत्तराखण्उ मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
4. प्रो. लवकुश मिश्रा, निदेशक, इंस्टीट्यूट ऑफ टूरिज्म एण्ड होटल मैनेजमेंट, श्री भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।
5. प्रो. सोमेश शुक्ला, विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
6. प्रो. राधेश्याम सिंह, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

लेखक :– डॉ विकास सिंह, सहायक आचार्य, वाण्ज्यि विभाग, एस.एस.खन्ना गर्ल्स डिग्री कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

सम्पादकः– प्रो. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

परिमापक :–

अनुवाद की स्थिति में

मूल लेखक	अनूवाद
मूल सम्पादक	भाषा सम्पादक
मूल परिमापक	परिमापक

सहयोगी टीम

संयोजक :– डॉ देवेश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

2020 (मुद्रित)
© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2020
ISBN- 978-93-83328-88-8

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।
प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021

इकाई–5 व्यापारिक बैंकिंग

इकाई की रूपरेखा

5.0. उद्देश्य

5.1. प्रस्तावना

5.2. बैंक एवं व्यापारिक बैंक की परिभाषा

5.3. बैंकिंग का विकास

- **5.3.1** इंग्लैंड में बैंकिंग का विकास
- **5.3.2** भारत में बैंकिंग का विकास

5.4. बैंकों की संरचना

- **5.4.1** शाखा बैंकिंग एवं इकाई बैंकिंग
- **5.4.2** शाखा बैंकिंग के लाभ एवं हानियाँ
- **5.4.3** इकाई शाखा बैंकिंग के लाभ एवं हानियाँ

5.5. व्यापारिक बैंकों के कार्य

- **5.5.1** बैंकिंग की परिभाषा एंव बैंक के कार्य
- **5.5.2** प्राथमिक कार्य
- **5.5.3** गौण कार्य

5.6. बैंकिंग का आर्थिक महत्व

5.7. साख निर्माण

- **5.7.1** निवेश सूची के प्रबंध संबंधी नियम
- **5.7.2** साख निर्माण
- **5.7.3** एक बैंक द्वारा साख निर्माण/साख सृजन के चरण
- **5.7.4** बैंकिंग प्रणाली द्वारा बहुगणित साख निर्माण
- **5.7.5.** साख निर्माण की सीमाएँ

5.8. सारांश

5.9. आवष्यक शब्दावली

5.10. बोध प्रश्नों के उत्तर

5.11. महत्वपूर्ण प्रश्न

5.0. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि–

- ❖ भारत एवं विदेषो में बैंकिंग के विकास के बारे में बता सकें,
- ❖ विभिन्न प्रकार के बैंकों की संरचना का वर्णन कर सकें,
- ❖ व्यापारिक बैंकों की परिभाषा एवं कार्य बता सकें,
- ❖ व्यापारिक बैंकिंग के आर्थिक महत्व को स्पष्ट कर सकें तथा
- ❖ व्यापारिक बैंकों द्वारा साख निर्माण की विधियों का वर्णन कर सकेंगे।

5.1. प्रस्तावना

आज बैंकिंग सेवाये हमारे जीवन में एक महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। बैंको के बदलते स्वरुप से ना सिर्फ शहर बल्कि ग्रामीण क्षेत्र भी लाभांन्वित हो रहे है। अपने पारंपरिक व्यापार सेवाओं के अलावा ग्रामीण एवं शहरी लोगो के अनेक प्रकार की जरुरतों में भी अपनी सहभागिता दे रहे हैं। किसी भी देश के आर्थिक विकास में व्यापारिक बैंकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। व्यापारिक बैंक का कार्य मुख्यतया जमा स्वीकार करना और अल्पकालीन ऋण देना होता है। इसके अतिरिक्त, व्यापारिक बैंक समाज के लिये बहुत से अन्य उपयोगी कार्य करते हैं। प्रत्येक व्यापारिक बैंक को कोष मुख्यतया तीन स्रोतों से प्राप्त होता है : शेयर पूंजी, आरक्षित कोष और आम जनता से जमा राशि। विश्व में बैंकिंग का विकास होने के साथ–साथ विभिन्न बैंकिंग प्रणालियाँ प्रचलन में आयीं। इस इकाई में आप बैंकिंग प्रणालियों के विकास, व्यापारिक बैंकों के कार्यों, बैंकिंग का आर्थिक महत्व और व्यापारिक बैंकों द्वारा साख निर्माण की विधि के बारे में पढ़ेंगे।

5.2. बैंक एवं व्यापारिक बैंक की परिभाषा

बैंक एक वित्तीय संस्था है, जो जमा प्राप्त करने और ऋण लेने के लिए अनुज्ञप्ति प्राप्त होती है। बैंक धन प्रबंधन, मुद्रा विनिमय और सुरक्षित जमा जैसे वित्तीय सेवाएं भी प्रदान कर सकते हैं। बैंक एक सरकार द्वारा प्राधिकृत कोई संगठन जो अपने ग्राहकों से जमा स्वीकार करता है, ब्याज का भुगतान करता है, चेक का समाशोधन करता है, ऋण देता है, वित्तीय लेनदेनों हेतु मध्यस्थ का कार्य करता है तथा अन्य वित्तीय सेवाएं उपलब्ध करता है।

आक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार, "बैंक वह संस्था है जो अपने ग्राहकों से अथवा उनकी ओर से प्राप्त धन की रक्षा करता है। इसका मुख्य कार्य उनके चेकों का भुगतान करना है। उसे लाभ उस धन के उपयोग द्वारा उत्पन्न होता है, जिसे उपयोग न करते हुए ग्राहकों ने बैंक में जमा कर दिया है।"

जबकि व्यापारिक बैंक, जिन्हें वाणिज्यिक बैंक या व्यावसायिक बैंक भी कहा जाता है वह सामान्य बैंकिंग कार्य करने वाले बैंक को ही कहा जाता है।

व्यापारिक बैंक या वाणिज्यिक बैंक या व्यावसायिक बैंक उन बैंको को कहते हैं, जो धन जमा करने, व्यवसाय के लिए ऋण देने जैसी सेवायें प्रदान करते हैं। ऐसी वित संस्था, जो विभिन्न स्त्रोतों से चेक द्वारा निकाले जाने योग्य जमा

राषि का संग्रह करके तथा साख सृजन के माध्यम से विभिन्न प्रकार की आपूर्ति करने, के कार्य की विषेषज्ञ हो वाणिज्य बैंक कहते है।

5.3. बैंकिंग का विकास

आधुनिक बैंकिंग के इतिहास का प्रारंभ बैंकों के उस नमूने या व्यवस्था से होता है जहाँ विश्व के बड़े व्यापारियों ने ग्रामीण किसानों को और शहरों के व्यापारियों को अनाज ऋण देना शरू किया। ये एक ऐसी व्यवस्था रही जिसने आने वाले समय के बैंको की रचना की रूपरेखा तैयार की। इसके साथ ही एक मान्यता के अनुसार, आधुनिक व्यापारिक बैंकिंग की शुरुआत तो प्राचीन काल में ही हो गयी थी। शुरू में व्यापारिक बैंकिंग का सम्बन्ध निजी क्षेत्र में मुद्रा परिवर्तन से था। ग्रीस के डेल्फी और औलिम्पिया नाम के मशहूर मंदिर जमा स्वीकार करने और उधार देने के केन्द्र बने हुए थे। प्राचीन रोम में बैंकिंग का विकास ग्रीस वाली पद्धति पर ही हुआ। लेकिन सार्वजनिक उद्यम के रूप में बैंकिंग की शुरुआत इटली में बारहवीं शताब्दी के मध्य के आसपास हुई। बैंक ऑफ बेनिस की स्थापना 1157 में हुई और यह विश्व का प्राचीनतम बैंक माना जाता है। व्यापारिक क्रियाओं का विस्तार होने के साथ–साथ उत्तर यूरोप में बहुत–सी बैंकिंग संस्थाएँ स्थापित की गयीं।

5.3.1 इंग्लैंड में बैंकिंग का विकास

इंग्लैंड में बैंकिंग की शुरुआत का आधार सुनार थे, गृह युद्ध के दिनों इंग्लैंड में असुरक्षा और दुर्व्यवस्था का बोलबाला था। अपने पैसों की सुरक्षा के लिये लोग सुनारों के पास जाते थे, जिनके पास अच्छे और मजबूत कोष–कक्ष होते थे। सुनार जो मुद्रा प्राप्त करते थे, उसकी रसीद देने लगे और उस रसीद पर जमाकर्ता को पैसा वापस करने का वचन होता था। बाद में इन रसीदों को बैंक नोटों का दर्जा मिल गया। बाद में सुनारों ने देखा कि अपने पैसे का कुछ भाग उधार देना सुरक्षित व लाभकारी है। क्योंकि उधार देना लाभकारी सिद्ध हुआ। अतः यह उनका नियमित कार्य बन गया, नियमित खाते रखे जाते थे और पास बुक भी दी जाती थी। यथा समय सुनारों ने सरकार को भी उधार भी दिया। इससे उन्हें अपने मुख्य कार्य को छोड़कर बैंकर का कार्य करने की प्रेरणा मिली। सुनारों द्वारा बहुत बड़ी मात्रा में लाभ अर्जित करने से बहुत सी फर्मों और व्यापारी बैकिंग व्यवसाय की ओर आकर्षित हुए। इस प्रगति को 1672 में एक धक्का लगा, लेकिन यह अस्थायी था। इस अस्थायी धक्के के पष्चात् जल्दी ही सुनारों में विश्वास पुनः स्थापित हो गया। जैसा कि कम जानते हैं कि बैंक ऑफ इंग्लैंड की स्थापना 1694 में हुई, इंग्लैंड में स्थापित बैंकों की पद्धति पर ही यूरोप के बहुत से देशों में बैंक स्थापित किये गये और इससे आधुनिक बैंकिंग प्रणाली पूरे विश्व में फैल गयी। लेकिन संयुक्त पूँजी वाले व्यापारिक बैंकों की शुरुआत इंग्लैंड में 1833 में बैंकिंग अधिनियम बनने के बाद से ही प्रारम्भ हुई।

5.3.2 भारत में बैंकिंग का विकास

भारत में वाणिज्यिक बैंकिंग की शुरुआत सत्रहवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुई थी जब अंग्रेजों ने देश में एजेंसी हाउसेज की स्थापना की थी। इससे पूर्व भारत के सेठ, महाजन इत्यादि उन स्वदेशी बैंकों के रूप में कार्यरत थे। भारत में पैसा उधार देने का कार्य व्यवसाय के रूप में ईसा से 500 वर्ष पूर्व विकसित हुआ, लेकिन पहला आधुनिक बैंक मद्रास में 1688 में स्थापित किया गया था। भारत में अंग्रेजों द्वारा

शुरू किये गये एजेन्सी हाउसेज ने यहाँ संयुक्त पूंजी बैंकों की स्थापना के लिये रास्ता तैयार किया। बैंक ऑफ हिन्दुस्तान की स्थापना कलकत्ते में 1770 में की गयी, इसी क्रम में जनरल बैंक ऑफ इंडिया 1786 में स्थापित किया गया। तीन प्रेजीडेंसी बैंक, यानी बैंक ऑफ कलकत्ता (1806), बैंक ऑफ बम्बई (1840) और बैंक ऑफ मद्रास (1843) भी स्थापित किये गये। बाद में इन तीनों बैंकों का विलय हो गया और इससे 1921 में इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया बना, जिसका 1955 में राष्ट्रीयकरण करके स्टेट बैंक ऑफ इंडिया का नाम दिया गया।

बहुत से अन्य बैंक, जैसे कि इलाहाबाद बैंक (1865), पंजाब नेशनल बैंक (1894), बैंक ऑफ इंडिया (1906), इंडियन बैंक (1907), बैंक ऑफ बड़ौदा (1909), सैन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया (1911) स्थापित किये गये। फिर भी भारतीय बैंकिंग में संकट का सिलसिला चलता रहा जिसके फलस्वरूप बहुत से बैंक समय के साथ असफल हो गये। ऐसा प्रथम विश्व युद्ध के बाद के समय में अधिक हुआ, इसीलिये भारत में बैंकिंग प्रणाली को नियमित व नियंत्रित करने के लिये रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना की गयी।

5.4. बैंकों की संरचना

भारत में बैंकिंग उद्योग वैश्विक वित्तीय संकट से अप्रभावित प्रतीत होता रहा है, जो 2008 की आखिरी तिमाही में अमेरिका से शुरू हुआ था। विकसित अर्थव्यवस्थाओं में बैंकों के पतन और राष्ट्रीयकरण के बावजूद, भारत में बैंक मजबूत एवं मौलिक आधार पर स्थापित होते हैं और ऐसा लगता है कि पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं से उभर रहे वित्तीय अशांति से अच्छी तरह से अपरिवर्तित हैं। इसका श्रेय कहीं न कहीं भारत की बैंकिंग कार्यप्रणाली को जाता है, जो उसके अपरिवर्तनवादी इतिहास से सम्बंधित है।

बैंकिंग की संरचना अलग–अलग देशों में अलग–अलग है। यह संरचना बहुत से कारकों द्वारा निर्धारित होती है जैसे परम्पराएँ, आर्थिक स्थिति, राजनैतिक स्थिति, जनता का दृष्टिकोण, सरकार की नीतियाँ और स्थलाकृतिक अवस्थाएँ।

विश्व में बैंकिंग के विकास के साथ विभिन्न बैंकिंग प्रणालियों का उदय हुआ। जिन्हें बैंकिंग प्रणाली के रूप में जाना जाता है। आमतौर पर पहचाने गए सिस्टम निम्नलिखित हैं, आइये इन्हें समझने का प्रयास करें:–

1. इकाई / यूनिट बैंकिंग : यूनिट बैंकिंग की उत्पत्ति अमेरिका में हुई है। इस प्रणाली मेंए छोटे स्वतन्त्र बैंक सीमित क्षेत्र में या एक ही शहर में काम करते हैं। इसमें निजी निदेशक मंडल और शेयरधारक होते हैं।

2. शाखा बैंकिंग : इंग्लैंड की बैंकिंग प्रणाली में मूल रूप से शाखा बैंकिंग प्रणाली का एक उदाहरण मिलता है जहां प्रत्येक वाणिज्यिक बैंक के पास पूरे देश में फैली शाखाओं का नेटवर्क होता है। इंग्लैंड में अधिकांश बैंकिंग व्यवसाय 5 बड़े बैंकों द्वारा किया जाता है जिनमें दी मिडलैंड, दी वेस्टमिनिस्टर, बार्कलेस, लायड्स और दी नेशनल प्रोविन्शियल को सम्मिलित किया जाता है। जिनमें इन पाँच बैंकों की 12,000 से अधिक शाखाएँ हैं और देश के बैंकिंग व्यवसाय का 75 प्रतिशत से अधिक भाग इनके नियंत्रण में है।

3. संवाददाता बैंकिंग सिस्टम : संवाददाता बैंकए यूनिट बैकिंग प्रणाली की कठिनाइयों को दूर करने के लिए विकसित की गई थी। यह वह प्रणाली है जिसके अंतर्गत यूनिट बैंक बड़े बैंकों से जुड़े होते हैं। छोटे बैंक बड़े बैंकों के साथ अपने

नकद आरक्षित जमा करते हैं। जिन बड़े बैंकों के साथ इस तरह के जमा किए जाते हैं, उन्हें संवाददाता बैंक कहा जाता है। यह एक मध्यस्थ बैंक होते हैं जिसके माध्यम से सभी यूनिट बैंक सभी बड़े बैंकों से वित्तीय केंद्रों में जुड़े होते हैं।

4. समूह/ग्रुप बैंकिंग : ग्रुप बैंकिंग वह प्रणाली है, जिसमें दो या दो से अधिक स्वतंत्र रूप से निगम बैंकों को एक नियंत्रक कंपनी के आधीन लाया जाता है। समूह बैंकिंग में दो या अधिक बैंकों का स्वामित्व व संचालन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से एक निगम के हाथ में होता है। समूह को एक मुख्य बैंक के इर्द–गिर्द संघटित किया जाता है और यह मुख्य बैंक एक नियंत्रक कम्पनी द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इस बैंकिंग प्रणाली से शाखा बैंकिंग और इकाई बैंकिंग दोनों ही प्रणालियों के लाभ मिलते हैं। तथापि इनमें कुछ कमियाँ भी हैं, जैसे कि संघटकों पर कम प्रत्यक्ष नियंत्रण, पर्यवेक्षण और नियंत्रण में कठिनाई और एक सदस्य की असफलता का दूसरों पर प्रभाव।

5. श्रृंखला बैंकिंग : श्रृंखला/चेन बैंकिंग, बैंकिंग की एक प्रणाली है जिसके अंतर्गत कई अलग.अलग निगमित बैंकों को एक नियंत्रण में लाया जाता है। श्रृंखला बैंकिंग समूह बैंकिंग का ही एक अन्य रूप है, वास्तव में इन दोनों में भेद करना कठिन है। श्रृंखला बैंकिंग एक ऐसी प्रणाली है जिसमें दो या अधिक बैंकों का नियंत्रण किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह द्वारा स्टॉक के स्वामित्व के जरिये या अन्यथा किया जाता है। इस प्रकार इस प्रणाली में व्यवस्था समूह बैंकिंग की तुलना में कम औपचारिक होती है। यह प्रणाली ईकाई बैंकिंग प्रणाली के दोषों को दूर करने के लिये अमेरिका में विकसित की गयी थी। इस बैंकिंग प्रणाली से शाखा बैंकिंग और इकाई बैंकिंग दोनों को ही लाभ मिलते हैं।

6. शुद्ध बैंकिंग : बैंक के उधार संचालन के आधार पर बैंकिंग, शुद्ध बैंकिंग एवं मिश्रित बैंकिंग में वर्गीकृत किया जाता है। बैंकिंग एवं शुद्ध बैंकिंग के तहत वाणिज्यिक बैंक उद्योग व्यापार और वाणिज्य को केवल अल्पकालिक ऋण देते हैं। इस तरह के बैंक केवल अल्पकालिक वित्त सेवा में विशेषता रखते है। यूरोप में इस प्रकार की बैंकिंग व्यवस्था अत्यन्त लोकप्रिय है।

7. मिश्रित बैंकिंग : मिश्रित बैंकिंग वह बैंकिंग प्रणाली है, जिसके तहत वाणिज्यिक बैंक वाणिज्यिक बैंकिंग और निवेश बैंकिंग की दोहरी भूमिका निभाते हैं। जर्मन बैंकिंग प्रणाली मिश्रित बैंकिंग का सबसे अच्छा उदाहरण है।

8. संबंध बैंकिंग : रिलेशनशिप बैंकिंग, व्यक्तिगत संपर्कों को बढ़ावा देने और बैंक के लिए बहुत मूल्यवान ग्राहकों के साथ लगातार संपर्क रखे जाने के प्रयासों को संदर्भित करती है।

9. संकीर्ण बैंकिंग : संकीर्ण बैंकिंग केवल जमा के संग्रह पर ध्यान केंद्रित करता है और किसी या कुछ चुनी हुई गतिविधियों में जैसे उधार देनें में निवेश करता है । इस प्रकार की प्रतिबंधित न्यूनतम बैंकिंग गतिविधि को संकीर्ण बैंकिंग कहा जाता है।

10. यूनिवर्सल बैंकिंग : यूनिवर्सल बैंकिंग, यूनिवर्सल बैंकिंग व्यापक बैंकिंग गतिविधियों को संदर्भित करता है। इस प्रकार की बैंकिंग के तहत एक बैंक कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं के साथ.साथ विकास गतिविधियों के लिए सावधि ऋण प्रदान करते है।

11. खुदरा बैंकिंग : खुदरा बैंकिंग वाणिज्यिक बैंकिंग का एक प्रमुख एवं विशेष रूप है, जो मुख्य रूप से निगमित ग्राहकों के बजाय उपभोक्ताओं को लक्षित करता है।

12. थोक बैंकिंग : थोक बैंकिंग बड़े आकार के ग्राहकों से निपटने से सम्बंधित होती है। थोक बैंकिंग के तहत हजारों छोटे खातों को बनाए रखने और भारी लेनदेन करने के बजाय बैंक बड़े ग्राहकों से निपटते हैं और केवल बड़े खाते रखते हैं।

13. निजी बैंकिंग: निजी या व्यक्तिगत बैंकिंग निगमित ग्राहकों के साथ समृद्ध व्यक्तियों के लिए बैंकिंग सेवा प्रदान करने में विश्वास रखता है।

आइये शाखा बैंकिंग प्रणाली और इकाई बैंकिंग प्रणाली में भेद निम्नलिखित अन्तरों को समझने का प्रयास करें–

5.4.1. शाखा बैंकिंग और इकाई बैंकिंग

शाखा बैंकिंग	इकाई बैंकिंग
• शाखा बैंकिंग का तात्पर्य उस बैंकिंग प्रणाली से है जिसमें एक ही स्वामित्व या प्रबन्ध के अन्तर्गत एक ही संस्था के रूप में दो या अधिक बैंकिंग कार्यालयों का संचालन किया जाता है। इस प्रकार प्रधान कार्यालय द्वारा व्यवसाय का संचालन पूरी दुनिया में बिछे शाखाओं के जाल के जरिये किया जाता है।	• इकाई बैंकिंग वह बैंकिंग प्रणाली है जिसमें बैंकिंग क्रियाएँ एक ही बैंक के नियंत्रण में विभिन्न शाखाओं द्वारा नहीं की जाती बल्कि एक ही कार्यालय द्वारा की जाती हैं। दूसरे शब्दों में, एक ही कार्यालय नियंत्रक और संचालक इकाई होता है। प्रत्येक बैंकिंग इकाई एक पृथक् कम्पनी होती है और उसका पथक अस्तित्व होता है।
• इस प्रणाली में प्रत्येक बैंक का एक वैध अस्तित्व होता है और इनके अंशधारियों का एक ही समूह होता है और संचालक मंडल भी एक ही समूह का होता है।	• प्रत्येक बैंकिंग इकाई की अपनी पूँजी, शेयर होल्डर और निदेशक मण्डल होता है। शाखा बैंकिंग प्रणाली की तुलना में इकाई बैंकिंग प्रणाली में बैंक का आकार और कार्य क्षेत्र छोटा होता है। तथापि कुछ इकाई बैंकों की एक सीमित क्षेत्र में कुछ शाखाएँ हो सकती हैं। इस प्रकार इकाई बैंकिंग एक स्थानीयकृत बैंकिंग प्रणाली है।
• भारत और इंग्लैंड की बैंकिंग प्रणाली इसी श्रेणी में आती हैं। भारत में सभी व्यापारिक बैंक (जैसे स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, बैंक ऑफ इंडिया आदि) शाखा बैंकिंग प्रणाली से कार्य करते हैं।	• यूनिट बैंकिंग की उत्पत्ति अमेरिका में हुई है।
• शाखा बैकिंग की उत्पत्ति इग्लैण्ड में हुई है।	

5.4.2. शाखा बैंकिंग के लाभ एवं हानियाँ

आइये इस प्रकार की बैंकिंग के कुछ लाभ और हानियों को क्रमषः समझने का प्रयास करें–

(अ) शाखा बैंकिंग के लाभ : शाखा बैंकिंग की विस्तृत और असाधारण संवृद्धि इस प्रकार की बैंकिंग प्रणाली से मिलने वाले लाभों के कारण हुई है। ये लाभ निम्नलिखित हैं :

1. **बचतों की गतिशीलता :** कोषों को अतिरेक कोषों वाली शाखाओं से उन शाखाओं को आसानी से भेजा जा सकता है, जहाँ इनकी कमी है।
2. **प्रबंध में कंशलता :** शाखा बैंकिंग कुशल प्रबंध के लिये अधिक अवसर प्रदान करती है। इसके आकार के कारण विशेषज्ञों और कुशल कर्मचारियों को नियुक्त किया जा सकता है।
3. **बड़े पैमाने की किफायतें :** शाखा बैंकिंग को बड़े पैमाने की आंतरिक व बाह्य किफायतों का लाभ मिलता है, जैसे कि श्रम विभाजन, विशेषज्ञों की सेवाओं का उपयोग, प्रौद्योगिकी नवप्रवर्तन, कम्प्यूटरीकरण आदि।
4. **जमाओं और अग्रिमों को विविधीकरण :** शाखा बैंकिंग विविध जमाओं और अग्रिमों के चयन के लिये विस्तृत क्षेत्र प्रदान करती है।
5. **सुरक्षित निधियों में किफायतें :** प्रत्येक ब्रांच नकद निधियों की कम मात्रा रख सकता है, क्योंकि कोषों को एक शाखा से दूसरी शाखा में हस्तांतरित किया जा सकता है।
6. **प्रेषण सुविधाएँ :** मुद्रा का एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रेषण अधिक सुविधापूर्वक और कम लागत पर हो जाता है।
7. **ब्याज दरों में एकरूपता :** शाखा बैंकिंग पूंजी की गतिशीलता में सहायक होती है और काफी बड़े क्षेत्र में ब्याज की दरों में एकरूपता लाती है।
8. **संचालन में लचीलापन :** शाखाएँ देश के विभिन्न भागों में कार्य करती हैं, इसलिये शाखा बैंकिंग के लिये विभिन्न क्षेत्रों की स्थानीय आर्थिक व सामाजिक स्थितियों में विभिन्नताओं के अनुसार आवश्यक समायोजन करना संभव होता है।
9. **केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रभावी नियंत्रण :** शाखा बैंकिंग प्रणाली में देश में बैंकों की संख्या कम होती है। अतः देश का केन्द्रीय बैंक अर्थव्यवस्था के व्यापारिक बैंकिंग क्षेत्रक का सरलता व प्रभावपूर्ण तरीके से नियंत्रण कर सकता है।
10. **मंदी सहन करना :** शाखा बैंकिंग प्रणाली मंदी जैसी प्रतिकूल व्यापारिक स्थिति को सहन कर सकती है।

(ब) शाखा बैंकिंग के हानियाँ : शाखा बैंकिंग प्रणाली से कुछ हानियाँ भी हैं जो निम्नलिखित हैं।

1. **प्रबन्ध में कठिनाई :** संचालन के आकार और शाखाओं के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में फैलाव के कारण शाखा बैंकिंग में प्रभावी प्रबन्ध कठिन हो जाता है, अनावश्यक विस्तार के परिणाम कुप्रबन्ध व अयोग्यता आदि हैं।

2. **लाल फीताशाही :** शाखा बैंकिंग पर लाल फीताशाही और अत्यावश्यक मामलों को निपटाने में असामान्य देरी को दोष लगाया जाता है।

3. **कमजोर शाखाएँ :** शाखा बैंकिंग प्रणाली में कमजोर और अस्वस्थ शाखाएँ भी चलती रहती हैं। ये शाखाएँ अन्य शाखाओं के लाभ को व्यर्थ कर देती हैं।

4. **घातक प्रतिस्पर्धा :** शाखा बैंकिंग के अन्तर्गत एक ही क्षेत्र में विभिन्न बैंकों द्वारा बहुत–सी शाखाएँ खोली जाती हैं। इससे घातक प्रतिस्पर्धा जैसी बुराइयाँ आ जाती हैं।

5. **व्यक्तिगत संपर्क और स्थानीय स्थितियों के संबंध में जानकारी की कमी :** शाखा मैनेजरों के बारंबार स्थानान्तरण के कारण उन्हें ग्राहकों के साथ.व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करने और स्थानीय स्थितियों से भली–भांति परिचित होने के अवसर नहीं मिलते हैं।

6. **कोषों का उपयोग :** कोषों के आसानी से हस्तांतरण किये जाने की सुविधा के कारण शाखा बैंकिंग में कोषों को स्थानीय उपयोग कम हो सकता है।

7. **एकाधिकार की शक्ति :** शाखा बैंकिंग से कुछ ही हाथों में एक प्रकार की एकाधिकार की शक्ति का निर्माण होता है। उदाहरण के लिये, इंग्लैंड के पाँच बड़े बैंक बैंकिंग व्यवसाय का 75% भाग नियंत्रित करते हैं और भारत में बैंकिंग व्यवसाय का 93% भाग सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के नियंत्रण में है।

यद्यपि शाखा बैंकिंग की बहुत सी हानियाँ हैं लेकिन इसके लाभ अपेक्षाकृत अधिक हैं। इस कारण जिन देशों में इकाई बैंकिंग प्रणाली थी, वे अब शाखा बैंकिंग प्रणाली को अपना रहे हैं।

5.4.3. इकाई बैंकिंग के लाभ एवं हानियाँ : आइये इस प्रकार की बैकिंग प्रणाली के कुछ प्रमुख लाभ तथा हानियों को समझने का प्रयास करें–

(क) इकाई बैंकिंग के लाभ : शखा बैंकिंग प्रणाली की तुलना में इकाई बैंकिंग प्रणाली के निम्नलिखित लाभ हैं, आइयें इन्हें सूचिबद्ध करें:–

1. इकाई बैंक छोटे समुदायों की स्थानीय आवश्यकताओं को अधिक प्रभावपूर्ण तरीके से पूरा करें सकते हैं, क्योंकि इनका कार्य क्षेत्र बहुत सीमित होता है। इसके अतिरिक्त, इस प्रणाली में ग्राहकों के साथ व्यक्तिगत संपर्क अधिक आसानी से स्थापित हो सकता है।
2. कुप्रबंध, अनियमितताओं और धोखेबाजी की संभावनाएँ कम होती हैं।
3. अनुकूलतम आकार से बड़े आकार के संचालन से होने वाले अलाभ नहीं हो सकते।
4. लाल फीताशाही के कारण कार्यों में होने वाली देरी की संभावनाएँ बहुत कम होती हैं।
5. कोषों का प्रयोग केवल भौगोलिक कार्य क्षेत्र में ही किया जाता है।

(ख) **इकाई बैंकिंग के हानियाँ :** इस प्रणाली से कुछ हानियाँ भी होती हैं, जो निम्नलिखित हैं । आइयें इन्हें सूचिबद्ध करेंः–

1. इकाई बैंकिंग में बचतों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना कठिन होता है।
2. बैंकिंग क्रियाओं के छोटे आकार के कारण बड़े पैमाने की किफायतें नहीं मिल सकतीं। इसके अतिरिक्त छोटे आकार के कारण विशेषज्ञों की नियुक्ति भी नहीं की जा सकती।
3. इकाई बैंकिंग में प्रति बैंक संस्थापन लागत अधिक होती है।
4. बैंकों की संख्या अधिक होने से इन पर केन्द्रीय बैंक का नियंत्रण भी कम प्रभावी हो जाता है।
5. इकाई बैंक इतना छोटा होता है कि यह प्रतिकूल व्यापारिक स्थितियों का सामना नहीं कर सकता।
6. इकाई बैंकिंग प्रणाली से होने वाली इन हानियों के कारण समूह बैंकिंग और श्रृंखला बैंकिंग प्रणालियों का विकास हुआ।

बोध प्रश्न 'क'

1. विभिन्न प्रकार की बैंकिंग प्रणालियों की सूची बनाइये।
2. शाखा बैंकिंग प्रणाली और इकाई बैंकिंग प्रणाली में भेद कीजिये।
3. बताइये कि निम्नलिखित कथनों में कौन–सा सही है और कौन–सा गलत।

   (i) भारत में शाखा बैंकिंग प्रणाली है।

   (ii) जिन शाखाओं में अतिरेक कोष हैं वहाँ से बचनों को उन शाखाओं में नहीं भेजा जा । सकता जहाँ कोषों की कमी है।

   (iii) शाखा बैंकिंग काफी बड़े क्षेत्र में व्याज–दरों में एकरूपता लाती है।

   (iv) इकाई बैंकिंग प्रणाली प्रतिकूल व्यापारिक स्थितियों का सामना ज्यादा अच्छी तरह से कर सकती है।

   (v) इकाई बैंकिंग में प्रति बैंक संस्थापन लागत कम होती हैं।

5.5. व्यापारिक बैंकों के कार्य

बैंक की प्रकृति और इसका महत्व इसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों की विविधता और आकार से जाना जा सकता है। 'बैंक' शब्द की परिभाषा देना बहुत कठिन है क्योंकि सामाजिक व आर्थिक स्थितियों, सरकारी नीतियों और प्राथमिकताओं आदि में होने वाले परिवर्तनों के कारण इस संकल्पना में भी तेजी से परिवर्तन हो रहा है। तथापि, कुछ परिभाषाएँ बैंकिंग की प्रकृति को समझने में सहायक होती है।

5.5.1 बैंकिंग की परिभाषा एंव बैंक के कार्य

हर्बर एल. हार्ट के अनुसार, "बैंकर वह है जो व्यापार की सामान्य प्रक्रिया में उन चेको का । भुगतान करता है जो उस पर उन व्यक्तियों द्वारा लिखे गये हैं, जिनसे या जिनके लिये उसने चालू खाते में पैसा प्राप्त किया है।"

बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 5 के अनुसार, "बैंकिंग कम्पनी का अर्थ है कोई भी ऐसी कम्पनी जो बैंकिंग व्यवसाय करती है। बैंकिंग को अर्थ है ऋण देने के लिये या निवेश के लिये जनता से मुद्रा की जमाराशियों को स्वीकार करना, जो माँगे जाने पर या अन्यथा देय हों और जो चेक, ड्राफ्ट या किसी अन्य प्रकार से निकाली जा सकें।"

यह बैंकिंग की काफी संतोषजनक परिभाषा है। फिर भी, यह परिभाषा भी इतनी व्यापक नहीं है कि इसमें आधुनिक बैंक के सभी कार्य शामिल हो गये हों। हम बैंकों के मुख्य कार्यों को दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं :

(1) प्राथमिक कार्य, और

(2) गौण कार्य।

5.5.2 प्राथमिक कार्य

यह मुख्य कार्य हैं जो प्रत्येक बैंक को अनिवार्य रूप से करने पड़ते हैं अथवा हम कह सकते हैं कि जो संगठन इन कार्यों को करते हैं उन्हें बैंक कहते हैं। शुरू में व्यापारिक बैंक का मुख्य कार्य जमाओं का संग्रहण और अग्रिम देना हुआ करता था। लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्र में साख निर्माण और विदेशी विनिमय लेन–देन भी बैंक के प्रमुख कार्य माने जाते हैं। एक वाणिज्यिक बैंक के प्राथमिक कार्यों में शामिल हैं :

(अ) जमाओं का संग्रहण या जमा राशि स्वीकार करना, और

(ब) ऋण और अग्रिम राशि प्रदान करना।

(अ) जमाओं का संग्रहण या जमा राशि स्वीकार करना : एक वाणिज्यिक बैंक का सर्वाध्कि महत्वपूर्ण कार्य है, जनता से जमा राशि एकत्रित करना। जिन लोगों की आय तथा बचत अधिक है, उनके लिए इन राशि को बैंक में जमा करना आसान होता है। जमा की प्रकृति के अनुसार जमा की गई राशि पर ब्याज भी मिलता है। इस प्रकार बैंक के पास जमा राशि अर्जित ब्याज की रकम के साथ बढ़ती जाती है। ब्याज की दर ऊंची होने पर, जनता को बैंक में अधिक राशि जमा करने की प्रेरणा मिलती है। बैंक के पास जमा राशि सुरक्षित भी रहती है। एक व्यापारिक बैंक का सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिक कार्य जमाओं का

संग्रहण है। बैंक जमा विभिन्न व्यक्तियों के लिए विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। उद्देश्यों की पूर्ति के आधर पर बैंक जमा खातों को निम्न भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है जैसे कि 1) सावधि जमाएँ, 2) बचत बैंक जमाएँ, 3) चालू जमाएँ, और 4) आवर्ती जमाएँ

सावधि जमाएँ : जब कोई ग्राहक किसी बैंक के पास एक निश्चित अवधि के लिये एक निर्दिष्ट्र राशि जमा करता है तो इसे सावधि जमा कहते हैं। सावधि जमा करने वाले को उस अवधि के लिये ब्याज मिलता है। लेकिन यदि वह नियत अवधि से पहले पैसा निकालता है तो उसे पूरा ब्याज या उसका एक बड़ा भाग खोना पड़ता है। साधारणतया सावधि जमाओं पर ब्याज की दर अन्य प्रकार की जमाओं पर ब्याज की दर से अधिक होती है। इस प्रकार की जमाओं पर ब्याज की दर सबसे ऊंची होती है।

1. **बचत खाता जमाएँ** : इस खाते को प्रारम्भिक न्यूनतम जमा राशि करके खोला जा सकता है। हालांकि बचत खाते से जब चाहे राशि निकाल सकते हैं फिर भी प्रति सप्ताह कितनी बार राशि निकाल सकते हैं, इस पर कुछ पाबन्दियाँ होती हैं। इस प्रकार की जमा पर ब्याज की दर चालू जमा पर ब्याज की दर से अधिक होती है लेकिन सावधि जमाओं पर दी जाने वालीं ब्याज की दर से कम होती है। लोगों की एक बड़ी संख्या से बचत जमाओं के जरिये छोटी–छोटी राशियाँ एकत्रित करके बैंक सामान्यतया बहुत बड़ा कोष एकत्रित कर लेते हैं।

2. **चालू खाता जमाएँ** : बड़े व्यवसायियों, कंपनी तथा स्कूल, कॉलेज तथा अस्पताल जैसी संस्थानों को भुगतान बैंक खाते के माध्यम से करना होता है। इसे माँग जमा भी कहते हैं। बैंक यह खाता शुरू में कम से कम 100 रु. जमा कराने पर ही खोलता है। लेकिन बैंक खाता खोलने से पहले ग्राहक की साख के बारे में स्वयं को संतुष्ट कर लेता है। जमा की जाने वाली राशि और बैंक से कितनी बार राशि निकाली जा सकती है इन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। सामान्यतया चालू जमाओं पर कोई ब्याज नहीं दिया जाता।

3. **आवर्ती जमाएँ** : जमाकर्ता को निश्चित वर्षों तक प्रति माह एक निश्चित राशि जमा करानी होती है। उस निश्चित अवधि की समाप्ति पर जमाकर्ता को मूलधन के साथ ब्याज दिया जाता है। इन जमाओं पर दी जाने वाली ब्याज की दर साधारणतया वही होती है जो सावधि जमाओं पर होती है।

(ब) ऋण और अग्रिम राशि

एक वाणिज्यिक बैंक का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है ऋण देना तथा अग्रिम प्रदान करना। ये ऋण तथा अग्रिम राशि जनता तथा व्यवसाय संगठन को दिए जाते हैं, जिनकी ब्याज की दर, विभिन्न जमा राशि खातों पर दी जाने वाली ब्याज की दर से ऊंची होती है। ऋण तथा अग्रिम पर ली जाने वाली ब्याज की दर, ऋण के उद्देश्य तथा ऋण भुगतान की अवधी पर निर्भर करती है।

ऋण, एक निश्चित अवधि के लिए दिया जाता है। सामान्यतः व्यापारिक बैंक अल्प अवधीय ऋण ही देते हैं। अग्रिम एक साख–सुविध है, जो बैंक अपने ग्राहक को प्रदान करते हैं। यह सुविध ऋण से इस अर्थ में भिन्न होती है कि ऋण लंबी अवधि के लिए दिए जा सकते हैं, जबकि अग्रिम अल्प अवधेय होते हैं।

सामान्यतया व्यापारिक बैंक (1) व्यवसाय और व्यापार, (2) उद्योग, (3) कृषि और सम्बद्ध कार्यों, और (4) निर्यात व आयात व्यापार को अल्पकालीन ऋण और अग्रिम राशि देते हैं। आइये, ऐसे ऋणों और अग्रिम राशियों की प्रकृति को समझें।

(1) व्यवसाय और व्यापार को ऋण : व्यापारिक बैंक अल्पकाल के लिए ऋण देते हैं। व्यावसायिक ऋणों को (i) ओवरड्राफ्टों, (ii) नकदी ऋण, और (iii) भुनाए गए बिल, इन चार भागों में बाँटते हैं।

1. ओवरड्राफ्ट : यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा ऋण लेने वाले को उसके खाते में जमा राशि से अधिक राशि निकालने दी जाती है। यह सुविधा संपार्श्विक (collateral) जमानत पर ही दी जाती है। जमा राशि से जितनी अधिक राशि निकाली जाती है उस पर ब्याज लिया जाता है।

2. नकद ऋण : यह एक सुविध है, जिसमें बैंक ग्राहक को एक निर्धरित राशि निकालने की स्वीकृति देता है। यह निर्धरित राशि ग्राहक के खाते में जमा कर दी जाती है। ग्राहक इस राशि को आवश्यकता के अनुसार खाते से निकाल सकता है। यह वस्तुओं की जमानत पर या प्रमख ऋण लेने वाले के अलावा एक या अधिक व्यक्तियों की व्यक्तिगत जमानत पर दी जाती है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ग्राहक जितनी राशि का प्रयोग करता है उसे उसी पर ब्याज देना होता है। ग्राहक के साथ तय हुई शर्तों व निबंध्न के अनुसार नकद साख प्रदान की जाती है।

3. भुनाए गए बिल : बैंक अल्प अवधीय वित्तीय सुविधा बिलों के भुनाने के माध्यम से भी प्रदान करता है। अर्थात् बिल के परिपक्व होने से पूर्व ही बिल की राशि का भुगतान कर देता है। इस राशि से वह निश्चित दर से बट्टा काट लेता है। पार्टी को बिल भुगतान तिथि तक राशि के लिए रूकना नहीं पड़ता है। जब कभी कोई बिल देय तिथि पर अनादरित हो जाता है, तो बैंक ग्राहक से बिल की रकम वसूल कर सकता है। पश्चिमी देशों में विनिमय बिलों का भुनाना एक अत्यन्त लोकप्रिय विधि है।

4. उद्योग को ऋण : बैंक उद्योग को उनकी कार्यशील पूँजी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये ऋण व अग्रिम राशि प्रदान करता है। ये उद्योगों को ओवरड्राफ्ट, नकद ऋण और प्रत्यक्ष ऋणों के रूप में ऋण देते हैं।

5. कृषि और सम्बन्धित कार्यों के लिये ऋण : बैंक कृषि को और उससे सम्बन्धित कार्यों के लिये फसल ऋण, सिंचाई के लिये ऋण, भू–विकास, पशु खरीदने आदि के रूप में अल्पकालीन ऋण देते हैं।

6. आयात–निर्यात व्यापार : व्यापारिक बैंक निर्यात व आयात व्यापार के लिये भी ऋण और अग्रिम धन देते हैं। इसके लिये वे प्रत्यक्ष ऋणं आस्थगित भुगतानों के लिये गारंटी और बिलों पर बट्टा काटकर भुगतान करते हैं।

5.5.3 गौण कार्य

एक व्यापारिक बैंक के उपयुक्त महत्वपूर्ण प्राथमिक कार्यों के अलावा आधुनिक वाणिज्यिक युग में अनेक सहायक(गौण) कार्य भी हैं। जिनका व्यापार, उद्योग एवं अर्थव्यवस्था के लिए कम महत्व नहीं है। व्यापारिक बैंक के गौण कार्य निम्न दो प्रकार के हैं

(अ) अभीकर्ता कार्य

(ब) सामान्य उपयोगी सेवाएँ / अन्य उपयोगी कार्य

(अ) अभीकर्ता / एजेन्सी सेवाएँ

बैंक अपने ग्राहकों के लिए एजेंट अथवा प्रतिनिधि के रूप में भी कार्य करते हैं । ऐसे कार्यों के लिए ग्राहक स्वयं अपने बैंक को लिखित या मौखिक अनुमति देते हैं। इनमें से कुछ कार्य निशुल्क किए जाते हैं तथा कुछ के लिए ग्राहक से निश्चित शुल्क वसूल किया जाता है। ग्राहक की ओर से बैंक द्वारा एजेन्ट के रूप में किये जाने वाले विभिन्न कार्यों को एजेन्सी सेवाएँ। कहते हैं। इन एजेन्सी सेवाओं में चौकोंध्ड्राफ्टों की उगाही भुगतान, प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय, ट्रस्टी निष्पादकं और अटार्नी के कार्य नथा पत्र व्यवहार शामिल होते हैं।

1. उगाही : बैंक अपने ग्राहकों की ओर से एजेन्टों के रूप में प्रतिज्ञा पत्रों, चौकों, विनिमय पत्रों, लाभांश, अभिदान, किराये आदि की उगाही करते हैं। बैंक ग्राहकों से इन सेवाओं के लिये सेवा शुल्क लेते हैं।

2. भुगतान : बैंक समय–समय पर अपने ग्राहकों की ओर से बीमा प्रीमियम, किराया, कर, बिजली के बिलों आदि के भुगतान करने की जिम्मेवारी भी लेते हैं। इसके लिये वे कमीशन लेते हैं।

3. प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय : ग्राहक कभी–कभी बैंकों को अपनी प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय करने के लिये भी कहते हैं। इन सेवाओं के लिये भी बैंक कमीशन लेते हैं।

4. ट्रस्टी और अटार्नी के कार्य : बैंक अपने ग्राहकों की ओर से ट्रस्टी, निष्पादक और अटार्नी के रूप में भी कार्य करते हैं। ट्रस्टी के रूप में बैंक ग्राहक के कोषों की देखभाल और ट्रस्ट की उचित व्यवस्था करता है निष्पादक के रूप में बैंक मृतक ग्राहक द्वारा छोड़े गये वसीयतनामे के अनुसार उसकी इच्छाओं को पूरा करता हैं। अटार्नी के रूप में बैंक ग्राहक की ओर से हस्तांतरण फार्मों और प्रलेखों पर हस्ताक्षर करता है।

5. संपर्ककर्ता : बैंक अपने ग्राहकों को उनके प्रतिनिधि, एजेंट या संपर्ककर्ता (corespondent) के रूप में सेवा प्रदान करते हैं। ये उनके लिये पासपोर्ट, यात्रा टिकट आदि प्राप्त करते हैं। ऊपर बतायी गयी सेवाएँ एजेंसी सेवाएँ कहलाती हैं, क्योंकि ये सेवाएँ प्रदान करने में बैंक अपने ग्राहकों के एजेंटों के रूप में कार्य करते हैं।

(ब) सामान्य उपयोगी सेवाएँ / अन्य उपयोगी कार्य

एजेन्सी सेवाओं के अलावा व्यापारिक बैंक विभिन्न अन्य सेवाएँ प्रदान करते हैं जो ग्राहकों के लिये उपयोगी होती हैं। इन सेवाओं में साख–पत्र, ड्राफ्ट सुविधाएँ, अभिगोपन, आस्थगित भुगतानों के लिये गारंटी, लॉकर सुविधाएँ, प्रमाणन, व्यावसायिक व सांख्यिकीय सूचना और विदेशी विनिमय के लेन–देन शामिल हैं।

1. साख–पत्र : बैंक अपने ग्राहकों को साख–पत्र देते हैं। ये साख–पत्र व्यापारियों के लिये विदेशों से उधार पर माल खरीदने में उपयोगी होते हैं।

2. ड्राफ्ट सुविधाएँ : बैंक ग्राहकों को ड्राफ्ट भी देते हैं और इस प्रकार के एक स्थान से दूसरे स्थान पर कोषों का हस्तांतरण सुविधापूर्वक कर सकते हैं।

3. अभिगोपन : बैंक सरकार, संयुक्त पूँजी कम्पनियों आदि द्वारा एकत्र की जाने वाली शेयर पूँजी और ऋणपत्र पूँजी का अभिगोपन भी करते हैं।

4. आस्थगित भुगतानों के लिये गारण्टी : आयातक जब अपने आयातों के लिये तुरन्त भुगतान करने की स्थिति में नहीं होते तो निर्यातक उन्हें भविष्य में भुगतान करने की अनुमति दे सकते हैं लेकिन यह अनुमति वे केवल तब देते हैं जब भुगतान की गारण्टी दी गयी हो। ऐसी स्थिति में बैंक स्थगित भुगतान के लिये गारण्टी दे सकते हैं।

5. लॉकर सुविधाएँ : बैंक अपने ग्राहकों को मूल्यवान चीजें जैसे कि प्रतिभूतियाँ, जेवर, प्रलेख आदि रखने के लिये लॉकर की सुविधा प्रदान करते हैं।

6. प्रमाणक : बैंक अपने ग्राहकों की वित्तिय स्थिति, व्यावसायिक साख और जिम्मेवारी के प्रमाणक के रूप में भी सेवा करते हैं।

7. व्यावसायिक और सांख्यिकीय सूचना : बैंक व्यापार, वाणिज्य और उद्योग की संभावनाओं के बारे में सूचना एकत्रित करते हैं और इसे वर्गीकृत करते हैं तथा इन्हें अपने ग्राहकों को प्रदान करते हैं। कुछ बैंक आम जनता के उपयोग के लिये सूचना बुलेटिन भी प्रकाशित करते हैं।

बोध प्रश्न 'ख'

1. 1 बैंक क्या होता है?
2. 2 बैंक के दो मुख्य कार्य बताइये।
3. 3 बताइये कि निम्नलिखित कथनों में कौन–सा सही है और कौन–सा गलत :

   (i) मावधि जमाओं को निर्दिष्ट अवधि की समाप्ति से पहले नहीं निकाला जा सका

   (ii) बचत खाते में जमाओं पर दी जाने वाली ब्याज की दर चालू खाते में जमाओं पर ब्याज की दर से अधिक होती है।

   (iii) चालू खाते में जमाओं के लिये जमा राशि और निकासियों की संख्या पर कोई प्रतिबंध नहीं होता।

   (iv) व्यापारिक बैंक आयात व निर्यात व्यापार के लिये ऋण व अग्रिम राशि नहीं देते।

   (v) बैंक कमीशन एजेण्टों के रूप में भी कार्य करते हैं।

   (vi) बैंक अपने ग्राहकों की विदेशी विनिमय की आवश्यकताओं को पूरा करने में भी सहायता करते हैं।

5.6. बैंकिंग का आर्थिक महत्व

किसी भी समाज या राष्ट्र के आर्थिक जगत की धुरी उस देश की बैंकिंग व्यवस्था होती है। वर्तमान समय मे प्रत्येक देश का उत्पादन, उद्योग, व्यापार तथा व्यवसाय बैंकिग व्यवस्था पर आश्रित होते है। आर्थिक एवं औद्योगिक विकास की योजनाओं की सफलता के लिए प्रत्येक देश की बैंकिग के विकास की ओर पर्याप्त ध्यान देता है। विकसेल ने बैंकों को आधुनिक चलन व्यवस्था का हृदय तथा केंद्र बिंदु कहा है। किसी देश के आर्थिक विकास में आधुनिक बैंक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतीत में बैंकर केवल मुद्रा का लेन–देन किया करते थे। लेकिन आज ये आर्थिक संवृद्धि के नेता की भूमिका अदा करते हैं। बैंकर सभी प्रकार के ग्राहकों को सेवाएँ प्रदान करते हैं। बैंक जनता को न केवल अपनी अधिशेष आय की सुरक्षा की जोखिम और चिन्ता से मुक्त करते हैं बल्कि बचत और निवेश करने की सुविधाएँ भी प्रदान करते हैं, लोगों में बैंकिंग आदतों को बढ़ावा देते हैं, समाज के धन के अलाभकारी उपयोग को निरुत्साहित करते हैं और समाज की निष्क्रिय पूँजी को कम करते हैं। बैंक इन कोषों को उन व्यापारियों, उद्योगपतियों और उद्यमियों को देते हैं जिन्हें अपने व्यवसाय को चलाने और विकसित करने के लिये कोषों की आवश्यकता होती है। श्री बी.आर. राव के शब्दों में, बैंक की तिजोरियों में प्रवाहित होने वाले पूँजी के छोटे–छोटे नाले नदी बन जाते हैं। और ये नदियाँ राष्ट्रीय वित्त के समुद्र में गिरती हैं जो वाणिज्य के जहाज को और उद्योग के पहियों को चलाता है। बैंकों की साख निर्माण करने की सामर्थ्य के द्वारा राष्ट्रों के लिये वहत बड़ी धन राशि की व्यवस्था हो जाती है।

बैंकों के आर्थिक महत्व का विश्लेषण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है :–

1. व्यापार और उद्योग के विकास में मदद देता है : आधुनिक अर्थव्यवस्था में व्यापार और उद्योग के क्षेत्र की बहुविध–संवृद्धि केवल तभी संभव है जब समय पर और आवश्यक मात्रा में वित्त उपलब्ध हो। बैंक नये उद्यमियों को प्रोत्साहित करने के लिये विभिन्न प्रकार के ऋण देते हैं और मौजूदा उद्योगपतियों को अपनी औद्योगिक क्रियाओं में विविधता लाने के लिये वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं। इस प्रकार व्यापार और उद्योग को मदद अधिकतर बैंकों द्वारा दी जाती है।

2. कृषि क्षेत्रक के विकास में मदद देना : अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है। लेकिन कोषों की कमी इस क्षेत्र के विकास में बाधक है। बैंक कृषि और इससे सम्बन्धित कार्यों जैसे मुर्गीपालन, मत्स्य पालन, सूअर–पालन आदि में वित्तीय और तकनीकी परामर्श प्रदान करके सहायता करते हैं।

3. सेवा क्षेत्र के विकास में मदद देना : बैंक विभिन्न सेवाओं जैसे परिवहन, शिक्षा आदि के लिये भी वित्त प्रदान करते हैं और इसके द्वारा अर्थव्यवस्था के आधारिक संरचना को सदढ़ बनाने में योगदान देते हैं।

4. संतुलित संवृद्धि के लिये योगदान देते हैं : बैंक उन उद्योगों की प्रकृति, स्तर और स्थान का पता लगाते हैं जिन्हें विशेष देख–रेख की आवश्यकता है। इससे अर्थव्यवस्था की संतुलित संवृद्धि में सहायता मिलती है। बैंक उन भौगोलिक क्षेत्रों को भी पता लगाते हैं जो पिछड़े हुए . हैं। उन औद्योगिक इकाइयों को वित्त

प्रदान करके जो इन पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास में योगदान देती हैं, बैंक संतुलित क्षेत्रीय विकास में और पूरी अर्थव्यवस्था की संतुलित संवृद्धि में सहायता करते हैं।

5. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये प्रोत्साहन : आयात व निर्यात के लिये साख सुविधाएँ और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के बारे में आवश्यक सूचना और आँकड़े प्रदान करके बैंक वस्तुओं और सेवाओं के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाहों को प्रोत्साहित करते हैं।

6. समाज सेवा : बैंक विभिन्न सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता करते हैं जैसे कि स्वरोजगार, ग्राम अंगीकरण, शैक्षिक सहायता, गंदी बस्ती हटाना आदि योजनाओं को शुरू करके गरीबों की सहायता करना।

7. मौद्रिक नीति का कार्यान्वयन : सुदढ़ आर्थिक विकास के लिये एक समुचित भौद्रिक नीति की आवश्यकता होती है। एक अच्छी तरह विकसित बैंकिंग प्रणाली देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा बनायी गयी. मौद्रिक नीति को क्रियान्वित करके अर्थव्यवस्था की सहायता करती है।

5.7. साख निर्माण

साख को, भुगतान प्राप्त करने के दावे के रूप में परिभाषित किया जाता है। जब एक बैंक लोगों को ऋण देता है तो वह एक ऋण दाता बन जाता है और वह व्यक्ति जो बैंक से ऋण लेता है, ऋणी कहलाता है। जब बैंक आज ऋण देता है तो वह भविष्य में उस व्यक्ति से ऋण वसूल करने का प्रबन्ध भी कर लेता है। इसका अभिप्राय यह है कि बैंक भविष्य में ऋणी से मुद्रा के लिये दावा कर सकता है। इसी के अनुसार, बैंक अपनी जमाओं में विस्तार करने में समर्थ होता है। इसे बैंक द्वारा साख का सृजन कहते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि साख का सृजन ऋण देना और ऋण लेने के कार्य द्वारा होता है। साख निर्माण की संकल्पना को समझने के लिये निवेश सूची प्रबंध संबंधी नियमों का संक्षिप्त परिचय आवश्यक है।

5.7.1 निवेश सूची प्रबंध संबंधी नियम :

बैंकों को अपनी निवेश सूची (परिसम्पत्तियों और देयताओं) की इस प्रकार व्यवस्था करनी होती है कि खर्चे पूरे करने के लिये लाभ का प्रबन्ध हो जाए, जमाकर्ताओं की। माँगों को पूरा करने के लिये तरलता सुनिश्चित हो जाए और शोधन–क्षमता बनाए रखने के लिये कोषों की सुरक्षा आश्वासित हो जाए। इस सम्बन्ध में निम्न के सम्बन्ध में अध्ययन करना उचित होगा :–

- **तरलता**

बैंकों के लिए आय का मुख्य स्रोत प्रसार है कि वे ऋण पर कमाई कर सके, बैंकों के लिए यह जरूरी है कि उनकी जमा राशि का अधिकांश अंष उधार देने के लिए कारोबार में रहने की है। एक ही समय में, वे हमेशा अपने ग्राहकों की मौद्रिक मांगों को पूरा करने की स्थिति में होना चाहिए। तरलता का अर्थ है जमाकर्ताओं के माँग करने पर उनकी राशि का नकद भुगतान करने की बैंकर की क्षमता। सेयरसे के शब्दों में, ''तरलता वह शब्द है जिसका प्रयोग बैंकर जमाओं के बदले नकदी की माँग को पूरा करने की क्षमता का वर्णन करने के लिये करता

है।'' जनता का विश्वास बनाये रखने के लिये तरलता आवश्यक है और यह निम्नलिखित बातों से प्रभावित होती है।

(1) अर्थव्यवस्था की प्रकृति विकसित है या विकासशील।

(2) मुद्रा बाजार के विकास की अवस्था।

(3) देश क्षेत्र में लोगों की बैंकिंग आदतें।

(4) देश में बैंकिंग संरचना अर्थात् इकाई बैंकिंग, शाखा बैंकिंग।

(5) व्यावसायिक स्थितियों की प्रकृति अर्थात् मुद्रा स्फीति या मंदीः ।

(6) सामयिक आवश्यकताएँ–मुद्रा की आवश्यकता के लिये मंदा और व्यस्त समय।

(7) न्यूनतम नकद कोष का अनुपात।

(8) जमाकर्ताओं की माँग।

- **लाभकारिता**

बैंक एक व्यावसायिक इकाई है जिसका उद्देश्य लाभ कमाना है ताकि वह संचालन व्यय पूरा कर सके जमाओं पर ब्याज दे सके और स्वामियों के लिये लाभांश घोषित कर सके। अतः बैंक को अपने कोषों का इस तरह निवेश करना होता है कि उसे अधिकतम संभव लाभ अर्जित हो। बैंक की लाभकारिता बहुत से कारकों से प्रभावित होती है, जैसे निवेश का स्वरूप, निवेश पर प्रतिफल की दर, संचालन लागत आदि।

- **सुरक्षा**

बैंक की सुरक्षा या शोधन–क्षमता परिसम्पतियों और देयताओं के संबंध पर निर्भर करती है। यदि किसी बैंक की परिसम्पत्तियों का मूल्य उसके देयताओं के मूल्य के बराबर या उससे अधिक हो तो बैंक को शोधनक्षम कहा जाता है। निवेश सूची (परिसम्पत्तियों और देयताओं) के प्रबन्ध के ये तीन नियम परस्पर विरोधी हैं। परिसम्पत्तियों और देयताओं के सुदृढ़ प्रबन्ध के लिये बैंक को इन तीनों में संतुलन स्थापित करना होता है।

5.7.2 साख निर्माण

जब बैंक नकद राशि स्वीकार करता है और जमा खाता खोलता है तो इस जमा को प्राथमिक जमा कहते हैं। बहुत से जमाकर्ता बैंक में राशि जमा कराते हैं। एक जमाकर्ता सामान्यतया बैंक से अपनी पूरी राशि के तुरन्त भुगतान की माँग नहीं करता। इसी तरह, किसी भी एक समय पर सभी जमकर्ता बैंक से अपनी पूरी जमा राशि वापस करने की माँग नहीं करते। अतः बैंकर के पास जमा का कुछ भाग ऋण देने और उससे लाभ कमाने के लिये बच जाता है। बैंकर को जमाओं का एक निश्चित भाग तरल रूप में रखना होता है ताकि वह जमाकर्ताओं की माँगों को। पूरा कर सके। कोषों का यह भाग या प्रतिशत नकदी रिजर्व अनुपात कहलाता है।

नकदी रिजर्व अनपात की शर्त को पूरा करने के बाद बैंक के पास प्राथमिक जमाओं का जो भाग बचता है उसे वह ऋण के रूप में दे देता है।

सामान्यतया बैंक द्वारा स्वीकृत ऋण लेने वाले को यह ऋण प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिया जाता बल्कि इस राशि को उसके खाते में क्रेडिट कर दिया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक बैंक साख समान राशि की बैंक जमा का निर्माण करती है। इस प्रकार के जमाओं को गौण जमा या व्युत्पन्न जमा कहते हैं। बैंक इन व्युत्पन्न जमाओं का भी एक निश्चित प्रतिशत नकद रिजर्व अनुपात के रूप में रखकर शेष जमा राशि को फिर उधार देता है। साख देने की इस सुविधा से साख निर्माण होना है।

साख निर्माण जमाओं के निर्माण के द्वारा बैंकों की ऋणों और अग्रिमों को कई गुना बढ़ाने की शक्ति है। न्यूलिन के अनुसार, साख निर्माण का तात्पर्य, ''व्यापारिक बैंकों की या तो ऋण देने के उद्देश्य के जरिये या प्रतिभूतियों में निवेश के जरिये गौण जमाओं के विस्तार की शक्ति से है।''

इस प्रकार बैंक एक दी हुई नकद राशि (या प्राथमिक जमा) से कई गुना व्युत्पन्न जमाओं या साख का निर्माण कर सकते हैं। बैंक की कुल व्युत्पन्न जमाओं और प्राथमिक जमाओं का अनुपात साख गुणांक कहलाता है।

5.7.3. एक बैंक द्वारा साख निर्माण/साख सृजन के चरण :

सुविधा के लिए, हम यह कल्पना करते हैं कि अर्थव्यवस्था में केवल एक बैंक है। मान लें, बैंकों के प्राधिकरण ने नकद आरक्षण अनुपात 10 प्रतिशत निर्धारित किया है। इसलिए बैंक को उन लोगों को नकद भुगतान करने के लिए जो मुद्रा निकलवाने के लिए आते है, वर्तमान जमा राशि का 10 प्रतिशत नकद रूप में रखना चाहिए। आइये इसे निम्नलिखित तीन चरणों के माध्यम से समझने का प्रयास करें :–

चरण 1: P नाम का एक व्यक्ति विजया बैंक में 2000 रु. जमा (यानि प्राथमिक जमाए) करता है और नकदी रिजर्व अनुपात 10% है। नियम के अनुसार, बैंक 2000 रु0 का 10 प्रतिशत नकद रखेगा। यह 200 रु. होता है। 200 रु. रिजर्व (2000 रु. का 10%) के रूप में रखकर किसी व्यक्ति को उसके खाते में 1,800 रु. की राशि क्रेडिट करके यह राशि उधार दे सकता है। इसलिए बैंक 1,800 रु. का ऋण देने के लिए प्रयोग कर सकता है।

चरण 2: Q नाम का दुसरा व्यक्ति बैंक में 1,800 रु. ऋण लेने के लिए आता है। बैंक यह ऋण देने के पश्चात् Q से भविष्य में इस मुद्रा की राशि का दावा कर सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि Q को ऋण देकर, बैंक 1,800 रु. की दूसरी जमा का सृजन कर सकता हैं। अब बैंक के पास कुल जमा की गणना कीजिये।

प्रथम व्यक्ति P से 2,000 रु. जमा किए और दुसरे व्यक्ति Q को ऋण देकर बैंक 1,800 रु. का दावा कर सकता है। इसलिए दो चरणों के पश्चात् बैंक की कुल जमा राशि 3,800 रु. हो जती है अर्थात 2,000 रु. + 1,800 रु. = 3,800 रु.।

चरण 3: R नाम का एक अन्य व्यक्ति बैंक से ऋण लेना चाहता है। बैंक फिर 1620 रु. (180 रु. रखकर यानि 1800 रु. का 10% रखकर) का R नामक व्यक्ति को दे सकता है और यह उधार वह इस राशि को उसके खाते में क्रेडिट करके देता है। इसके बाद बैंक इस 1620 रु. का 10% यानि 162 रु. कोष के रूप में

रखकर किसी तीसरे व्यक्ति को 1458 रु. (1620 रु. – 162 रु.) का उधार दे सकता है।

यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक 2000 रु. की प्राथमिक जमाओं और 1,800 रु. के शरू के आधिक्य कोषों से 1,800 रु + 1620 रु + 1458 रु. + ...+........... = 18,000 रु. की व्युत्पन्न जमाएँ न हो जाएँ।

सकल प्राथमिक और व्युत्पन्न जमाएँ 18,000 रु. 2,000 रु. = 20,000 रु. होंगी। साख गुणक नकद रिजर्व अनुपात का व्युत्क्रम (तमबपचतवबंस) होता है। इस उदाहरण में साख गुणक 10 (1÷1/10 = 10) है और साख निर्माण (कल व्युत्पन्न जमाएँ) 18,000 रु. का होगा जो शरू के आधिक्य कोष का 10 गुना है। इस प्रकार साख गणक और प्राथमिक जमाओं के आधिक्य कोष का गुणनफल (यानि 10 × 18,00 रु. = 18,000 रु.) ही बैंक की साख निर्माण क्षमता है।

आइये इसी क्रम में साख गुणक की कुछ मान्यताओं को भी सूचिबद्ध करते हुए क्रमषः समझनें का प्रयास करें :–

(1) साख निर्माण की पूरी प्रक्रिया में नकदी रिजर्व अनुपात स्थिर रहता है।

(2) साख निर्माण प्रक्रिया में कोई लीकेज नहीं है।

(3) देश में एक सुविकसित बैंकिंग प्रणाली है।

(4) देश के लोगों में बैंकिंग आदतें हैं।

(5) केन्द्रीय बैंक द्वारा साख नियंत्रण नहीं किया जाता।

(6) देश में व्यापारिक स्थितियाँ सामान्य हैं।

5.7.4 बैंकिंग प्रणाली द्वारा बहुगणित साख निर्माण

सामान्यतया किसी भी देश–क्षेत्र में एक से अधिक बैंक होते हैं और एक बैंक से ऋण लेने वाला उस बैंक से राशि निकाल कर किसी अन्य बैंक में जमा करा सकता है और ऐसी स्थिति में यह दूसरा बैंक साख निर्माण कर सकता है। बैंकिंग प्रणाली में ही नकद राशि के हस्तांतरण से प्राथमिक जमाओं का निर्माण होता है, जिससे व्युत्पन्न जमाओं का निर्माण करने का अवसर मिलता है। प्राथमिक और व्युत्पन्न जमाओं के जरिये साख निर्माण की प्रक्रिया को बैंकिंग प्रणाली द्वारा बहुगुणित साख निर्माण कहते हैं।

आइये, एक उदाहरण द्वारा बहुगणित साख निर्माण प्रक्रिया का अध्ययन करें। मान लीजिये एक जमाकर्ता विजया बैंक में 2,000 रु. जमा करता है और नकदी रिजर्व अनुपात 10% है। बैंक किसी व्यक्ति को 1.800 रु. (2,000 रु. – 200 रु.) का ऋण उसके खाते को इतनी राशि से क्रेडिट करके दे सकता है। यदि वह व्यक्ति माल के सप्लायर को 1,800 रु. चौक द्वारा देता है और वह सप्लायर इस 1,800 रु. की राशि को स्टेट बैंक ऑफ इंडिया में जमा कर देता है तो यह स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के लिये प्राथमिक जमा होगी। अब स्टेट बैंक ऑफ इंडिया 10% नकद रिजर्व रखकर 1,620 रू. (1,800 रु. – 180 रु.) का किसी अन्य व्यक्ति को

ऋण दे सकता है। यदि यह व्यक्ति यह राशि अपने लेनदारों को दे देता है और वे इसे इलाहाबाद बैंक में जमा कर देते हैं तो यह 1,620 रु. की राशि इलाहाबाद बैंक के लिये प्राथमिक जमा होगी। फिर इलाहाबाद बैंक इसमें से 10% नकद कोष रखकर 1,458 रु. (1,620 रू. – 162 रु) का ऋण दे सकता है जो फिर किसी अन्य बैंक में जमा कराया जा सकता है। इस प्रकार यह क्रम तब तक चलता रह सकता है जब तक कि बैंकिंग प्रणाली द्वारा कल साख निर्माण या व्युत्पन्न जमाओं का निर्माण 18,000 रु. (1,800 रु + 1,620 रु + 1,458 रु +................= 18,000 रू) यानि सकल के आधिक्य कोष का 10 गुना नहीं हो। जाता। अतः सारंच गुणक 10 होगा।

5.7.5. साख निर्माण की सीमाएँ

अलग–अलग बैंक या पूरी बैंकिंग प्रणाली ऊपर बतायी गयी प्रक्रिया से साख निर्माण तो कर सकती है। लेकिन व्यवहार में इसमें बहत–सी समस्याएँ आती हैं जिन्हें साख–निर्माण की सीमाएँ कहते हैं। ये निम्नलिखित हैं, आइये इन्हें समझने का प्रयास करें :–

1. बैंक की साख निर्माण करने की सामर्थ्य नकद राशि पर निर्भर करती है। यदि बैंक के पास ज्यादा नकद राशि होगी तो वह ज्यादा साख निर्माण कर सकता है और यदि नकद राशि कम होगी तो कम साख निर्माण कर सकेगा।

2. नकद रिजर्व अनुपात भी साख निर्माण को प्रभावित करता है। यह अनुपात जितना कम होगा बैंक की साख निर्माण करने की सामर्थ्य उतनी ही अधिक होगी।

3. साख निर्माण प्रक्रिया में होने वाली लीकेज के कारण बैंक अपनी सामर्थ्य के अनुसार साख निर्माण नहीं कर सकते। ये लीकेज आधिक्य कोषों में कमी या लोगों की बैंक से पैसा निकालकर अपने पास नकद रूप में रखने की प्रवृत्ति होने के रूप में हो सकते हैं।

4. बैंकिंग प्रणाली जितनी साख का निर्माण कर सकती है उसके लिये जितने विश्वसनीय ऋण लेने वाले चाहिये उतने नहीं भी हो सकते।

5. ऋण लेने के लिये जमानत के रूप में जितनी और जिस तरह की प्रतिभूतियाँ बैंक को देनी आवश्यक हैं, वे उपलब्ध न हों।

6. केन्द्रीय बैंक की साख नीति नकद रिजर्व अनुपात को प्रभावित करती है।

7. देश के लोगों की अपेक्षित बैंकिंग आदतें न हों।

8. व्यापारिक स्थितियाँ जैसे मुद्रा स्फीति, मंदी आदि भी साख निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं।

9. सभी बैंकों की साख निर्माण और वितरण संबंधी नीति और कार्यक्रम एक–सा न हो।

5.8. बोध प्रश्न 'ग'

1. बैंकों, के आर्थिक महत्व से संबंधित दो प्रमुख लक्षण क्या हैं?
2. बताइये कि निम्नलिखित कथनों में से कौन–सा सही है और कौन–सा गलत :
   - **(i)** नये उद्यमियों को प्रोत्साहित करने के लिये बैंक विभिन्न प्रकार के ऋण देते हैं।
   - **(ii)** बैंक उन औद्योगिक इकाइयों को वित प्रदान करके, जो पिछड़े क्षेत्रों के विकास में योगदान देती हैं, अर्थव्यवस्था की संतुलित संवृद्धि में सहायता करते हैं।
   - **(iii)** बैंक वस्तुओं और सेवाओं के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह को प्रोत्साहित नहीं करते।
   - **(iv)** एक बैंक की साख निर्माण सामर्थ्य उपलब्ध नकद राशि की मात्रा पर निर्भर करती है।
   - **(v)** नकद रिजर्व अनुपात केन्द्रीय बैंक की साख नीति से प्रभावित नहीं होता।

5.9. सारांश

बैंकिंग की संरचना अलग–अलग देशों में अलग–अलग हैं। यह बहुत से कारकों से निर्धारित होती है। दुनियाँ में बैंकिंग के विकास होने के साथ–साथ विभिन्न बैंकिंग प्रणालियाँ प्रचलन में आयीं। इनमें कुछ महत्वपूर्ण प्रणालियाँ हैं। (1) शाखा बैंकिंग, (2) इकाई बैंकिंग, (3) समूह बैंकिंग, और (4) श्रृंखला बैंकिंग।

बैंक का महत्व और प्रकृति उसके कार्यों की मात्रा और विविधता से जानी जा सकती है। इन कार्यों को जिन दो भागों में बाँटा जाता है वे हैं : (1) प्राथमिक कार्य, औरे (2) गौण कार्य । मुद्रा बाजार में व्यापारिक बैंक संस्थागत साख के सबसे प्रमुख स्रोत हैं। व्यापारिक बैंकों का व्यवसाय मुख्यतया जमा स्वीकार करना और ऋण देना है।

विभिन्न देशों के आर्थिक विकास में व्यापारिक बैंकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। 18वीं और 19वीं शताब्दी में व्यापारिक बैंकों के विकास के बिना इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति नहीं हो सकती थी।

एक अच्छी व्यापारिक बैंकिंग प्रणाली के बिना अल्पविकसित देश विकसित देशों की श्रेणी में नहीं आ सकते। इसका कारण यह है कि औद्योगिक विकास के लिये पूँजी की आवश्यकता होती है। और बैंकों के बिना यह पूँजी उपलब्ध नहीं हो सकती।

व्यापारिक बैंक अपनी परिसम्पत्तियों और देयताओं की व्यवस्था करते समय जिन तीन बातों को ध्यान में रखते हैं वे हैं तरलता, लाभप्रदता और सम्पन्नता।

निवेश सूची (परिसम्पत्तियों और देयताओं) के प्रबन्ध सम्बन्धी ये तीन नियम परस्पर विरोधी हैं। परन्तु बैंक के लिये इनमें सन्तुलन स्थापित करना आवश्यक है।

साख निर्माण व्यापारिक बैंकों का प्रमुख कार्य है। जब बैंक ऋण देता है तो बैंकिंग प्रणाली में साख का बहुगुणित विस्तार होने की प्रवृत्ति होती है। प्राथमिक जमाएँ व्युत्पन्न जमाओं के निर्माण यानि साख निर्माण का आधार होती हैं। इससे मुद्रा पूर्ति भी बढ़ती है। लेकिन बैंकों द्वारा साख निर्माण करने की कुछ सीमाएँ भी हैं।

कुल मिलाकर बैंकों की प्रत्येक आधुनिक अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका है। विकास की प्रक्रिया में एक कुशल और विस्तृत बैंकिंग प्रणाली एक महत्वपूर्ण कारक है। इस प्रकार एक अच्छी बैंकिंग प्रणाली का विकास करना और उसमें सुधार करना तेजी से आर्थिक संवृद्धि के लिये आवश्यक है।

5.10. आवष्यक शब्दावली

- **शाखा बैंकिंग** : वह बैंकिंग प्रणाली जिसमें एक स्वामित्व और प्रबन्ध के अन्तर्गत दो या अधिक बैंकिंग इकाइयाँ एक संस्था के रूप में कार्य करती हैं।
- **नकद रिजर्व अनुपात** : जमा राशि का वह भाग जो बैंकर को तरल कोष के रूप में रखना होता है।
- **श्रृंखला बैंकिंग** : वह बैंकिंग प्रणाली जिसमें दो या अधिक बैंकों पर एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह का स्टॉक के स्वामित्व के जरिये या अन्यथा नियंत्रण होता है।
- **साख निर्माण** : जमाओं का निर्माण करके ऋणों को कई गुना करने की बैंकों की शक्ति।
- **साख गुणक** : बैंक की कुल व्युत्पन्न जमाओं और कुल प्राथमिक जमाओं का अनुपात।
- **समूह बैंकिंग** : वह बैंकिंग प्रणाली जिसमें दो या अधिक बैंकों का संचालन . प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप में एक निगम के हाथ में होता है।
- **तरलता** : जमाकर्ताओं की राशि को उनके मांग करने पर नकद लौटाने की बैंक की सामर्थ्य।
- **ओवरड्राफ्ट** : वेह व्यवस्था,जिसके द्वारा एक ऋणी को उसके खाते में जमाराशि से अधिक राशि निकालने की अनुमति दी जाती है।
- **प्राथमिक जमा** : जनता से नकद राशि स्वीकार करके बैंक द्वारा खोला गया जमा खाता।
- **इकाई बैंकिंग** : वह बैंकिंग प्रणाली जिसमें बैंकिंग क्रियाएँ केवल एक कार्यालय द्वारा की जाती हैं।

5.11. बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1	i) शाखा बैंकिंग ii) इकाई बैंकिंग		iii) समूह बैंकिंग
	iv) श्रृंखला बैंकिंग		
3	i) सही	ii) गलत .	iii) सही
	iv) गलत	v) गलत	
ख 2	i) प्राथमिक कार्य.	ii) गौण कार्य	
3	i) गलत	ii) सही	iii) सही
ग 2	i) सही	ii) सही	iii) गलत
	iv). सही	v) गलत	

5.12. महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 इंग्लैंड और भारत में बैंकिंग के विकास की तुलना कीजिये।

प्रश्न–2 शाखा बैंकिंग क्या होती है? इसके लाभ व हानि बताइये।

प्रश्न–3 इकाई बैंकिंग की संकल्पना को स्पष्ट कीजिये। इसके गुण व दोष बताइये। इकाई बैंकिंग प्रणाली के दोषों को दूर करने के उपाय सुझाइये।

प्रश्न–4 'बैंक' शब्द की परिभाषा दीजिये। एक व्यापारिक बैंक के प्राथमिक कार्य बताइये।

प्रश्न–5 व्यापारिक बैंकों के गौण कार्यों व सामान्य उपयोगी सेवाओं को स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न–6 एक देश के आर्थिक विकास में व्यापारिक बैंकों का क्या योगदान होता है?

प्रश्न–7 साख निर्माण, तरलता, लाभप्रदता व सुरक्षा, इन संकल्पनाओं को स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न–8 साख निर्माण क्या होता है? बैंक साख निर्माण कैसे करते हैं? साख निर्माण की सीमाएँ क्या हैं?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)
- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)

- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीष कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, SBPD पब्लिकेशन 2016)
- प्रो0 षिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेशन 2017)
- एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
- के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
- शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016)
- एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

****

इकाई–6 भारत में वाणिज्य बैंकिंग

इकाई की रूपरेखा

6.0. उद्देश्य

6.1. प्रस्तावना

6.2. भारत में बैंकिंग संरचना

6.3. स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की भूमिका

- **6.3.1** स्थापना
- **6.3.2** उद्देश्य
- **6.3.3** प्रगति

6.4. व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण

- **6.4.1** राष्ट्रीयकरण के पक्ष में तर्क
- **6.4.2** राष्ट्रीयकरण के विपक्ष में तर्क
- **6.4.3** राष्ट्रीयकरण के उद्देश्य

6.5. राष्ट्रीयकरण के पश्चात् बैंकिंग का विकास

6.6. भारत में व्यापारिक बैंकों की समस्याएँ

6.7. सारांश

6.8. आवश्यक शब्दावली

6.9. बोध प्रश्नों के उत्तर

6.10. महत्वपूर्ण प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- ❖ भारत में बैंकिंग संरचना के मुख्य संघटकों का वर्णन कर सकगें,
- ❖ स्टेट बैंक आफ इंडिया के उद्देश्य बता सकगें,
- ❖ स्टेट बैंक आफ इंडिया का योगदान बता सकगें,
- ❖ भारत में बैंकों का राष्ट्रीयकरण करने के कारण बता सकगें तथा
- ❖ भारत में व्यापारिक बैंकों की समस्याएँ बता सकेगें,

6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई 05 में आपने बैंकिंग प्रणाली के विकास, व्यापारिक बैंकों के कार्य और व्यापारिक बैंकों द्वारा साख निर्माण की पद्धतियों के बारे में पढ़ा। अब आपको भारत में बैंकिंग प्रणाली के बारे में पढ़ना है। इस इकाई में आप भारत में बैंकिंग संरचना, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की भूमिका, व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण और भारत में व्यापारिक बैंकों की समस्याओं के बारे में पढ़ेंगे।

6.2 भारत में बैंकिंग संरचना

आज विशेषज्ञता का दौर चल रहा है ऐसे में बैंकिंग क्षेत्रों में विशेषज्ञता आना सामान्य हैं। देश के आर्थिक विकास और आवश्यकताओं के अनुरूप विभिन्न प्रकार के बैंक विकसित हुए हैं। भारत में बैंकिंग संरचना जिस रूप में सामने आयी वह बहुत से कारकों का परिणाम है। जैसे कि भारत की आर्थिक प्रणाली, आर्थिक उद्देश्य, नीतियाँ और कार्यक्रम और विभिन्न क्षेत्र कों को वित्तीय प्रवाह की आवश्यकता, जैसे कि आयात–निर्यात क्षेत्रक, लघु व बड़े उद्योग क्षेत्रक, कृषि और ग्रामीण क्षेत्रक आदि।

भारत में बैंकिंग संरचना को मोटे तौर पर सात श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

(1) केन्द्रीय बैंक *(Central Banking)*,

(2) विकास बैंकिंग *(Development Banking)*,

(3) व्यापारिक बैंकिंग *(Commercial Banking)*,

(4) सहकारी बैंकिंग *(Cooperative Banking)*,

(5) ग्रामीण बैंकिंग *(Rural Banking)*,

(6) निर्यात–आयात बैंकिंग *(Export-Import Banking)* और

(7) आवास बैंकिंग *(Housing Bank)*

1. केन्द्रीय बैंक : केंद्रीय बैंक एक देश का बैंक है। भारत का केन्द्रीय बैंक रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (*Reserve Bank of India*) है। इसका मुख्य कार्य मुद्रा को जारी करना है जिसे **बैंक नोट्स** कहा जाता है। यह केन्द्रीय बैंक के सभी कार्य करता है जैसे कि नोट–निर्गमन, बैंकरों का बैंक (*Banker's Bank*), समाशोधन–गृह (*Clearing House*) और साख नियंत्रण। इसके अतिरिक्त यह देश के आर्थिक विकास में भी सहायता करता है। इसका उद्देश्य लाभ कमाने के लिए नहीं है, बल्कि मूल्य स्थिरता बनाए रखने और देश के सभी विकास के साथ आर्थिक विकास के लिए प्रयास करने के लिए है।

2. विकास बैंकिंग : देश के आर्थिक विकास की प्राप्ति के लिए उद्योगों और आधारिक संरचना में निवेश करने की आवश्यकता होती है। इसे सम्भव बनाने के लिए भारत में विकास बैंक हैं। उद्योगों के लिए मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋणों (*Long-term loans*) की व्यवस्था करने वाली संस्थाएँ विकास बैंक या औद्योगिक बैंक (*Industrial Banks*) कहलाती है। ये कम्पनियों के पूँजी निर्गमनों का अभिगोपन करते हैं और इक्विटी शेयरों, पूर्वाधिकार शेयरों व ऋण पत्रों में निवेश

करते हैं। भारत में विकास बैंकों में भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (*IFCI – Industrial Financial Corporation of India*), भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (*IDBI - Industrial Development Bank of India*), राज्य वित्त निगम (*SFC – State Finance Corporation*) तथा भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम (*ICICI – Industrial Credit and Investment Corporation of India*) शामिल किये जाते हैं।

3. व्यापारिक बैंकिंग : व्यापारिक बैंक व्यापार, व्यवसाय, उद्योग, कृषि, यातायात क्षेत्रक तथा आवास और निर्यात, व आयात क्षेत्रकों को अल्पकालीन ऋण प्रदान करते हैं। भारत में इन्हें मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में बाँटा जाता है : 1) सार्वजनिक क्षेत्रक के बैंक, 2) निजी क्षेत्रक के बैंक और 3) विदेशी बैंक। सार्वजनिक क्षेत्रक के बैंकों में स्टेट बैंक ऑफ इंडिया व इसके सहायक (subsidiary) बैंक और बीस राष्ट्रीयकृत बैंक आते हैं। निजी क्षेत्रक के बैंक वे हैं जो राष्ट्रीयकृत नहीं है जैसे कि व्यास बैंक लि., कर्नाटकं बैंक लि. आदि। ग्रिण्डलेस बैंक, बैंक ऑफ अमेरिका, बैंक ऑफ इंडिया टोक्यो, ब्रिटिश बैंक ऑफ मिडिल ईस्ट आदि जैसे विदेशी बैंक विदेशों में निगमित व्यापारिक बैंकों की शाखाएँ हैं।

4. सहकारी बैंकिंग : भारत में सहकारी बैंकिंग का प्रारंभ सन 1904 के सहकारी साख समिति एक्ट से हुआ और समय समय पर इसके संगठन में परिवर्तन होता रहा है।वे पारस्परिक सहायता और सहायता के सहकारी सिद्धांतों पर आयोजित किए जाते हैं। सहकारी बैंक एक ऐसी संस्था है जो सहकारिता के नियमों के आधार पर स्थापित की जाती है और सामान्य बैंकिंग व्यापार करती है। इसमें औद्योगिक सहकारी बैंक, राज्य सहकारी बैंक, जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक, प्राथमिक सहकारी बैंक आदि आते हैं। सहकारी बैंकों के उदाहरण हैं राज्य सहकारी बैंक, कृषि सहकारी समितियाँ, शहरी सहकारी बैंक, भूमि विकास बैंक और जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक। इन बैंकों के विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न नाम हो सकते हैं।

5. ग्रामीण बैंकिंग : ग्रामीण बैंक सभी प्रकार की कृषि और ग्रामीण क्रियाओं के लिये वित्त प्रदान करते हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ऐसी विशिष्ट संस्थाएँ हैं जिनकी स्थापना केवल ग्रामीण क्रियाओं को वित्त प्रदान करने के लिये की जाती है। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (*National Bank of Agriculture and Rural Development –NABARD*) ग्रामीण बैंकिग का शिखर बैंक है। यह बैंक व्यापारिक बैंकों और ग्रामीण बैंकों को वित्त प्रदान करता है ताकि वे कृषि व अन्य ग्रामीण क्रियाओं के लिये प्रत्यक्ष रूप से वित्त प्रदान कर सकें।

6. निर्यात–आयात बैंक : निर्यात–आयात बैंक केवल विदेशी व्यापार के लिये वित्त प्रदान करते हैं। भारतीय निर्यात–आयात बैंक की एक शिखर बैंके के रूप में स्थापना निर्यातकों व आयातकों को व्यापारिक बैंकों के जरिये वित्त प्रदान करने के लिये की गयी।

7. आवास बैंकिंग : आवास बैंक वै बैंक हैं जो मकान बनाने के लिये, जमीन के लिये व मरम्मत आदि के लिये वित्त प्रदान करते हैं। राष्ट्रीय आवास बैंक की एक शिखर बैंक के रूप में स्थापना, व्यापारिक बैंकों व अन्य एजेन्सियों के माध्यम से आवास वित्त प्रदान करने के लिये, की गयी।

6.3 स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की भूमिका

आज का स्टेट बैंक आफ इंडिया वो सबसे पहले *Bank of Hindostan* के रूप में 1770 में खोला गया। उसके बाद इसे धीरे धीरे तीन शाखाओं में अलग अलग कर दिया गया जो कुछ इस तरह से है – 1806 – *Bank of Bengal*, 1840 – *Bank of Bombay* और 1843 – *Bank of Madras.* इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया *(Imperial Bank of India*a*)*a 1921 में बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के प्रेसीडेंसी बैंकों के समामेलन के द्वारा स्थापित किया गया था। जिसे बाद मे 1 जुलाई 1955 को *State Bank of India*" के नाम से बदल दिया गया और आज हम इसे इसी नाम से जानते है। भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना में पहले इम्पीरियल बैंक ही सरकार के एक मात्र बैंकर, सरकारी कोपों के अभिरक्षक (*Custodian*), बैंकों को बैंक, समाशोधन गृह आदि के रूप में कार्य करता था। 1935 में भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद इसकी स्थिति और कार्य क्षेत्र में परिवर्तन हुआ। यह एक व्यापारिक बैक रह गया। इसके पास बड़ी मात्रा में साधनों, बड़ी संख्या में शाखाओं और अधिक व्यापार के कारण इसका बैंकिंग उद्योग में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। जहाँ भारतीय रिजर्व बैंक की शाखाएँ नहीं थी वहाँ यह उसके एजेन्ट के रूप में भी कार्य करता है।

6.3.1 स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना :

एसबीआई की स्थापना 1 जुलाई 1955 को हुई थी लेकिन इसे बनाने का इतिहास लगभग 150 सालों से भी ज्यादा पुराना है। सरकार ने 20 दिसम्बर, 1954 को इम्पीरियल बैंक के राष्ट्रीयकरण करने का एक ऐतिहासिक निर्णय लिया। यह निर्णय भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण (*All India Rural Credit Survey*) पर नियुक्ति की गयी कमेटी की सिफारिशों के आधार पर लिया गया था। इस कमेटी की तीन साल की मेहनत के बाद साल 1955 में पार्लियमेंटरी एक्ट के तहत इंपीरियल बैंक को अधिग्रहित किया। जिसके लिए स्टेट बैंक ऑफ इंडिया (सहायक बैंक) अधिनियम, 1959 लाया गया और 30 अप्रैल 1955 को इंपीरियल बैंक का नाम बदलकर 'स्टेट बैंक ऑफ इंडिया' रखा गया। इसके बाद 1 जुलाई 1955 को एसबीआई की स्थापना की गई। और कुछ समय बाद विभिन्न राज्यों से जुड़े 8 बड़े बैंक इस मुख्य बैंक में इसके सहायक के रूप में शामिल कर लिये गये। ये बैंक थे सौराष्ट्र बैंक, पटियाला बैंक, बीकानेर बैंक, जयपुर बैंक, राजस्थान बैंक, इंदौर बैंक, बड़ौदा बैंक, मैसूर बैंक, हैदराबाद स्टेट बैंक और ट्रावनकोर बैंक।

6.3.2 उद्देश्य :

इम्पीरियल बैंक के राष्ट्रीयकरण का एक मुख्य उद्देश्य पूरे देश में शाखाओं की स्थापना करके बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार करना था। स्टेट बैंक ऑफ इंडिया अधिनियम के अनुसार बैंक पर पहले 5 वर्षों में ग्रामीण, अर्ध–शहरी और उन क्षेत्रों में जहाँ बैंकिंग सुविधाएँ नहीं थी, 400 नयी ब्रांचे खोलने का विधिक दायित्व था। इस सम्बन्ध में बैंक ने एक विशेष कोष का निर्माण किया जिसे 'एकीकरण और विकास कोष' (*Integration and Development Fund*) कहते हैं और जिसका प्रयोग अधिनियम के पालन करने में स्थापित की गयी अतिरिक्त शाखाओं को होने वाली हानियों को पूरा करने व भारतीय रिजर्व बैंक के परामर्श से केन्द्रीय बैंक द्वारा अनुमोदित अन्य हानियों व व्ययों को पूरा करने के लिये करना था। इस कोष का

निर्माण भारतीय रिजर्व बैंक को देय लाभाँशों तथा भारतीय रिजर्व बैंक और केन्द्रीय सरकार द्वारा दिये गये योगदानों से किया गया था।

स्टेट बैंक ऑफ इंडिया से यह अपेक्षा की गई थी कि वह अपनी क्रियाओं का संचालन सरकार की मुख्य आर्थिक नीतियों के अनुरूप करेगा। बैंक का दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य कृषि वित्त को बढ़ावा देना और कृषि वित्त की वर्तमान प्रणाली की समस्याओं को हल करना था। इसके अतिरिक्त बैंक का उद्देश्य बैंक के कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिये और सहकारी बैंकिंग की जानकारी प्रदान करने के लिये विशेष सविधाएँ प्रदान करना था।

स्टेट बैंक ऑफ इंडिया से यह भी अपेक्षा थी कि यह भारतीय रिजर्व बैंक की साख नीतियों में सहायता करेगा और मुद्रा बाजार में मौद्रिक असंतुलन का नियंत्रण करने में उसकी सहायता करेगा।

6.3.3 प्रगति

स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना के समय इस पर दो मुख्य जिम्मेवारियाँ डाली गयी थीं।

1. लाभ प्रेरित व्यापारिक बैंकिंग को देश की आवश्यकताओं को पूरा करने वाली सामाजिक उद्देश्य से प्रेरित संस्था में परिवर्तित करना।
2. इसे ऐसे विकासात्मक कार्य करना जो सामान्यतया व्यापारिक बैंकों के व्यापार में शामिल नहीं किये जाते।

यह बैंकिंग उद्योग का पथ–प्रदर्शक बन गया है और देश में अन्य सभी व्यापारिक बैंकों के लिये एक आदर्श बैंक के रूप में विकसित हुआ है। अब इसकी महत्वपूर्ण उपलब्धियों पर विचार किया जाएगा।

1. शाखा विस्तार : इसकी स्थापना पर इसका उद्देश्य पहले 5 वर्षों में 400 शाखाएँ खोलना था। बैंक ने समय से पहले ही यह लक्ष्य पूरा कर लिया। तब से यह ग्रामीण, अर्द्धशहरी और ऐसे क्षेत्रों में शाखाएँ खोलता रहा है जहाँ बैंकिंग सुविधाएँ बिल्कुल ही नहीं थी या कम थीं। भारत में शाखाओं की संख्या जून, 1955 के अन्त में 466 में बढ़कर मार्च, 2016 के अन्त तक 18,422 हो गयी।

2. जमा का संग्रहण : स्टेट बैंक ऑफ इंडिया ने संग्रहण के लिये कई नई–नई योजनाएँ बनायी। इसके अतिरिक्त इसकी शाखाओं के विशाल जाल ने जमाओं के संग्रहण को बहुत बढ़ावा दिया। बैंक की कुल जमाएँ जून, 1955 में 188 करोड़ रु. से बढ़कर अक्टूबर, 2016 के अन्त तक 200,666 करोड़ रु. हो गयीं। इन जमाओं की एक बहुत बड़ी राशि ग्रामीण और अर्द्ध–शहरी क्षेत्रों से एकत्र की गयी।

3. अग्रिम राशि : 1955 के अन्त में बैंक की कुल अग्रिम राशि 99 करोड़ रु. थी। इसकी और इसके सहयोगी बैंकों की अग्रिम राशि (सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश को छोड़कर) अक्टूबर, 2016 तक बढ़कर 90,322 करोड़ रु. हो गयी।

यह बैंक एक प्रमुख वित्तीय सस्था बन गया है जो कृषि, लघु उद्योगों, मध्यम और बड़े उद्योगों, समाज के कमजोर वर्गों आदि को अल्प अवधि और मध्य अवधि के लिये वित्त प्रदान करता है। सामान्यतया व्यापारिक बैंकों को मध्य अवधि के लिये वित्त प्रदान करने की अनुमति नहीं दी जाती लेकिन स्टेट बैंक ऑफ इंडिया को उद्योगों को मध्यावधि वित्त प्रदान करने की अनुमति दी गयी। स्टेट बैंक द्वारा

अधिकांश ऋण लोहा और इस्पात, इंजीनियरी, उर्वरक और रासायनिक उद्योगों तथा लघु उद्योगों को दिया गया।

4. निर्यात वित्त : निर्यात संवर्धन के क्षेत्र में बैंक की भूमिका में निर्यात वित्तीयन तथा भारतीय निर्यातों, परंपरागत और गैर–परंपरागत दोनों ही के लिये नये बाजारों का पता लगाना और विकास करना शामिल है। बैंक ने विभिन्न वस्तुओं की निर्यात संभावनाओं के बारे में अपने ग्राहकों के लिये सूचना सेवा आरम्भ की है। यह बैंक भारतीय निर्यातकों और आयातकों को सूचनाएँ भी भेजता रहता है। इसने 1970 में बम्बई में – अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाग स्थापित किया। यह प्रभाग बहुत तरह की सूचनाएँ प्रदान करने के अलावा भारतीय निर्यातकों और विदेशी आयातकों के बीच सम्पर्क स्थापित कराने का भी . प्रयत्न करता है। बैंक विदेशी मुद्रा में ऋण प्राप्त करने में भी सहायता करता है।

5. अग्रणी बैंक योजना : इस योजना के अन्तर्गत स्टेट बैंक ऑफ इंडिया और इसके सहयोगी बैंकों तथा 20 राष्ट्रीयकृत बैंकों को जिले बाँट दिये गये और उन्हें इन जिलों में अगुवा कार्य करने को कहा गया। जिलों का आबंटन करने में जो मापदण्ड अपनाये गये थे वे बैंक का आकार, कार्य की मात्रा को संभालने के लिये इसके संसाधनों की पर्याप्तता, जिलों को सामीप्य, बैंकों का प्रादेशिक महत्व, प्रत्येक राज्य के क्षेत्र में एक से अधिक अग्रणी बैंक के कार्य करने की वांछनीयता और जहाँ तक संभव हो एक बैंक का एक से अधिक राज्य में कार्य करना आदि। इस प्रकार इस योजना के अन्तर्गत अग्रणी बैंक देश के सभी जिलों में बैंकिंग संभावना का सर्वेक्षण करने और उनका विकास करने की जिम्मेवारी में सहभागी हैं। इस योजना के अन्तर्गत 90 जिले स्टेट बैंक ऑफ इंडिया और इसके सहयोगी बैंकों को आबंटित किये गये। इस बैंक ने लगभग इन सभी जिलों के लिये विस्तृत सर्वेक्षण रिपोटें तैयार कर ली हैं। बैंक अपने अग्रणी जिलों में सभी सामुदायिक विकास खण्डों में विभिन्न अध्ययनों का कार्य भी कर रहा है।

6. लघु उद्योग : अपनी स्थापना के तुरंत बाद स्टेट बैंक ऑफ इंडिया ने लघु उद्योगों को वित्त प्रदान करने की एक योजना बनायी। 1960 में इस योजना का क्षेत्र बढ़ा दिया गया और स्थायी परिसम्पत्तियों के क्रय के लिये मध्यावधि ऋण प्रदान करना भी। इसमें शामिल कर दिया गया। इसके साथ–साथ बैंक ने ऋण देने की शर्तों को भी उदार बना दिया है।

बैंक ने 1967 में एक उद्यमी योजना भी शुरू की। इस योजना में, उद्यमी की योग्यता और परियोजना की तकनीकी व आर्थिक व्यवहार्यता को महत्व दिया गया। बैंक ने छोटे कारीगरों की सहायता करने के लिये 1969 में ग्रामीण उद्योग परियोजना भी शुरू की। सरकार द्वारा शिक्षित बेरोजगारों के लिये शुरू किए गये 5 लाख नौकरी कार्यक्रम के साथ भी यह बैंक सक्रिय रूप से जुड़ा रहा। 1975 से बैंक ने लघु उद्योग वित्त के सभी पहलुओं पर अपनी अध्ययन टीमों की सिफारिशों को कार्यान्वित करना शुरू किया और वित्त प्रदान करने और कार्यान्वित करने के गुणात्मक पहलुओं को सुधारने का प्रयत्न किया। बैंक द्वारा 1956 में लघु उद्योगों को 10 लाख रु. की सहायता दी गई थी। मार्च, 2016 के अन्त तक यह रकम बढ़कर 3,412 करोड़ रु. (सहायक बैंकों को शामिल करके) हो गयी और इसमें 13. 51 लाख लघु इकाइयों को लाभ पहुँचा।

7. कृषि वित्त : बैंक किसानों को सभी कृषि क्रियाओं के लिये प्रत्यक्ष अग्रिम मुख्यतया किसानों की प्रगतिशीलता और योजनाओं की आर्थिक व्यवहार्यता के आधार पर देता है। बैंक ने 1969 में लघु कृषक योजना और कृषि स्नातक योजना

शुरू की। पहली योजना के अन्तर्गत बैंक ने मुख्यतया छोटे किसानों की सामूहिक गारंटी पर जोर दिया और किसी अन्य प्रकार की जमानत पर जोर नहीं दिया। दूसरी योजना के अन्तर्गत तकनीकी योग्यता प्राप्त लोगों, खास तौर से कृषि, डेरी विज्ञान आदि के स्नातकों को साख प्रदान करने की कोशिश की गयी।

स्टेट बैंक ऑफ इंडिया समूह की कृषि को कुल प्रत्यक्ष सहायता 1975 के अन्त में 176 करोड़ रु से जून 1986 में अन्त तक बढ़कर 2.757 करोड़ रु हो गयी। इसी प्रकार बैंक द्वारा प्रदान किया गया। अप्रत्यक्ष वित्त 1975 के अन्त में 65 करोड़ रु. से जून, 1986 के अन्त तक बढ़कर 511 करोड़ रु. हो गया। मार्च, 2016 के अन्त तक कृषि को दी गयी कुल अग्रिम राशि 83,168 करोड़ रु. थी।

1971 में स्टेट बैंक ऑफ इंडिया ने ऋणों के फैलाव के स्थान पर क्षेत्र नीति अपनायी। इसके अन्तर्गत चुने हुए क्षेत्रों पर ही अधिक ध्यान दिया गया। इस नीति की एक महत्वपूर्ण विशेषता गहन केन्द्रों को चुनना था और इसमें पिछड़े क्षेत्रों को प्राथमिकता देनी थी। ऐसे केन्द्रों में कृषि विकास शाखाएँ (ADB) स्थापित की गयीं। 1977 के अन्त तक बैंक ने 314 कृषि विकास शाखाएँ शुरू कर दी थीं और प्रत्येक शाखा कृषकों को फसल ऋणों व निवेश ऋणों के रूप में और क्षेत्र की अन्य आवश्यकताओं के लिये साख प्रदान करती थी। प्रत्येक क्षेत्र में लगभग 100 गाँव थे। कृषि से सम्बद्ध कार्यों जैसे पशु पालन, मुर्गीपालन आदि के लिये और गोदामों के बनाने के लिये, परिवहन सविधाओं तथा फसल के विपणन के लिये भी वित्त प्रदान किया जाता है।

स्टेट बैंक ने एक ग्राम अंगीकरण योजना (*VAS - Village Adoption Scheme*) बनायी। इस योजना के अनुसार एक शाखा कुछ गाँवों को अपना लेती है ताकि वहाँ के किसानों की विभिन्न ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये गहन और समन्वित वित्त प्रबन्ध किया जा सके। यह वित्त प्रबन्ध खेतों के आकार, ऋण की प्रकृति और मात्रा पर ध्यान दिये बिना किया जाता है। अक्षम किसानों के लिये समूह गारंटी की प्रणाली शुरू की गयी।

किसानों को प्रत्यक्ष ऋण प्रदान करने के अतिरिक्त बैंक प्राथमिक साख संस्थाओं के जरिये अप्रत्यक्ष रूप से भी वित्त प्रदान करता है।

भूमि बंधक बैंकों को वित्त : यह बैंक भूमि बंधक बैंकों की तीन रूप से सहायता करता है:

- **a.** केन्द्रीय भूमि बंधक बैंकों द्वारा निर्गमित ऋणपत्रों में अभिदान करके;
- **b.** ऐसे ऋणपत्रों की जमानत पर अग्रिम देकर तथा
- **c.** सरकार की गारंटी पर केन्द्रीय भूमि बंधक बैंकों को अन्तरिम वित्तीय सहायता का प्रावधान करके।

8. लघु व्यापार को वित्त : बैंक ने उन छोटे ऋणियों की साख आवश्यकताओं को पूरा करने की नीतियाँ भी बनाई हैं जो वितरण, परिवहन आदि आर्थिक कार्य करते हैं।

9. रोजगार–अभिमुखी ऋण : यह कार्यक्रम 1971 में शुरू किया गया। यह पहला बैंक था जिसने इस प्रकार की योजना शुरू की। इसके अन्तर्गत तकनीकी योग्यता वाले या अनुभवी व्यक्तियों को लघु औद्योगिक इकाइयाँ लगाने के लिये रियायती शर्तों पर वित्त प्रदान किया जाता है। इसी तरह की एक योजना कृषि

स्नातकों के लिये भी शुरू की गयी। डाक्टरों दंत चिकित्सों, इंजीनियरों, स्नातकों आदि के लिये नयी योजनाएं बनाने के अतिरिक्त, उद्यमी–योजना, कृषि स्नातक योजना, कृषि सेवा केन्द्रों के बारे में योजना आदि को अधिक उत्साहपूर्वक कार्यान्वित किया गया। शुरू में स्वरोजगार पर अधिक जोर दिया गया।

10. विभेदक ब्याज दर योजना : यह योजना अगस्त, 1972 में शुरू की गयी। इस योजना के अन्तर्गत स्टेट बैंक और इसके समुह द्वारा दी गयी। अग्रिम राशि दिसम्बर,1973 में 3.9 करोड़ रु. से मार्च, 2016 में बढ़कर 81,361 करोड़ रु. हो गयी। इस योजना से लाभकारी आर्थिक क्रियाएँ शुरू हुई। इसके अन्तर्गत उचित शर्तों पर ऋण दिया जाता है। इस योजना से जून, 2016 के अन्त तक कुल 99.45 लाख व्यक्तियों को लाभ पहुँचा।

11. व्यापारिक बैंकिंग विभाग : स्टेट बैंक ने 1972 में यह विभाग शुरू किया। यह ग्राहकों को सेवा प्रदान करने के अतिरिक्त उन लघु व मध्यम उद्यमियों की सहायता करता है जो औद्योगिक इकाइयाँ लगाना चाहते हैं और पहली बार पूँजी बाजार में प्रवेश करना चाहते हैं। यह उन तकनीकी विशेषज्ञों और नये उद्यमियों की सहायता करता है जो वित्तीय नियोजन, पूँजी संरचना, सार्वजनिक निर्गमन आदि के बारे में व्यवस्था करना नहीं जानते।

बोध प्रश्न 'क'

1. भारत में बैंकिंग संरचना की 7 श्रेणियाँ बताइये।
2. रिक्त स्थानों को भरिये :
   - **(i)** .... की स्थापना के बाद इम्पीरियल बैंक की स्थिति और कार्यों में मूल परिवर्तन हो गए।
   - **(ii)** एकीकरण और विकास कोष का निर्माण स्टेट बैंक ऑफ इंडिया द्वारा . . . . विस्तार की नीति का पालन करने में सहायता करने के लिये किया गया।
   - **(iii)** विकास बैंक दीर्घावधि वित्त प्रदान करते हैं, खासतौर से . . . . .को।
   - **(iv)** स्टेट बैंक ऑफ इंडिया को व्यापारिक बैंकिंग को लाभ–अर्जन से . . . . दायित्वों की ओर अभिमुख करना था।
3. बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :
   - **(i)** स्टेट बैंक से ऐसी नीतियों का अनुसरण करने की अपेक्षा थी जो देश की व्यापक आर्थिक नीतियों के अनुरूप हों।
   - **(ii)** स्टेट बैंक ने औद्योगिक वित्त के स्थान पर निर्यात वित्त को प्राथमिकता दी।
   - **(iii)** सर्वाधिक प्रयत्नों के बावजूद स्टेट बैंक ऑफ इंडिया ग्रामीण वित्त पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालने में सफल नहीं हुआ।
   - **(iv)** स्टेट बैंक ऑफ इंडिया ही एक मात्र ऐसा व्यापारिक बैंक है जिसे गध्यावधि ऋण देने की अनुमति दी गयी है।

6.4 व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण

निश्चित सामाजिक दायित्वों और उद्देश्यों के साथ आर्थिक विकास की मुख्य धारा में लाने के लिए वाणिज्यिक बैंको के लिए एक दृश्य के साथ, सरकार ने 19 जुलाई 1969 को 14 प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण करने का फैसला किया। 15 अप्रैल 1980, को राष्ट्रीयकरण का दूसरा दौर हुआ जिसके तहत 06 और बैंकों को राष्ट्रीयकृत किया गया। इन बैंकों पर अधिकतर बड़े औद्योगिक घरानों का कब्जा था।

19 जुलाई,1969 की रात को एक अध्यादेश जारी किया गया जिसमे 14 प्रमुख अनुसूचित बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया जिनकी जमाएँ 50 करोड़ रु. से अधिक थी। ये 14 राष्ट्रीयकृत बैंक हैं : इलाहाबाद बैंक, बड़ौदा बैंक, महाराष्ट्र बैंक, केनरा बैंक, बैंक ऑफ इंडिया, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, देना बैंक, इंडियन बैंक, इंडियन ओवरसीज बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, सिण्डीकेट बैंक, यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया, यूनाइटेड कमर्शियल बैंक और यूनियन बैंक ऑफ इंडिया। बाद में 15 अप्रैल, 1980 को सरकार ने 6 और वाणिज्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया ये बैंक हैं – आंध्रा बैंक, कारपोरेशन बैंक, न्यू बैंक ऑफ इंडिया, ओरियेन्टल बैंक ऑफ कामर्स, पंजाब एंड सिंध बैंक और विजया बैंक।

इसके पहले तक केवल एक बैंक– भारतीय स्टेट बैंक राष्ट्रीयकृत था। इसका राष्ट्रीयकरण 1955 में कर दिया गया था और 1958 में इसके सहयोगी बैंकों को भी राष्ट्रीयकृत कर दिया गया। इसलिये सरकार को बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण लगाना पड़ा ताकि एकाधिकारी प्रवृत्ति, आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण और आर्थिक संसाधनों के दुर्निदेशन को रोका जा सके। इस प्रकार सामाजिक नियंत्रण का मूल उद्देश्य बैंकों को सार्वजनिक स्वामित्व में लिये बिना सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करना था।

इसके फलस्वरूप, 22 दिसम्बर, 1967 को राष्ट्रीय साख नियंत्रण परिषद् (*National Credit Control Council*) की स्थापना की गयी जिससे कि साख के उपलब्ध संसाधनों का समय–समय पर मूल्यांकन किया जा सके और इनका विभिन्न क्षेत्रों में न्यायसंगत व उद्देश्यपूर्ण वितरण सुनिश्चित किया जा सके। इस परिषद् से अपेक्षा थी कि यह बैंक साख की मांग का मूल्यांकन करेगी, ऋण देने में प्राथमिकताएँ निर्धारित करेगा और व्यापारिक बैंकों तथा सहकारी बैंकों की ऋण देने व निवेश की नीतियों को समन्वय करेगा। लेकिन बहुतों को ऐसी व्यवस्था संतोषजनक नहीं लगी। इस प्रकार राष्ट्रीयकरण के पक्ष और विपक्ष में राय और तर्क जारी रहे।

6.4.1 राष्ट्रीयकरण के पक्ष में तर्क

अचानक उठाये गये कदम के लिए जो कारण अधिकारिक रूप से कहे गए वे थे, कि प्रमुख बैंकों का सार्वजनिक स्वामित्व राष्ट्रीय संसाधनों के अधिक प्रभावशील गतिशीलता एवं विकास में सहायक होगा एवं उत्पादन उद्देश्यों के लिए इनका उपयोग योजनाओं एवं प्राथमिकता के आधार पर होगा। राष्ट्रीयकरण के समर्थकों ने निम्नलिखित तर्क दिये :

(i) समाजवादी उद्देश्यों की पूर्ति के लिये बैंकों पर राष्ट्रीयकरण आवश्यक है।

- **(ii)** भारत में बैंकों पर स्वामित्व व नियंत्रण कुछ बड़े अंशधारियों व उद्योगपतियों का है। वे ही बैंक साख के आबंटन के स्वरूप को प्रभावित करते हैं।
- **(iii)** बैंक जनता से एकत्रित किये गये जमाओं में से केवल निदेशकों को ऋण दिया करते हैं।
- **(iv)** बैंक लाभों को अधिकतम करने के लिये सट्टेबाजी और असामाजिक क्रियाओं में भाग लिया करते हैं।
- **(v)** बैंक बड़े उद्योगों को साख प्रदान करते हैं और लघु उद्योगों की पूर्णतया उपेक्षा करते हैं।
- **(vi)** बैंक कृषि और उससे सम्बद्ध क्रियाओं के लिये वित्त प्रदान नहीं करते यद्यपि भारतीय, अर्थव्यवस्था है।
- **(vii)** अब बैंकों की शाखाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में भी खोली जा सकेगी ।
- **(viii)** बैंकों का साख प्रवाह सरकार की नीतियों एवं पंचवर्षीय योजनाओं की प्राथमिकताओं के अनुरूप नहीं हैं।
- **(ix)** केन्द्रीय तथा वाणिज्य बैंकों के बीच एकता के लिये वाणिज्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण आवश्यक था ।
- **(x)** जमाकर्ताओं के पैसों की पूर्ण सुरक्षा नहीं है।
- **(xi)** अब बैंक के संचालक अवांछनीय कार्य नहीं कर सकेंगे जैसे सट्टेबाजी में पैसा लगाना, बैंक के धन से मुनाफाखोरी करना चोर बाजारी करना, बैंक ऋण से संग्रहित करना आदि ।
- **(xii)** पंचवर्षीय योजनाओं के सफल संचालन में सरकार को मदद मिलेगी । बैंक के उपलब्ध साधनों का उपयोग विकास कार्य में होगा ।

6.4.2 राष्ट्रीयकरण के विपक्ष में तर्क

कुछ लोगों ने राष्ट्रीयकरण की आलोचना की। उनका तर्क था कि सार्वजनिक क्षेत्र को अंतरण निजी क्षेत्र में व्याप्त बुराईयों के लिए अकेला उपचार नहीं है। आलोचकों का कहना है कि बैंकों का राष्ट्रीयकरण आर्थिक विचारधारा से प्रभावित न होकर राजनैतिक विचारधारा से प्रभावित है ।

उन्होंने निम्नलिखित तर्क दिये :

- **(i)** आलोचकों का कहना है कि राष्ट्रीयकरण के बाद गरीब लोगों, कृषकों तथा लघु उद्यमियों को इससे विशेष लाभ नहीं होगा । सरकारी कर्मचारी सारी व्यवस्था को खराब करके रख देंगे।
- **(ii)** अनाचारों को समाप्त करने के लिये बैंकों के राष्ट्रीयकरण करने के बजाय अन्य बहुत से उपाय हैं।
- **(iii)** बैंकों के राष्ट्रीयकरण से देश के औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्रों को काफी नुकसान होगा।
- **(iv)** राष्ट्रीयकरण से बैंको की कार्यकुशलता घटेगी जैसा कि देश में अन्य राष्ट्रीयकृत उद्योगों मे रहा।

(v) इसे बैंकिंग उद्योग में एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होंगी जिन्हें नियंत्रित करना संभव नहीं होगा।

(vi) क्योंकि बैंकों के राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य कृषि समाज के कमजोर वर्गों आदि को वित्त प्रदान करना है, इससे जमाकर्ताओं के कोषों को कोई सुरक्षा नहीं मिलेगी।

(vii) राष्ट्रीयकरण से अंशधारियों की क्षतिपूर्ति करने के रूप में बहुत बोझ पड़ेगा।

(viii) राष्ट्रीयकरण का परिणाम समाजवाद नहीं होगा बल्कि इससे राज्य–पूँजीवाद आएगा।

6.4.3 राष्ट्रीयकरण के उद्देश्य :

राष्ट्रीयकरण से पूर्व सभी वाणिज्यिक बैंकों की अपनी अलग और स्वतंत्र नीतियां होती थीं और उनका उद्देश्य अधिकाधिक लाभ के मार्गों को प्रशस्त करने तक ही सीमित था। राष्ट्रीयकरण में मूल उद्देश्य यही रहा कि बैंकिंग प्रणाली देश के आर्थिक विकास मूलक कार्यों में सक्रिय सहयोग प्रदान करके बैंकिंग सेवाओं एवं सुविधाओं का लाभ समाज के कमजोर वर्गों सहित अन्य सभी क्षेत्रों को पहुंचाने में अहम भूमिका अदा करे।

भारत में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है :

(i) **बैंकिंग सुविधाओं तथा सेवाओं का विस्तार करना** : राष्ट्रीयकरण के पहले बैंकिग सेवाए कुछ पूजीपतियों एवं बड़े व्यापारियों तथा किसानों तक ही सीमित थीं जिसके फलस्वरूप समाज के दो वर्गों में बहुत बड़ी आर्थिक दरार उत्पन्न हो गई थी। इस आर्थिक विषमता को दूर करने हेतु बैंकिग सेवाओं एवं सुविधाओं का लाभ समाज में सभी वर्गों विशेषतया ग्रामीण कस्बाई क्षेत्रों में बसे कमजोर वर्गों तक पहुंचाने का मूल उद्देश्य बैंकों के राष्ट्रीयकरण में निहित है।

(ii) **देश का आर्थिक विकास** : जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि बैंक राष्ट्रीयकरण के पहले देश में आर्थिक संकट उत्पन्न होने के कारण आर्थिक विकास की गति अवरुद्ध हो गई थी। अतः देश के आर्थिक विकास में तेजी लाने के लिए बैंको का राष्ट्रीयकरण किया जाना बहुत ही आवश्यक हो गया था क्योंकि किसी भी देश की प्रगति एवं खुशहाली के लिए उसके आर्थिक विकास की ही महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

(iii) **लोगों की बचत को बढ़ावा :** लोगों की बचतों को अधिकतम संभव सीमा तक एकत्रित करना और उत्पादक उद्देश्यों के लिये उसका प्रयोग करना।

(iv) **बेरोजगारी की समस्या को दूर करना :** बैंक राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य देश में बेरोजगारी की समस्या को दूर करना रहा। यह भारतवर्ष की मुख्य चिंता रही है कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण के माध्यम से इस समस्या का समाधान खोजा जा सकता था क्योंकि शिक्षित बेरोजगारों को आर्थिक सहायता के माध्यम से उनके अपने निजी उद्योग या स्वरोजगार के अनेक साधनों में वृद्धि करके बेरोजगारी पर काबू पाया जा सकता था।

(v) **सार्वजनिक नियंत्रण :** यह सुनिश्चित करना कि बैंकों को संचालन पर सार्वजनिक नियंत्रण होय

(vi) **समाज के कमजोर वर्गों तथा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के लोगों का बैंकिंग सेवाओं एवं सुविधाओं के माध्यम से उत्थान :** बैंक राष्ट्रीयकरण का एक उद्देश्य यह भी था कि समाज के कमजोर वर्गों तथा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के लोगों का बैंकिंग सेवाओं एवं सुविधाओं के माध्यम से उत्थान करके देश की आर्थिक उन्नति को एक नई दिशा प्रदान कराना। देश के कमजोर वर्ग तथा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के लोग अर्थात् छोटे तथा मंझोले किसान, भूमिहीन मजदूर, शिक्षित बेरोजगार, छोटे कारीगर आदि की आर्थिक उन्नति में योगदान दिया जाना बहुत आवश्यक हो गया था क्योंकि ऐसे वर्गों के लोग देशभर में फैले हुए थे और उनकी संख्या काफी थी।

(vii) **व्यापार की उचित साख :** यह सुनिश्चित करना कि निजी क्षेत्र के बड़े और छोटे सभी प्रकार के उद्योग और व्यापार की उचित साख आवश्यकताएँ पूरी की जाएँ।

(viii) **अन्य विशेषतायें / उद्देश्य :**

(ix) यह सुनिश्चित करना कि उत्पादक क्षेत्र की विशेष रूप से कृषि, लघु उद्योग और स्वनियोजित व्यवसायियों की आवश्यकताएँ पूरी की जा सकें।

(x) नये और प्रगतिशील उद्यमियों के वर्ग के विकास को प्रोत्साहित करना और देश के विभिन्न भागों में अब तक उपेक्षित क्षेत्रों और पिछड़े क्षेत्रों के लिये नये अवसरों का निर्माण करना

(xi) बैंकों के राष्ट्रीयकरण का एक और मूल उद्देश्य था ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति में सुधार तथा कृषि एवं लघु उद्योगों के क्षेत्रों की समुचित प्रगति किया जाना।

(xii) बैंक साख का सट्टेबाजी और अन्य अनुत्पादक उद्देश्यों के लिये प्रयोग पर रोक लगाना।

(xiii) सामाजिक कल्याणरू भारतीय अर्थव्यवस्था के जरूरतमंद और आवश्यक क्षेत्रों के लिए धनराशि को निर्देशित करने के लिए समय की

(xiv) निजी एकाधिकार को नियंत्रित करनारू राष्ट्रीयकरण से पहले कई बैंकों को निजी व्यवसायिक घरों और कॉर्पोरेट परिवारों द्वारा नियंत्रित किया जाता था। सामाजिक रूप से वांछनीय वर्गों को क्रेडिट की एक आसान आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए इन एकाधिकारों की जांच करना आवश्यक था।

6.5 राष्ट्रीयकरण के पश्चात् बैंकिंग का विकास

1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप देश में आर्थिक आजादी का नया दौर शुरू हुआ। पूर्व में जहाँ बैंकों की पूँजी का पूरा लाभ पूँजीपति व इजारेदार उठाते थे, अब समाज के प्रत्येक वर्ग को अपना काम–धंधा शुरू करने के लिए बैंकों से ऋण मिलना सुगम हो गया। बैंकों की इस नई जनप्रिय भागीदारी ने प्रदेश की साधारण जनता को आर्थिक प्रगति के अवसर प्रदान किए। वास्तव में

भारत की विकास यात्रा में 1969 का श्बैंकों का राष्ट्रीयकरण विधेयक सबसे बड़ा मील का पत्थर सिद्ध हुआ। इसने भौगोलिक और कार्यात्मक विविधता की गति को तीव्र करने में सहायता की। नये आयामों से व्यापारिक बैंकों की जिम्मेवारियाँ बढ़ गयीं। जैसे कि बहुत व्यापक स्तर पर दर–दर के ग्रामीण क्षेत्रों और ऐसे क्षेत्रों में बैंक शाखाओं का विस्तार करना जहाँ बैंकिंग सुविधाएँ नहीं थी तथा निर्यात क्षेत्रक, कृषि क्षेत्रक, लघु क्षेत्रक, कुटीर व ग्रामीण उद्योगों, स्वरोजगार व्यक्तियों, कारीगरों, समाज के कमजोर वर्गों और छोटे व्यापारियों आदि की साख आवश्यकताएँ पूरी करना।

सन् 1991 से जब भारतीय बैंकिंग में आर्थिक उदारीकरण का दौर प्रारंभ हुआ तब बैंकिंग क्षेत्र में आर्थिक सुधार हेतु विभिन्न समितियाँ बनायी गयी जिनकी सिफारिष के द्वारा भारतीय बैंकिंग का ढांचा ही बदल गया।

राष्ट्रीकरण के उपरांत बनायीं गई समितियां एवं उनके परिलक्षित व्यापक सुधार कार्य

वर्ष	समिति	सुधार
1991	गोईपोरिया समिति	ग्राहक सेवा में सुधार
1991	नरसिम्हम समिति (प्रथम)	बैंकिंग आर्थिक सुधार
1993	घोष समिति	बैंका ें मे ं धोखाधड़ी रोकने क े उपाय
1993	नायक समिति	लघु एवं मध्यम उद्योगों को ऋण उपलब्ध कराना
1995	पद्मनाभन समिति	बैंकों का पर्यवेक्षक निर्धारण
1997	तारापोर समिति	विदेषी विनियम में पूंजी खाता परिवर्तनीय
1998	आर0वी0 गुप्ता समिति	कृषि के लिए ऋण प्रणाली में सुधार
1998	नरसिम्हम समिति (द्वितीय)	बैंकिंग व्यवस्था प्रणाली में सुधार
1998	कपूर समिति	लघु एवं मध्यम उद्योगों के क्षेत्रों में सुधार
1998	खान समिति	यूनिवर्सल बैंकिंग के कोरम
1999	वर्मा समिति	क्मजोर बैंकों की समस्याएं और उपाय
2001	कामत समिति	शिक्षा ऋण योजना 15 लाख रूपये तक
2001	रेड्डी समिति	छोटी बचतों से जुड़ी व्यवस्था मे ं सुधार
2001	कोहली समिति	विलफुल डिफॉल्टर की परिभाषा व बीमार, लघु
2001	खन्ना समिति	एवं मध्यम उद्योगों की रिहैबिलिटेषन
2006	बासेल समिति	गैर निष्पादक आस्तियो ं की रूप रेखा में बदलाव

इसे सामाजिक क्रांति का दौर भी कहा गया है। बैंकों का यह दौर वर्ष 1990 तक चला। अतः उपर्युक्त समितियों की सिफारिषों पर राष्ट्रीयकृत बैंकों में भी निम्नलिखित व्यापक सुधार परिलक्षित हुए :-

1. **शाखा विस्तार :** देश के सामाजिक व आर्थिक लक्ष्यों को पूरा करने के लिये व्यापारिक बैंकों की शाखाओं का विस्तार बहुत महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीयकरण के बाद बैंकों का शहरी केन्द्रों के इर्द-गिर्द परम्परागत संकेन्द्रण कम हुआ है। शाखाओं का अर्द्ध-शहरी, ग्रामीण एवं पिछड़े हुए क्षेत्रों में और वहाँ जहाँ बैंकिंग सुविधाएँ नहीं थी, व्यापक फैलाव हुआ है। राष्ट्रीयकरण के 18 वर्षों के दौरान यानि जून, 1987 तक बैंकों ने 53,890 शाखाएँ खोली। यह अपने आप में एक रिकार्ड है। जून, 1969 से जून, 2017 तक ग्रामीण शाखाओं की संख्या बढ़कर 85,201 हो गयी तथा वर्तमान में यह करीब 98,270 है। ग्रामीण क्षेत्रों, कम बैंकिंग सुविधा वाले क्षेत्रों और बिना बैंकिंग सुविधा वाले क्षेत्रों में बहुत बड़े पैमाने पर शाखा विस्तार से बैंकिंग सुविधाओं की क्षेत्रीय असंतुलन कम हुआ। इसी क्रम में निजीकरण के पष्चात् से कई निजी कम्पनियों के बैंकों ने अपना पर्याप्त बैंकिग नेटवर्क बना लिया है तथा इनकी शाखाओं का विस्तार अब शहरों से गाँवों की ओर बढ़ रहा है। वस्तुतः अधिक से अधिक नागरिको तक बैकिंग सेवाओं को ले जाने हेतु सरकार द्वारा भी कैम्प लगाकर जन-धन खाते खुलवाने का व्यापक अभियान चलाया जा रहा है।

2. **जमाओं की संवृद्धि :** बैंक की प्रगति का अन्य क्षेत्र जमाओं में तीव्र वृद्धि है। बैंकों द्वारा किये गये व्यापक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप जून, 1969 से नवम्बर,2018 की अवधि में जमाएँ, 4,645 करोड़ रु. से बढ़कर 181,81,260 करोड़ रु. हो गयीं। यह असाधारण वृद्धि थी। इस अवधि में कुल जमाओं में सावधि जमाओं का अनुपात भी बढ़ा।

3. **साख विस्तार :** राष्ट्रीयकरण के बाद की अवधि में बैंकों द्वारा दी गयी साख में भी महत्वपूर्ण सुधार हुआ। कुल साख 1969 में 3599 करोड़ रु. से बढ़कर नवम्बर, 2018 में 250,06,603 करोड़ रु. हो गयी।

4. **कृषि साख संवृद्धि :** राष्ट्रीयकरण के बाद व्यापारिक बैंक कृषि क्षेत्र की ओर विशेष ध्यान देते रहे हैं। कृषि क्षेत्र को साख प्रदान करने के लिये बहुत से कार्यक्रम लागू किये गये जैसे अग्रणी बैंक योजना, क्षेत्र नीति, विभेदक ब्याज दर योजना, ग्राम अंगीकरण योजना, छोटे किसानों की विकास एजेन्सी, सीमान्त किसानों और कृषि श्रमिकों की एजेन्सी, सहकारी समितियों के द्वारा वित्तीयन कृषक सेवा संस्थाओं का संगठन और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का प्रायोजन।

बैंक अल्पावधि फसल ऋणों तथा बैलों, बैलगाड़ियों, कृषि उपकरणों को खरीदने, कुएं खोदने और भूमि विकास आदि के लिये सावधि ऋणों के रूप में कृषकों को प्रत्यक्ष रूप से ऋण प्रदान करते हैं। ये कृषि से सम्बद्ध क्रियाओं जैसे दुग्धशाला, मुर्गी पालन, मछली पालन, मधुमक्खी पालन आदि के लिये भी ऋण प्रदान करते हैं। 1969 से 1986 की अवधि में कृषि साख का अनुपात 5.4% से बढ़कर 18.3% हो गया वर्तमान में यह 62.5 प्रतिषत है।

5. **लघु उद्योग को वित्त :** हमारी अर्थव्यवस्था में लघु उद्योग एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। व्यापारिक बैंक लघु उद्योगों के वित्त प्रबन्ध के बारे में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दिखाये गये मार्ग पर चल रहे हैं। भारतीय रिजर्व बैंक ने लघु उद्योगों की तीन श्रेणियाँ बनायी हैं : (क) शिल्प व ग्राम्य कुटीर उद्योग, (ख) बहुत छोटे लघु उद्योग, और (ग) बड़े आकार की लघु इकाइयाँ। व्यापारिक

बैंकों की लघु उद्योगों को वित्तीय सहायता 1969 से 1986 की अवधि में 251 करोड़ रु. से बढ़कर 7,636 करोड़ रु. हो गयी तथा वर्तमान में यह बढ़कर नवम्बर, 116,538 करोड़ रु. हो गयी हैं।

6. **अन्य प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रकों को वित्तीय सहायता :** व्यापारिक बैंक अन्य प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रकों को भी साख प्रदान करता है। ये क्षेत्रक हैं रू स्वनियोजित व्यक्ति, वाहन चालक तथा खुदरे व छोटे व्यापारी। ये बैंक शिक्षा व आवास आदि के लिए सहायता भी देते हैं। जून, 1967 से जून, 2018 की अवधि में इन क्षेत्रकों को दिया गया ऋण 28 करोड़ रु. से बढ़कर रू 215,918 करोड़ रु. हो गया।

7. **निर्यात साख :** राष्ट्रीयकरण के बाद से बैंक प्राथमिकता के आधार पर और रियायती शर्तो पर निर्यात क्षेत्र को साख प्रदान कर रहे हैं। इस क्षेत्र को दिये गये ऋण जून, 1986 में 2,377 करोड़ रु. थे, जो कि वर्तमान में लगभग 58,72,377 करोड़ रु. हो चुके हैं।

8. **कमजोर वर्गों को ऋण :** राष्ट्रीयकृत बैंक कमजोर वर्गों के लोगों को भी ऋण व अग्रिम प्रदान करते हैं। इसमें छोटे व सीमान्त किसान, भूमिहीन श्रमिक, काश्तकार, बटाईदार, कारीगर, ग्रामीण व कुटीर उद्योग, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लाभभोगी, अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ और विभेदक ब्याज दर योजना के लाभभोगी आते हैं।

बोध प्रश्न 'ख'

1. बैंक राष्ट्रीयकरण क्या है?

   ....
   ....
   ....
   ....

2. भारत में राष्ट्रीयकृत बैंकों की सूची बनाइये।

   ....
   ....
   ....
   ....

3. बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

   व्यापारिक बैंक के राष्ट्रीयकरण ने अपने उद्देश्यों को पूरा कर लिया है।

   (i) राष्ट्रीयकरण से पहले भारत में व्यापारिक बैंकों का सम्बन्ध सामान्यतया केवल लाभों को अधिकतम करने से था।

   (ii) राष्ट्रीयकरण से व्यापारिक बैंकों की कार्यकुशलता बढ़ी है।

   (iii) भारत में बैंकों के राष्ट्रीयकरण को ग्रामीण क्षेत्र और समाज के कमजोर वर्ग तक साख सुविधा पहुँचाने की आवश्यकता ने प्रेरित किया था।

(iv) रिक्त स्थानों को भरिये (*Fill in the balnks*)

(v) भारत में 14 बड़े बैंकों का 19 जुलाई.. . . . . को राष्ट्रीयकरण किया गया।

(vi) 15 अप्रैल, 1980 को . . . . अन्य बैंकों को भारत के राष्ट्रीयकृत बैंकों की सूची में जोड़ा गया।

(vii) ग्रामीण क्षेत्रों, कम बैंकिंग सुविधा वाले क्षेत्रों और बिना बैंकिंग सुविधा वाले क्षेत्रों में शाखा विस्तार से बैंकिंग सुविधाओं में क्षेत्रीय . . . . .कम हुआ है।

6.6 भारत में व्यापारिक बैंकों की समस्याएँ

यद्यपि व्यापारिक बैंकों ने शाखा विस्तार, जमा संग्रहण तथा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रकों और समाज के कमजोर वर्गों को ऋण देने के रूप में काफी प्रगति की, फिर भी ये अभी बहुत–सी समस्याओं का सामना कर रहे हैं। ये समस्याएँ निम्नलिखित हैं :

1. शाखा विस्तार में समस्याएँ : बैंकों को उन ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में अपनी शाखाएँ खोलने को कहा गया जहाँ न्यूनतम संरचनात्मक सुविधाएँ जैसे सड़कें, संचार, यातायात, शिक्षा, बैंकिंग संचालन के लिये सुरक्षित भवन उपलब्ध नहीं हैं। कुछ स्थानों पर तो बैंक कर्मचारियों की सुरक्षा की समस्या भी है।

2. जमा संग्रहण में समस्याएँ : सार्वजनिक क्षेत्रक के बैंकों में जुमा संग्रहण के संबंध में तीव्र प्रतिस्पर्धा रही है क्योंकि ये सभी एक ही प्रकार की सेवाएँ प्रदान करते हैं। जमाओं को एकत्र करने में इन्हें राष्ट्रीय बचत संगठनों, गैर–बैंकिंग कम्पनियों, भारतीय यूनिट ट्रस्ट, म्यूचुअल फंड्स आदि से भी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। यह महसूस किया जाता है कि बैंकों के जमा संग्रहण प्रयत्न वर्तमान आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये पर्याप्त नहीं हैं। यह भी कहा जाता है कि बैंकों की जमा संग्रहण योजनाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में संभावित जमाकर्ताओं की आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं हैं।

3. समन्वय का अभाव : वित्त प्रदान करने के लिये बहुत–सी वित्तीय एजेंसियाँ हैं जैसे कि व्यापारिक बैंक, सहकारी बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक और राज्य वित्त निगम। इनमें आपस में समन्वय का अभाव है। इससे कुछ व्यक्ति एक से अधिक एजेंसियों से ऋण ले लेते हैं, जिससे उन्हें आवश्यकता से अधिक वित्त प्राप्त हो जाता है। इससे अल्प–वित्तीयन की समस्या भी उत्पन्न होती है।

4. कृषि को अपर्याप्त ऋण : यद्यपि व्यापारिक बैंकों ने कृषि क्षेत्रक व उससे सम्बद्ध क्रियाओं की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने में शानदार प्रयत्न किये हैं, फिर भी और अधिक प्रयत्नों की जरूरत है। व्यापारिक बैंकों द्वारा कृषि क्षेत्र को दी गयी कुल सहायता उनकी आवश्यकताओं का 10% भी नहीं है।

5. ग्रामीण क्षेत्रों में अपर्याप्त बैंकिंग सुविधाएँ : ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सेवाओं की आवश्यकता की तुलना में इन क्षेत्रों में बैंकों की संख्या अपर्याप्त है। बैंक 5% गाँवों में ही हैं, यह तथ्य इस बात की पुष्टि करता है।

6. क्षेत्रीय असंतुलन : यद्यपि व्यापारिक बैंकों ने अपनी शाखाएँ देश के विभिन्न भागों में फैलायी हैं लेकिन इनका पूरे देश में समान वितरण नहीं है। भारतीय रिजर्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार लगभग आधी शाखाएँ दक्षिण और पश्चिम क्षेत्रों में ही हैं। असम, जम्मू और कश्मीर, मनीपुर, नागालैंड, उड़ीसा, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल जैसे राज्यों को अल्प बैंकिंग सुविधा वाले क्षेत्र कहा जा सकता है।

7. कम लाभकारिता : प्राथमिकता क्षेत्रों को वित्त प्रदान करने, ग्रामीण व बिना बैंकिंग सुविधा वाले तथा पिछड़े क्षेत्रों में शाखाएँ खोलने, कमजोर वर्गों को कम ब्याज दर पर ऋण देने तथा वेतन व संगठन की लागत में वृद्धि के कारण भारत में अधिकांश व्यापारिक बैंकों की । लाभकारिता दर कम हुई है। इसके अन्य कारण हैं, लागतों में वृद्धि, अकुशलता, नौकरशाही . दृष्टिकोण, प्रभावी लागत नियंत्रण का अभाव, वैधानिक तरलता अनुपात और नकद रिजर्व अनुपात आदि में वृद्धि।

8. कम कार्यकुशलता : बैंकों के राष्ट्रीयकरण से बैंकिंग उद्योग में सार्वजनिक क्षेत्र के सभी दोष आ गये हैं, जैसे कि मैनेजरों का नौकरशाही दृ ष्टिकोण, पहलशक्ति का अभाव, लाल फीताशाही, अनावश्यक विलंब, प्रतिबद्धता और जिम्मेवारी का अभाव तथा काम के प्रति उदासीनता आदि। इन सबके कारण बैंकों की कार्यकुशलता घटती है।

9. राजनीतिक दबाव : बैंकों के राष्ट्रीयकरण से इनके प्रत्येक स्तर पर राजनीतिक हस्तक्षेप होता है और राजनीतिक दबाव डाला जाता है। राजनीतिक दबाव के कारणऐसे व्यक्तियों को ऋण व अग्रिम दिये जाते हैं जो इनके योग्य नहीं हैं।

10. उदार साख नीति की समस्याएँ : कमजोर वर्गों और कृषि क्षेत्र आदि की साख आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये एक उदार साख नीति आवश्यक तो है लेकिन इससे बैंक कोष और अन्त में जमाकर्ताओं का पैसा असुरक्षित हो जाता है। इस नीति के कारण कोषों की वसूली भी ठीक से नहीं हो पाती और बैंक के कोषों का चक्रीय प्रवाह नहीं होता।

11. अनुचित प्रतिस्पर्धा : बहुत से राष्ट्रीयकृत बैंकों की एक ही क्षेत्र में शाखाएँ हैं। इसलिये प्रत्येक को जमाएँ एकत्र करने में अनुचित व अनावश्यक प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है।

12. लघु उद्योग के वित्त प्रबन्ध में समस्याएँ : लघु औद्योगिक इकाइयों के साथ जुड़ी हुई बहुत – पुरानी समस्या इन इकाइयों की बढ़ती हुई बीमारी है जिसके कारण इनके शेष भुगतान बढ़ चले जाते हैं और वसूली कम हो जाती है।

बोध प्रश्न 'ग'

1. राष्ट्रीयकरण के बाद की अवधि में व्यापारिक बैंक जिस क्षेत्र में डगमगाए हैं वे हैं :

   (i) निर्यात वित्त

   (ii) कृषि अग्रिम

   (iii) बड़े पैमाने के उद्योग

   (iv) जमा एकत्रीकरण

2. व्यापारिक बैंकों की निम्नलिखित में से सबसे गंभीर समस्या कौन–सी है?

   (i) कर्मचारियों की कमी

   (ii) कोषों की सुरक्षा

   (iii) शाखा वितरण में क्षेत्रीय असंतुलन

   (iv) कम कार्यकुशलता

3 निम्नलिखित में से बैंकों के राष्ट्रीयकरण के.उद्देश्य कौन–से हैं?

   (i) व्यापार को अधिकतम साख सुविधाएँ प्रदान करना

   (ii) अल्प बैंकिंग और बिना बैंकिंग क्षेत्रों को पर्याप्त साख सुविधाएँ सुनिश्चित करना

   (iii) नये उद्यमियों के आगे आने में सहायता करना

   (iv) ग्राहकों को संतुष्ट करना।

6.7 सारांश

भारत में बैंकिंग संरचना केन्द्रीय बैंकों, व्यापारिक बैंकों, विकास बैंकों, सहकारी बैंकों, निर्यात–आयात बैंकों, ग्रामीण बैंकों और आवास बैंकों से बनी है।

स्टेट बैंक ऑफ इंडिया भारत का सबसे बड़ा और प्रमुख व्यापारिक बैंक है। यह मुख्यतया सामाजिक आवश्यकताओं की ओर अभिमुख है जैसे कि शाखा विस्तार, जमा संग्रहण, कृषि, उद्योग और निर्यात को अग्रिम, ग्रामीण क्षेत्रों, लघु उद्योगों व कमजोर वर्गों के लिये विशेष वित्तीय योजनाएँ। यद्यपि स्टेट बैंक ऑफ इंडिया ने इन आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है फिर भी प्रभावी होने के लिये इसे अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

बैंकिंग को देश की सामाजिक व विकासात्मक आवश्यकताओं की ओर अभिमुख करने के लिये और बड़े उद्योगपतियों के नियंत्रण को कम करने के लिये भारत सरकार ने 19 जुलाई, 1969 को 14 प्रमुख व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया। इस श्रेणी में 15 अप्रैल, 1980 को 6 और बैंक जोड़ दिये गये। इसमें कोई संदेह नहीं कि राष्ट्रीयकृत बैंकों ने अपेक्षित कार्य किया है। शाखाओं का महत्वपूर्ण विस्तार हुआ है और जमा संग्रहण तथा अग्रिम में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। लघु उद्योग, कृषि व इससे सम्बद्ध क्रियाओं, ग्रामीण क्षेत्रक तथा आर्थिक रूप से कमजोर

वर्गों को दिये गये ऋणों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। तथापि इन बैंकों को बहुत–सी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, जैसे कि राजनीतिक दबाव, ऐसे क्षेत्रों में शाखाएँ खोलना जहाँ आधारिक संरचना का अभाव है, कम लाभकारिता व कुशलता और अनुचित प्रतिस्पर्धा। समितियों की सिफारिषों पर राष्ट्रीयकृत बैंकों में भी अनेक व्यापक सुधार परिलक्षित हुए जैसे : राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा गुणवत्तापूर्ण ग्राहक सेवा देने का प्रयास किया गया, राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा पूंजी पर्याप्तता मानदण्ड प्रारंभ किया गया, राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा कम्प्यूटरीकृत प्रणाली विकसित की गई, राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा अपनी कार्यषैली को पूर्ण ग्राहकोन्मुखी बनाया गया, राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा परिचालन लागत कम करने की कोशिश की गई, राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा आय निर्धारण एवं गैर–निष्पादक आस्तियो का वर्गीकरण किया गया, राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सूचना–प्रौद्योगिकी विकसित की गई, राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा ऋण वसूली ट्रिब्यूनलों की स्थापना की गई, राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा बैंकिंग लोकपाल योजना लागू की गई, राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा बैंकर्स फेयर प्रैक्टिस कोड बनाया गया है आदि।

6.8 उपयोगी शब्दावली

- **व्यापारिक बैंक** (Commercial Banks) : वे बैंक जो अल्पावधि ऋण व अग्रिम प्रदान करते हैं।
- **सहकारी बैंक** (Cooperative Banks) : वह बैंकिंग संस्था जो सहकारिता के नियमों के आधार पर स्थापित की जाती है और चलायी जाती है।
- **विकास बैंक** (Development Banks) : वे बैंक जो मध्यावधि व दीर्घावधि ऋण प्रदान करते हैं।
- **निर्यात–आयात बैंक** (Export & Import Banks) : वे बैंक जो केवल विदेशी व्यापार के लिये वित्त प्रदान करते हैं।
- **अग्रणी बैंक योजना** (Lead Bank Scheme) : बैंकों को विशेष जिलों को गहन विकास के लिये अपनाना चाहिये।

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1. केन्द्रीय बैंकिंग, विकास बैंकिंग, व्यापारिक बैंकिंग, ग्रामीण बैंकिंग, निर्यात–आयात बैंकिंग, आवास बैंकिंग और सहकारी बैंकिंग।

2 i) भारतीय रिजर्व बैंक, ii) शाखा, iii) उद्योग, iv) सामाजिक

3 i) सही, ii) गलत, iii) सही, iv) सही

ख 3 i) गलत, ii) सही, iii) गलत, iv) सही

4 i) 1969, ii) 6, iii) असंतुलन

ग 1 ii) और iii)

2 iii) और iv)

3 ii) और iii)

6.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 भारत में बैंकिंग संरचना स्पष्ट कीजियें।

प्रश्न–2 भारत में व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष और विपक्ष में तर्क दीजिये।

प्रश्न–3 बैंकों के राष्ट्रीयकरण के मुख्य उद्देश्य क्या थे?

प्रश्न–4 भारत में राष्ट्रीयकृत व्यापारिक बैंक किस हद तक राष्ट्रीयकरण के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हैं?

प्रश्न–5 स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना, संरचना और कार्यों का विवेचन कीजिये।

प्रश्न–6 स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के विकास और उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिये।

प्रश्न–7 1969 के पश्चात् भारत में बैंकिग विकास की स्थिति की समीक्षा कीजिए?

प्रश्न–8 भारत में व्यापारिक बैंक के विकास का विवेचन कीजिये।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)
- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकषन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)
- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीष कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, SBPD पब्लिकेषन 2016)
- प्रो0 षिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेषन 2017)
- एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
- के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
- शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016)
- एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

****

इकाई–7 केन्द्रीय बैंकिंग

इकाई की रूपरेखा

7.0. उद्देश्य

7.1. प्रस्तावना

7.2. केन्द्रीय बैंक क्या है?

7.3. केंद्रीय बैंकिंग के सिद्धान्त

7.4. केन्द्रीय बैंक और व्यापारिक बैंक में अन्तर

7.5. केन्द्रीय बैंक के कार्य

- **7.5.1** परम्परागत कार्य
- **7.5.2** प्रवर्तन कार्य

7.6. मुद्रा पूर्ति और साख के नियंत्रक के रूप में केन्द्रीय बैंक की भूमिका

7.7. साख नियंत्रण

- **7.5.1** मात्रात्मक विधियाँ
- **7.5.2** गुणात्मक विधियाँ

7.8. सारांश

7.9. उपयोगी शब्दावली

7.10. बोध प्रश्नों के उत्तर

7.11. महत्वपूर्ण प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- ❖ केन्द्रीय बैंक की परिभाषा दे सकें,
- ❖ केंद्रीय बैंकिंग के सिद्धान्त बता सकें,
- ❖ केन्द्रीय बैंक और व्यापारिक बैंक में मुख्य अन्तर बता सकें,
- ❖ केन्द्रीय बैंक द्वारा किये जाने वाले विभिन्न कार्यों की सूची बना सकें तथा
- ❖ केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रयोग किये जाने वाले साख नियंत्रण के विभिन्न उपायों की क्षमता बता सकें।

7.1 प्रस्तावना

भारतीय रिजर्व बैंक हमारे देश का केन्द्रीय बैंक है। देश की बैंकिंग प्रणाली के नियमन एवं उसे निर्देशन प्रदान करने वाले बैंक, केन्द्रीय बैंक कहलाते हैं। केन्द्रीय बैंक किसी देश की मौद्रिक व वित्तीय प्रणाली की शिखर संस्था है। इसकी देश में व्यापारिक बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थाओं के संगठन में उन्हें चलाने में, उनका पर्यवेक्षण करने में, और उन्हें नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मौद्रिक व साख नीतियों की रूपरेखा बनाना व उनका संचालन करना इसकी विशेष जिम्मेवारियाँ हैं। अतः केन्द्रीय बैंक आधुनिक अर्थव्यवस्था के संतुलित विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

बैंकिंग प्रणाली कुशलतापूर्वक कार्य केवल तभी कर सकती है जब इसकी क्रियाओं को निर्देशित और समन्वित करने के लिये शिखर पर एक संस्था हो। ऐसा न होने पर पूरी बैंकिंग प्रणाली केवल असम्बद्ध इकाइयों का एक समूह होगी जिसमें प्रत्येक अपनी स्वतंत्र नीति का अनुसरण करेगी जो बहुधा परस्पर विरोधी होंगी। सरकार उस व्यापक नीति निर्धारण में, जिसके अन्तर्गत बैंक को कार्य करना होता है, सक्रिय भाग लेकर, प्रत्यक्ष रूप से बैंक की कार्यप्रणाली और–उसकी नीतियों को प्रभावित करने का प्रयत्न करती है। सरकार बैंक के निदेशकों, गवर्नर और अन्य उच्च अधिकारियों की नियक्ति के द्वारा भी अप्रत्यक्ष रूप से इसे प्रभावित कर सकती है।

इस इकाई में आप केन्द्रीय बैंक के अर्थ, उसके कार्यों, इसमें और व्यापारिक बैंकों में अन्तर और केन्द्रीय बैंक द्वारा साख नियंत्रण के लिये प्रयोग किये जाने वाले उपायों तथा उनकी क्षमता के बारे में पढ़ेंगे।

7.2 केन्द्रीय बैंक क्या है?

सभी विकसित देशों और अधिकांश विकासशील देशों में केन्द्रीय बैंक हैं। भारत का केन्द्रीय बैंक, भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना 1 अप्रैल, 1935 को भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 के अन्तर्गत की गयी। बैंक ऑफ इंग्लैंड दुनिया का सबसे पुराना केन्द्रीय बैंक है। इसकी स्थापना एक संयुक्त पूँजी कम्पनी के रूप में पार्लियामेंट के अधिनियम द्वारा 1694 में हुई थी। अमेरिका में फेडरेल रिजर्व बैंक 1913 में स्थापित किया गया।

केन्द्रीय बैंक सामान्य जनता के साथ व्यवहार नहीं करते हैं। ये प्रमुखतः सरकारी बैंकर के रूप मे कार्य करते हैं। ये सभी बैंकों के जमा खातों का रिकार्ड रखते हैं और आवश्यकता पड़ने पर इन बैंकों को धन प्रदान करते हैं। केन्द्रीय बैंक अन्य बैंकों को निर्देशन प्रदान करता है तथा जब कभी उनकी कोई समस्या होती है, तो उसका समाधन भी निकालता है। अतः इसे बैंकर्स बैंक भी कहते हैं।

प्रत्येक देश की मौद्रिक व बैंकिंग संरचना में केन्द्रीय बैंक का केन्द्रीय (pivotal) स्थान होता है। यह उच्चतम मौद्रिक संस्था है और देश की वित्तीय प्रणाली का अग्रणी है। तथापि, इसकी कोई सही और परिशुद्ध परिभाषा देना कठिन है। केन्द्रीय बैंक की परिभाषा इसके कार्यों के आधार पर ही दी जाती है।

क्योंकि अलग–अलग देशों में और अलग–अलग समय पर इसके कार्य भी। अलग–अलग रहे हैं इसलिये केन्द्रीय बैंक की परिभाषा भी अलग–अलग हैं। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अलग–अलग परिभाषाएँ दी हैं।

डी.सी. रोवन के अनुसार, केन्द्रीय बैंक, ***''एक संस्थान है, जो अक्सर राज्य के स्वामित्व में नहीं होता है, जिसमें सरकार की मौद्रिक नीति का संचालन करने का अधिभावी कर्तव्य होता है।''***

आर.पी. केन्ट के अनुसार, केन्द्रीय बैंक, ***''एक ऐसी संस्था है जिस पर सामान्य सार्वजनिक कल्याण के हित में मुद्रा की मात्रा के विस्तार और संकुचने की व्यवस्था करने की जिम्मेवारी डाली गयी हो।''***

बैंक फॉर इंटरनेशनल सेटलमैंट्स के अधिनियमों में केन्द्रीय बैंक की यों परिभाषा दी गयी हैं, ***''किसी देश का वह बैंक जिसे देश में मुद्रा और साख की मात्रा को नियमित करने का कार्य सौंपा गया हो।''***

किस्च और एलकिन के अनुसार केन्द्रीय बैंक ***''वह बैंक है जिसका मुख्य कर्तव्य मौद्रिक मान की स्थिरता बनाये रखना है।''***

डब्ल्यू.ए. शाह की राय में, ***''केन्द्रीय बैंक वह बैंक है जो साख का नियंत्रण करता है।''*** जबकी हाट्रे का मत है कि ***''केन्द्रीय बैंक अन्तिम ऋणदाता है।''***

इन सभी परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने जो परिभाषा दी हैं वे इस बात पर आधारित हैं कि उन्होंने इसके विभिन्न कार्यों, जैसे साख नियंत्रण, अंतिम ऋणदाता, नोटों को जारी करने, मुद्रा और साख नियमन और सार्वजनिक कल्याण के हित में मुद्रा के मूल्य की स्थिरता को अधिक महत्वपूर्ण माना है। ***अतः हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि केन्द्रीय बैंक किसी देश की यह उच्चतम वित्तीय संस्था है जिसका मुख्य कार्य मौद्रिक और बैंकिंग संरचना को नियमित, समन्वित च संघटित करना तथा उसका पथ–प्रदर्शन करना है जिससे कि राष्ट्रीय और सार्वजनिक कल्याण के निश्चित अपेक्षित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके***।

7.3 केंद्रीय बैंकिंग के सिद्धान्त

देश के केंद्रीय बैंक की देश की बैंकिंग संरचना में विशेष स्थान मिलता है। जिन सिद्धांतों पर केंद्रीय बैंक चलाया जाता है, वे सामान्य बैंकिंग सिद्धांतों से भिन्न होते हैं। लाभ के लिए एक सामान्य बैंक चलाया जाता है जबकि एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना के उदेश्य अन्य बैंकों से पूर्णता भिन्न होते है। एक केंद्रीय बैंक मुख्य रूप से देश की वित्तीय और आर्थिक स्थिरता को बढ़ावा देने के लिए निर्मित किया जाता है।

डी. कोक के कथन के अनुसार, केन्द्रीय बैंक को केवल सार्वजनिक हित में और देश के कल्याण के संबंध में कार्य करना चाहिए। इस प्रकार, एक केंद्रीय बैंक के लिए लाभ अर्जित करना एक गौण विचार है।

इस प्रकार केंद्रीय बैंक अन्य बैंकों के प्रतिद्वंद्वी के रूप में कार्य नहीं करता है। वास्तव में, यह देश का मौद्रिक प्राधिकरण है और इसे आर्थिक स्थिरता और विकास को बढ़ावा देने के लिए इस तरह से कार्य करना है।

अतः एक केंद्रीय बैंक के सिद्धान्त अन्य बैंकों से भिन्न एवं अद्वितीय होते हैं। इसकी कार्यप्रणाली निम्नलिखित सिधान्तों पर आधारित होती हैः–

1. मौद्रिक एवं वित्तीय स्थिरता का सिद्धान्त : केंद्रीय बैंक की प्रत्मिकता एवं मुख्य प्रयोजन, मौद्रिक और वित्तीय स्थिरता को प्रोत्साहन देना और एक सक्षम तथा समावेशी वित्तीय प्रणाली का विकास सुनिश्चित करना होता है। मौद्रिक स्थिरता, एक सफल मौद्रिक नीति का परिणाम होता है। मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य वृद्धि के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए मूल्य स्थिरता बनाए रखना है। मौद्रिक स्थिरता होने पर ही आर्थिक स्थिरता प्राप्त की जा सकती है। यदि मौद्रिक स्थिरता केन्द्रीय बैंक द्वारा बनाये रखी जाये तो रुपया के आंतरिक और बाह्य मूल्य में विश्वास बढेगा और समष्टि आर्थिक स्थिरता में योगदान मिलेगा।

2. राष्ट्रिय कल्याण का सिद्धान्त : केंद्रीय बैंक अपने कार्यों और नीतियों में सार्वजनिक हित एवं राष्ट्रीय हित को बढ़ावा देने का प्रयास करता है। केंद्रीय बैंक इस दिशा में कई बार अपने अन्य स्थापित उदेश्यों की भी अनदेखी करता है। क्योंकि ऐसा किया जाने पर भी राष्ट्रीय हित की सुरक्षा की जा सकती है। अतः जहाँ अन्य बैंक अपने निर्धारित हितों की प्राप्ति हेतु प्रयासरत एवं अद्दिग रहते है वाना देश का केंद्रीय बैंक राष्ट्रहित एवं जनहित निर्णयों का पालन करता है।

3. केंद्रीय बैंक की स्वतंत्रता और स्वायत्तता का सिद्धान्त : केंद्रीय बैंकों के लिए अपनी नीतियों के सर्वोत्तम होने का तर्क देने की आवश्यक होता है। इसका सीधा अर्थ ये निकलता है कि केंद्रीय बैंक के नीति निर्माण में राजनीतिक या अन्य किसी प्रकार का हस्तक्षेप उसकी नीतियों एवं वृद्धि में बाधक होती है। केंद्रीय बैंक खुलेपन और जवाबदेही के माध्यम से विचारों की सत्यनिष्ठा और स्वतंत्रता के उच्च मानक बनाए रखने का प्रयास करता। स्थायी वृद्धि को बनाए रखने के लिए केंद्रीय बैंक की स्वतंत्रता आवश्यक है।

4. राष्ट्रिय साख निर्माण का सिद्धान्त : केंद्रीय बैंक न सिर्फ नितिनिर्धारक होते बल्कि जरुरत पड़ने पर व्यापारिक बैंकों एवं राष्ट्र की साख निर्मित करते है। व्यापारिक बैंकों को ऋण प्रदान कर, सरकार की ऋण आवश्कता को पूरा करना भी केन्द्रीय बैंक के उकृष्ट कार्यों में आता है।

7.4 केन्द्रीय बैंक और व्यापारिक बैंकों में अन्तर

केन्द्रीय बैंक की क्रियाओं के क्षेत्र को जानना और केन्द्रीय बैंक तथा व्यापारिक बैंकों के कार्यों और उद्देश्यों में भेद करना उपयोगी होगा। इन दोनों के बीच कुछ प्रमुख भेद निम्नलिखित हैं :

1. उदेश्य : व्यापारिक बैंकों का मुख्य उद्देश्य अपने अंशधारियों के लिये अधिकतम लाभ अर्जित करना है लेकिन केन्द्रीय बैंक का मुख्य उद्देश्य देश का आर्थिक हित है, लाभ को अधिकतम करना नहीं। केन्द्रीय बैंक बैंकिंग प्रणाली को नियंत्रित करने का प्रयत्न करता है और सरकार की आर्थिक नीतियों का समर्थन करता है।

2. निर्माण स्थिति : केन्द्रीय बैंक साधारणतया सरकार का एक अंग होता है। इसलिये इसके कार्यों को सरकार के अन्य विभागों के कार्यों के साथ भली भाँति समन्वित किया जाता है, खासतौर से वित्त, उद्योग और विदेशी व्यापार विभागों के कार्यों के साथ। लेकिन व्यापारिक बैंक जब तक राष्ट्रीयकृत न किये गये हों, तब तक वे संयुक्त पूँजी बैंक होते हैं, जिन पर निजी स्वामित्व होता है और जिनकी निजी व्यवस्था की जाती है।

3. प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष भागीदारी : एक वास्तविक केन्द्रीय बैंक से अपेक्षा की जाती है कि वह ऐसे बैंकिंग लेन–देन नहीं करेगी जो व्यापारिक बैंकों द्वारा किये जाते हैं उदाहरण के लिए, जनता से जमाएँ स्वीकार करना और नियमित व्यापारिक ग्राहकों की छूट या अग्रिम से सहायता करना। ऐसी परिस्थितियों को छोड़कर जिनमें सामान्य जनता के साथ प्रत्यक्ष लेन–देन नितान्त आवश्यक हो जाए, यह बैंक साधारणतया जनता के साथ लेन–देन केवल अप्रत्यक्ष रूप से व्यापारिक बैंकों और मुद्रा बाजार के माध्यम से करता है।

4. अधिकार क्षेत्र : केन्द्रीय बैंक के पास करेंसी नोटों के निर्गमन और देश की व्यापारिक बैंकिंग प्रणाली की, कार्यप्रणाली का नियमन करने का एकाधिकार होता है। व्यापारिक बैंकों के पास ऐसा कोई अधिकार नहीं होता। उन्हें तो केन्द्रीय बैंक के पर्यवेक्षण के अन्तर्गत और उसके नीति ढांचे में कार्य करना होता है।

5. महत्व : साधारणतया एक देश में कई व्यापारिक बैंक होते हैं और केवल एक केन्द्रीय बैंक होता है। अमेरिका ही एक ऐसा देश है जहाँ 12 फेडरल रिजर्व बैंकों का एक समूह है जो केन्द्रीय बैंक के रूप में कार्य करता है।

बोध प्रश्न 'क'

1. बताइये निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :
   - **(i)** व्यापारिक बैंक एक शिखर बैंकिंग संस्था है।
   - **(ii)** बैंक ऑफ इंग्लैंड 1894 में स्थापित किया गया।
   - **(iii)** केन्द्रीय बैंक को सामान्यतया देश में मुद्रा और साख की मात्रा के नियमन की जिम्मेवारी दी जाती है।
   - **(iv)** केन्द्रीय बैंक का प्रमुख उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना होता है।
   - **(v)** केन्द्रीय बैंक के पास नोट निर्गमन का एकाधिकार होता है।
2. रिक्त स्थानों को भरिये :
   - **(i)** साधारणतया देश में कई . . . . बैंक होते हैं लेकिन . . . . बैंक एक ही होता है।
   - **(ii)** बैंक बैंकिंग प्रणाली को नियंत्रित करने का प्रयत्न करता है।
   - **(iii)** मौद्रिक और साख नीतियों की रूपरेखा बनाना और उनका संचालन करना . .. . बैंक की विशेष जिम्मेवारियाँ हैं।

7.5 केन्द्रीय बैंक के कार्य (*Functions of a Central Bank*)

केन्द्रीय बैंक के अधिकार और कार्य क्षेत्र के बारे में कोई सर्वसम्मत नहीं हैं। इनमें समय–समय पर परिवर्तन हुए हैं और विभिन्न देशों में भी इनमें अन्तर हैं। तथापि हमें केन्द्रीय बैंक के कार्यों को मोटे तौर से दो व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं :

केंद्रीय बैंक के कार्य

परम्परागत कार्य

1. नोटों का निर्गम करना (Issue of Currency): नोट जारी करना, उसका विनिमय करना अथवा परिचालन के योग्य नहीं रहने पर करेंसी और सिक्कों को विमुद्रीकरण या नष्ट करना केंद्रीय बैंक का प्रमुख कार्य है।
2. राज्य का बैंक (Banker to Government): सरकार के कोषो को संरक्षक के रूप में कार्य करना, सरकार के लिए व्यापारी बैंक की भूमिका अदा करना, केन्द्रीय बैंक का कार्य है।
3. बैंकरों का बैंक की भूमिका (Banker's Bank and Supervisor): केन्द्रीय बैंक, अन्य बैंको के नकद भंडार का संरक्षक होता है, केंद्रीय बैंक अंतिम ऋणदाता के रूप में कार्य करता है तथा केंद्रीय निकासी एवं स्थानान्तरण का एक मात्र संस्थान होता है।
4. स्वर्ण एवं विदेशी मुद्रा कोषों का संरक्षक (Custodian of Gold and Foreign Exchange Reserve): केंद्रीय बैंक का एक अन्य कर्तव्य यह देखना है कि विदेशी विनिमय बाजार में देश की मुद्रा का बाहरी मूल्य बनाए रखा जाये। साथ ही स्वर्ण एवं विदेशी मुद्रा कोषों का संरक्षक के रूप में भी अपनी सेवा प्रदान करता है।
5. साख एवं धन आपूर्ति नियंत्रक (Controller of Credit and Money Supply): केंद्रीय बैंक अपनी मौद्रिक नीति के माध्यम से क्रेडिट और धन आपूर्ति को नियंत्रित करता है जिसमें दो भाग होते हैं – मुद्रा और क्रेडिट।
6. केंद्रीय समाशोधन, निपटारे और अंतरण का बैंक (Bank of Central Clearance, Settlements and Transfers): समाशोधन किसी भी केंद्रीय बैंक का एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। ये सभी बैंकों के चेकों का समाशोधन का एक मात्र कर्त्ता होता है।
7. अंतिम ऋणदाता (Lender of Last Resort): जब वाणिज्यिक बैंकों तरलता संकट के समय अपने धन को पूरक करने के लिए सभी संसाधनों को समाप्त कर देते है, तो वे केंद्रीय बैंक को अंतिम सहायक के रूप में देखते हैं।

प्रवर्तन कार्य

1. कृषि वित् संस्थाओं का निर्माण एवं विकास
2. उद्योग वित् संस्थाओं का निर्माण एवं विकास
3. मुद्रा एवं पूंजी बाजार का विकास
4. अन्य कार्य

7.5.1 परम्परागत कार्य

डी. कॉक के अनुसार एक केन्द्रीय बैंक को आवश्यक रूप में निम्नलिखित कार्य, जिन्हें अब परम्परागत कार्य समझा जाता है, करने चाहिये :

(1) नोटों का निर्गम करना : एक आधुनिक केन्द्रीय बैंक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वह करेंसी नोटों का निर्गिमन करें। नोटों के निर्गमन पर इसका अधिकार है। यह कार्य इतना महत्वपूर्ण है कि 20वीं शताब्दी के शुरु तक केन्द्रीय बैंक को निर्गमन के बैंक के रूप में जाना जाना था। बैंकिंग के प्रारम्भ के दिनों में व्यापारिक बैंकों को भी नोट निर्गमन को अधिकार हुआ करता था। लेकिन यह प्रथा बाद में बन्द कर दी गयी और करेंसी नोटों के निर्गमन का अधिकार निम्नलिखिन कारणों से केन्द्रीय बैंक को सौंप दिया गया। आइयें इन्हें क्रमषः समझने का प्रयास करें :–

(i) यह नोट निर्गमन में एकरूपता लाना है, जिससे भ्रम दूर होना है जो व्यापार व उद्योग के लिये बहुत महत्वपूर्ण है।

(ii) यह अर्थव्यवस्था में मुद्रा की उचित पूर्ति सुनिश्चित करता है और अलग–अलग बैंकों द्वारा अति–निर्गमन की संभावना को दूर करता है।

(iii) यह व्यापारिक बैंकों द्वारा अनुचित साख विस्तार पर नियंत्रण की प्रकृति उत्पन्न करता है।

(iv) यह नोट निर्गमन में बेहतर लोच सुनिश्चित करता है। व्यापारिक बैंक लापरवाही में मुद्रा का विस्तार कर सकते हैं। माँगकार भी अपने राजस्व को करेंसी नोटों के अति–निर्गमन द्वारा बढ़ाने के लिये आकर्षित हो सकती है, जिससे अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति हो सकती है।

अतः एकरूपताः सुरक्षा और लोच के लिये आवश्यक है कि नोट निर्गमन का एकाधिकार केन्द्रीय बैंक के पास ही होना चाहिए।

(2) राज्य का बैंक : केन्द्रीय बैंक सरकार के कोषों के संरक्षक के रूप में कार्य करता है। सरकार के बैंकर के रूप में यह सरकार की ओर से जमाएँ स्वीकार करता है और सरकारी विभागों और सरकारी उद्यमों के बैंकिंग खाते रखता है। यह करों के संग्रहण की प्रत्याशा में या सार्वजनिक ऋण की प्रत्याशा में सरकार को अल्पावधि ऋण देता है। यह मंदी, युद्ध या किसी अन्य राष्ट्रीय आपत्काल में असाधारण अग्रिम भी देता है। सरकार के एजेंट के रूप में, यह सरकार की ओर से उन लेन–देनों को करता है जिनमें . विदेशी मुद्राओं का क्रय–विक्रय, राष्ट्रीय ऋणं का प्रबन्ध और सरकारी प्रतिभतियों का खले बाजार में क्रय–विक्रय शामिल होते हैं। वित्तीय सलाहकार के रूप में केन्द्रीय बैंक आर्थिक नीति से संबंधित मामलों पर सरकार को सलाह देता है। उदाहरण के लिये, भारतीय रिजर्व बैंक कीमत स्थिरता, राष्ट्रीय ऋण के निधीयन, घाटे व वित्त व्यवस्था की राशि जैसी विभिन्न आर्थिक नीतियों के मामले में भारत सरकार के पिछले दो दशकों से सलाह देता रहा है।

(3) बैंकरों का बैंक की भूमिका : केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के बैंकर के रूप में कार्य करता है। प्रथा या कानून के द्वारा सभी व्यापारिक बैंकों को अपने नकदी कोषों का एक निश्चित प्रतिशत केन्द्रीय बैंक के पास रखना होता है। वास्तव में यह व्यवस्था कई कारणों से बैंकिंग प्रणाली के लिये उपयोगी है। (1)

यह केन्द्रीय बैंक को इस योग्य बनाती है कि वह उन सदस्य बैंकों को अतिरिक्त कोष प्रदान कर सकें जो अस्थायी वित्तीय कठिनाई में हैं। (2) यह अनि तरल और अति लोचदार साख मंरचना को आधार बनाती है। (3) यह व्यापारिक बैंकों द्वारा साख निमाण पर केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रभावी नियंत्रण रखने में उसकी सहायता करनी है। (4) यह जनता के बैंकिंग प्रणाली में अधिक विश्वास को सुनिश्चित करती है और केन्द्रीय बैंक द्वारा निर्गमित नोटों को प्रांता प्रदान करती है। (5) यह वित्तीय संकट या मामान्य आपत्काल के समय कोषों का अनुकूलतम उपयोग करने में सहायता करती है।

(4) स्वर्ण एवं विदेशी मुद्रा कोषों का संरक्षक : आज दुनियां के अधिकांश केन्द्रीय बैंक देश के स्वर्ण व विदेशी मुद्रा कोषों के संरक्षक के रूप में कार्य करते हैं। द्वितीय विश्व युद्ध से पहले भी केन्द्रीय बैंक को कागजी मुद्रा के निर्गमन के लिये स्वर्ण व विदेशी विनिमय के कोष रखने होते थे और यह कागजी मुद्रा उन दिनों संपरिवर्तनीय होती थी। इस अधिकार से केन्द्रीय बैंक विदेशी मुद्रा कोषों पर उचित । नियंत्रण रख सकता है जो देश की अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की स्थिति को एक सरक्षित स्तर पर रखने के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त, इससे केन्द्रीय बैंक को विदेशी मुद्राओं के रूप में देश की मुद्रा के मूल्य को स्थिर बनाने में सहायता मिलती है। केन्द्रीय बैंक विदेशी । विनिमय बाजार में अपने देश की मुद्रा उस समय खरीद सकता है जब इसका मूल्य घट रहा हो। इसी प्रकार वह विदेशी विनिमय बाजार में देश की मुद्रा को उस समय बेच सकता है। जब इराका मूल्य बढ़ रहा हो स्वर्ण व विदेशी विनिमय कोष होने से देश को अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय लेन–देन करने में बहुत शक्ति मिलती है क्योंकि स्वर्ण भगतान का अन्तर्राष्ट्रीय माध्यम है।

(5) साख एवं धन आपूर्ति नियंत्रक : आजकल व्यापारिक बैंकों की साख क्रियाओं का नियंत्रण केन्द्रीय बैंक को शायद सबसे महत्वपूर्ण कार्य बन गया है। इसका कारण यह है कि साख, मुद्रा से भी अधिक महत्वपूर्ण बन गयी है हालाँकि पूरी साख प्रणाली का आधार मुद्रा ही है। केन्द्रीय बैंक द्वारा साख नियंत्रण के महत्व पर जोर देते हुए एम.एच.डी. काक ने कहा है कि इस कार्य के द्वारा ही केन्द्रीय बैंक के अन्य सभी कार्य संगठित हो जाते हैं और सामान्य उद्देश्य को पूरा करते हैं। डब्ल्यू.ए. शाह साख नियंत्रण को केन्द्रीय बैंक का प्रमुख कार्य मानते हैं क्योंकि सास के विस्तार या संकुचन से अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति या अव–स्फीति की स्थितियाँ पैदा होती हैं।

साख की मात्रा में अनुचित उतार–चढ़ाव मुद्रा की क्रय शक्ति में बहुत उतार–चढ़ाव पैदा करते हैं जिससे बहुत बड़ी सामाजिक और आर्थिक उथल–पुथल हो जाती है। अतः व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण क्रिया का नियमन और नियंत्रण करने के लिये किसी प्राधिकरण का होना बहुत महत्वपूर्ण है।

(6) केन्द्रीय समाशोधन,निपटारे और अन्तरण का बैंक : आजकल समाशोधन कार्य केन्द्रीय बैंक का एक आवश्यक कार्य माना जाता है। क्योंकि केन्द्रीय बैंक सभी व्यापारिक बैंकों के नकद शेष रखता है, इसलिये। सदस्य बैंकों के लिये केन्द्रीय बैंक की पुस्तकों में एक दूसरे के दावों का समायोजन करना बहुत सरल है। समाशोधन, निपटारे और आपसी दावों के अन्तरण का यह कार्य बैंक ऑफ इंग्लैंड में 1854 में शुरू हुआ जिसे बाद में परी दुनियां में केन्द्रीय बैंक के सामान्य कार्य के रूप में स्वीकृति मिली। क्योंकि व्यापारिक बैंक अपने अधिशेष कोषों को केन्द्रीय बैंक के पास जमाओं के रूप में रखते हैं, इसलिये उनके आपसी

दावों का, केन्द्रीय बैंक में रखी गयी उनकी लेखा पुस्तकों में अंतरण प्रविष्टियाँ करके, समाशोधन और निपटारा करना सरल हो जाता। है। यदि प्रत्येक बैंक अन्य बैंकों के साथ अलग–अलग समाशोधन और निपटारे का कार्य करें तो यह कार्य बहुत कठिन और परिश्रमी हो जाएगा। इसके अतिरिक्त, ऐसी व्यवस्था से मुद्रा के प्रयोग में मितव्ययता होती है और वे उस असुविधा से बच जाते हैं. जो समाशोधन व निपटारे की व्यक्तिगत प्रणाली में होती है।

(7) अन्तिम श्रृंणदाता : शिखर बैंक होने के नाते केन्द्रीय बैंक को अन्तिम ऋणदाता के रूप में भी कार्य करना होता है। इसका यह अर्थ है कि व्यापारिक बैंकों की कठिनाई और वित्तीय आपातकाल के समय में केन्द्रीय बैंक उनकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सभी उचित मांगों को पूरा करने की जिम्मेवारी लेता है। 1873 में वाल्टर बैगहाट ने अपनी पुस्तक श्लाम्वाङ स्ट्रीट में केन्द्रीय बैंक के अन्तिम ऋणदाता के कार्य पर जोर दिया। इस पुस्तक में उन्होंने बैंक ऑफ इंग्लैंड का किसी भी योग्य ऋणी की संकट के समय सहायता करने की ओर ध्यान दिलाया। इस सुविधा के अभाव में व्यापारिक बैंकों को ऐसे. संकट का सामना करने के लिये अपने पास बहुत अधिक नकदी कोष रखना पड़ा।

7.5.2 प्रवर्तन कार्य

ऊपर बताये गये परम्परागत कार्यों के अतिरिक्त केन्द्रीय बैंक कई विकासात्मक और प्रवर्तन कार्य भी करता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद केन्द्रीय बैंक का कार्य क्षेत्र विस्तृत हुआ है, खासतौर से विकासशील देशों में जहाँ तीव्र आर्थिक विकास को ऊँची प्राथमिकता दी जाती है और यह अत्यावश्यक हो गया है। अतः, हमारे जैसे विकासशील देश में आर्थिक स्थिरता को बनाये रखने आर निम्नलिखित तरीकों से विकास प्रक्रिया में सहायता करने में केन्द्रीय बैंक की जिम्मेवारी हो गयी है ।

1. यह देश में कृषि वित्त की विशिष्ट संस्थाओं का निर्माण व विकास करने में सहायता करता है। भारत में, भारतीय रिजर्व बैंक ने सहकारी समितियों और कृषि सहकारी बैंकों की, उनकी अंशपंजी में अभिदान करके, स्थापना में सहायता की है जिससे कि किसानों को उचित समय और उचित ब्याज दरों पर वित्तीय सहायता मिले।

2. उद्योगों को पर्याप्त कोषों की सप्लाई सुनिश्चित करने के लिये, कुछ विकासशील देशों के केन्द्रीय बैंकों ने औद्योगिक वित्त की विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना करने में सक्रिय भाग लिया है। इसके अतिरिक्त इसने यह भी सुनिश्चित किया है कि लघु और बहुतं छोटे उद्योगों और निर्यातकों को अपेक्षाकृत कम ब्याज दरों पर पर्याप्त साख सुविधाएँ मिलें।

3. बैंकिंग संस्थाओं के पर्यवेक्षण और नियमन के अतिरिक्त विकासशील देशों के केन्द्रीय बैंकों ने बैंकिंग सविधाओं के विस्तार,खासतौर से ग्रामीण और अर्ध शहरी क्षेत्रों में, की जिम्मेवारी भी ली है क्योंकि यह विस्तार अर्थव्यवस्था की क्षेत्रीय संवृद्धि के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। 4) मुद्रा बाजार और पूँजी बाजार की अच्छी तरह व्यवस्थित व समन्वित संस्थाओं और एजेंसियों का प्रवर्तन अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय बैंक का एक महत्वपूर्ण कार्य बन गया है। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक मुद्रा बाजार और पूँजी बाजार के उन संस्थानात्मक अन्तरो को दूर . केरने का प्रयत्न करता है जो आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया में बाधा डालते हैं।

4. इन सब कार्यों के अतिरिक्त केन्द्रीय बैंक मुद्रा बाजार और पूंजी बाजार की प्रवृत्तियों को दर्शाने के लिये अर्थव्यवस्था के बैंकिंग व वित्तीय क्षेत्रों के बारे में

सांख्यिकी आंकड़ों का ।संग्रहण, संकलन और प्रकाशन करने का कार्य भी करता है। इसमें राज्य को विशेष स्थितियों, जैसे कि आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों का नियंत्रण करने, काले धन पर काबू पाने, के संबंध में उचित आर्थिक निर्णय लेने में सहायता मिलती है।

बोध प्रश्न 'ख'

1. केन्द्रीय बैंक के सात परम्परागत कार्य क्या हैं?

2. बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

   (i) करेंसी नोटों के निर्गमन का अधिकार केवल देश के केन्द्रीय बैंक के पास होता है।

   (ii) केन्द्रीय बैंक सरकार का विभाग है।

   (iii) केन्द्रीय बैंक के सभी कार्य साख नियंत्रण के कार्य के जरिये जुड़े हुए होते हैं।

   (iv) केन्द्रीय बैंक की ग्रामीण और अर्ध–शहरी क्षेत्रों में बैंकिंग का विस्तार करने की प्रवर्तन भूमिका भी है।

7.6 मुद्रा पूर्ति और साख नियंत्रक के रूप में केन्द्रीय बैंक की भमिका

देश का केन्द्रीय बैंक अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति और बैंक साख को ध्यान में रखता है। ऐसा करते हुए यह सुनिश्चित करने का प्रयत्न करता है कि किसी भी समय कुल मुद्रा पूर्ति और बैंक साख अर्थव्यवस्था के सर्वोत्तम हित में हैं। नियोजित अर्थव्यवस्थाओं में केन्द्रीय बैंकों को ऐसी मौद्रिक नीतियों का विकास करना होता है जो योजना की रूपरेखा और लक्ष्यों के साथ अच्छी तरह समन्वित हो सकती हों। आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में व्यवस्थत कागजी मुद्रा प्रणाली के आने से केन्द्रीय बैंक पर अतिरिक्त मुद्रा निर्गमन करते समय संयमन रखने की अतिरिक्त जिम्मेवारी पड़ गयी हैं। जब अर्थव्यवस्था में प्रबलं मद्रास्फीति प्रवृतियाँ हों तो अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति और . साख की व्यवस्था करने में केन्द्रीय बैंक की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। वास्तव में, केन्द्रीय बैंक वहुधा बहुत से प्रतिस्पर्धी लक्ष्यों को समाधान करने का प्रयत्न करता है। उदाहरण के लिये, आर्थिक क्रियाओं के सुचारू रूप से क्रियाशील होने और उनके विस्तार के लिये, मुद्दा पूर्ति और साख में वृद्धि आवश्यक हैं। लेकिन इसके साथ ही ऐसी वृद्धि में अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी प्रवृतियाँ उत्पन्न नहीं होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय बैंक द्वारा अनुसरण की जाने वाली मौद्रिक नीतियों को इस प्रकार बनाना होता है कि ये वितरक न्याय को प्रतिकल रूप में प्रभावित किये बिना ही आर्थिक संवृद्धि को तीव्र करें। अपने विविध लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये, केन्द्रीय बैंक मुद्रा पूर्ति और साख को नियंत्रित करने के लिये विभिन्न विधियों का प्रयोग कर सकता है। इनके बारे में आप इस इकाई में ही आगे चलकर पड़ेंगे।

7.7 साख नियंत्रण

केन्द्रीय बैंक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति और साख की मात्रा को नियंत्रत करने के लिये कई उपाय अपना सकता है। मोटे तौर पर, इन विधियों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :

1. मात्रात्मक विधियाँ या साख नियंत्रण के सामान्य उपकरण।
2. गुणात्मक विधयाँ, जिन्हें चयनात्मक साख नियंत्रण भी कहते हैं।

मात्रात्मक नियंत्रण सामान्यनः बैंक साख की मात्रा और लागत के बारे में होते हैं और इसमें इस ओर ध्यान नहीं दिया जाना कि आर्थिक क्रियाओं के किस क्षेत्र में साख का उपयोग किया जाएगा। चयनात्मक नियंत्रण (गुणात्मक नियंत्रण) माख की मात्रा व लागतों के साथ–साथ उन उद्देश्य को भी प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं जिसके लिये व्यापारिक बैंकों द्वारा साख दिया जा रहा है।

7.5.1 संख्यात्मक विधियाँ

इस श्रेणी में चार प्रमुख विधियां हैं : (1) बैंक दर नीति, (2) खुले बाजार की क्रियाएं (3) परवर्ती विधिक नकद कोष अनुपान और (4) गौण कोष अपेक्षाएँ।

(1) बैंक दर नीति : बैंक दर व्याज की वह दर हैं जिस पर केन्द्रीय बैंक सदस्य बैंकों की उपयुक्त दरों पर उस समय पुनर्बट्टा काटता है जब ये बैंक अपने तरल कोषों को बढ़ाने के लिये केन्द्रीय बैंक के पास सहायता के लिये जाते हैं। व्यापारिक बैंकों को अपने ग्राहकों को साख सुविधाओं के लिये इसकी आवश्यकता होनी है। इसीलिये बैंक दर को पुनर्बट्टा दर भी कहते हैं। बैंक दर नीति निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित होती है :

(i) व्यापारिक बैंकों की उधार देने की दरें ब्याज दर के साथ निकट से संबंधित होती हैं। बैंक दर में वृद्धि से जब बैंक अपनी उधार पर ब्याज दरें बढ़ाते हैं तो व्यापारी कम उधार लेंगे और कम निवेश करेंगे।

(ii) बैंक अपने पास केवल न्यूनतम नकद कोष रखते हैं और इसलिये उन्हें जब भी अतिरिक्त नकदी की आवश्यकता पड़ती है तो उन्हें केन्द्रीय बैंक के पास जाना पड़ता है।

(iii) बैंकों के पास उपयुक्त प्रतिभूतियाँ पर्याप्त मात्रा में होती हैं।

(iv) कीमतें, रोजगार, मजदूरी और उत्पादन ये सभी इतने लचीले होते हैं कि उद्योगपतियों व व्यापारियों के उधार व निवेश में परिवर्तन के अनुसार ये विस्तारित या संकुचित हो जाएँ।

बैंक दर नीति की कार्यप्रणाली : केन्द्रीय बैंक, बैंक दर में उचित परिवर्तन लाकर व्यापारिक बैंकों की उधार की ब्याज दरों को प्रभावित करता है और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से साख की मात्रा को नियंत्रित करता है। जब अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी स्थिति होती है तो यह अत्यधिक साख निर्माण की स्थिति को दर्शाती है। इसलिये मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के लिये केन्द्रीय बैंक, बैंक दर बढ़ा देता है। बैंक दर में वृद्धि से व्यापारिक बैंकों के ऋण की ब्याज दर बढ़ जाती है। बैंक ऋणों की लागत में वृद्धि ऋण लेने वालों को अधिक ऋण लेने से निरुत्साहित करेगी और इससे व्यापारिक बैंकों द्वारा अत्यधिक साख निर्माण पर रोक लग

जाएगी। दूसरी ओर व्यापारी अपने ऋणों को चुकाने के लिये अपने माल के कई स्टॉक को बेच सकते हैं। इसमें बाजार में । वस्तुओं की सप्लाई वढ़ेगी जिससे कीमतों के बढ़ने की प्रवृत्ति पर रोक लगेगी। अवस्फीति की स्थिति में केन्द्रीय बैंक, बैंक दर को घटा देता है और इससे उधार लेना सस्ता हो जाता है जिससे कि निवेश बढ़ता है। लेकिन, हाल के वर्षों में बैंक दर नीति का महत्व बहुत कम हो गया है। बैंक दर नीति निम्नलिखित स्थितियों में कम प्रभावशाली हो जाती है :

1. जब व्यापारिक बैंकों के पास पर्याप्त नकद कोष हो और इसलिये उन्हें अतिरिक्त नकद राशि के लिये केन्द्रीय बैंक के पास जाने की आवश्यकता ही न हो।

2. यह संभव है कि बैंक अन्य स्रोतों से कोष एकत्र कर सकें और उन्हें केन्द्रीय बैंक के पास सहायता के लिये जाने की जरूरत ही महसूस न हो।

3. जब व्यापारिक बैंकों के पास प्रथम श्रेणी की अनुमोदित बिलें और प्रतिभूतियाँ पर्याप्त मात्रा द्यश में न हों जिन्हें वे केन्द्रीय बैंक द्वारा पुनर्बट्टा लगवा सकें।

4. अल्पविकसित देशों में एक बहुत बड़ा क्षेत्र असंगठित होता है इसलिये वहाँ यह संभव है कि बैंक दर के बढ़ने से उधार की ब्याज दरें न बढ़े।

5. जब अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी स्थिति के कारण निवेश की लाभदायकता बहुत ऊँची होती है तो बैंक दर में वृद्धि से केवल उधार लेने की लागत बढ़ेगी और यह संभव है कि इससे निवेश के लिये कोषों की मांग प्रभावित न हो। उदाहरण के लिये, भारत में ब्याज दरों के बढ़ने के बावजूद बैंक साख की मांग लगातार बढ़ रही है।

6. बैंक दर नीति को साख नियंत्रण की एक अप्रत्यक्ष विधि माना जाता है और इसकी सफलता के लिये यह आवश्यक है कि या तो वे मान्यताएँ सही हों जिन पर यह आधारित होती है या इसका प्रयोग साख नियंत्रण के किसी अन्य उपकरण जैसी खाली बाजार क्रियाओं के साथ किया जाए।

(ii) खुली बाजार क्रियाएँ : जब अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी स्थितियाँ होती हैं तो केन्द्रीय बैंक खुले बाजार में प्रतिभूतियाँ बेचता है। इससे बैंकों के नकद कोष प्रत्यक्ष रूप से उतने कम हो जाते हैं जितनी राशि की वे ये प्रतिभूतियाँ खरीदते हैं। इसके अलावा, इससे ग्राहकों की व्यापारिक बैंकों के पास जमा राशियाँ भी उस हद तक कम हो जाती हैं जितनी राशि की वे केन्द्रीय बैंक द्वारा बेची जाने वाली प्रतिभूतियाँ खरीदते हैं। अतः केन्द्रीय बैंक द्वारा खुले बाजार में प्रतिभूतियों का विक्रय व्यापारिक बैंकों के साख निर्माण करने के आधार को कम कर देता है और इससे साख का संकुचन हो जाता है. यथा मुद्रा की पूर्ति कम हो जाती है। इससे वस्तुओं और सेवाओं की बढ़ती हुई मांग को रोकने में सहायता मिलती है, जिससे उनकी कीमतों में बढ़ने की प्रवृत्ति को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है। विलोमतः, अवस्फीति की स्थिति का सामना करने के लिये केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के नकद कोष बढ़ाने के लिये प्रतिभूतियों को खरीदता है तांकि साख की मात्रा बढ़ायी जा सके। साख नियंत्रण की यह विधि बैंक दर नीति से ज्यादा अच्छी मानी जाती है क्योंकि यह बैंकों के नकद कोषों को प्रत्यक्ष रूप से परिवर्तित करके उनकी साख निर्माण सामर्थ्य को प्रभावित करती है। तथापि, इस विधि की भी कुछ सीमाएँ हैं जो कभी–कभी इस उपकरण को भी कम प्रभावी बनाती हैं। ये सीमाएँ निम्नलिखित हैं :

1. खुली बाजार क्रियाएँ केवल तब सफल होती हैं जब एक विस्तृत, ठोस और सक्रिय प्रतिभूति बाजार हो। लेकिन भारत जैसे अल्पविकसित देश में ऐसे बाजार का अभाव हो सकता है। जिसके कारण यह नीति प्रभावहीन हो जाती है।

2. प्रतिभूतियों की बिक्री व्यापारिक बैंकों की तरलता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित न करे क्योंकि केन्द्रीय बैंक द्वारा दी जाने वाली पुनर्बट्टा सुविधाओं के द्वारा अपने कोषों को फिर से बढ़ा . सकते हैं।

3. अवस्फीति को नियंत्रित करने में खली बाजार क्रियाएँ प्रभावी सिद्ध न हो सकती हैं क्योंकि यदि केन्द्रीय बैंक खुले बाजार में प्रतिभूतियों का क्रय करके अधिक मुद्रा संचलन में डाल भी दे तो भी घटती हुई कीमतों की स्थिति में ऋण लेने वालों को अधिक ऋण लेने और निवेश करने के लिये केन्द्रीय बैंक मजबूर नहीं कर सकता क्योंकि अवस्फीति की स्थिति में निवेश से हानि होती है।

इन सीमाओं के कारण यह उपकरण सामान्यतया बैंक दर नीति के पूरक के रूप में प्रयोग किया जाता है। अतः ये दोनों विधियाँ प्रभावी साख नियंत्रण के लिये एक दूसरे की पूरक हैं।

(iii) परिवर्ती विधिक नकद कोष अनुपात (***Variable Legal Cash Reserve Ratio***) : परिवर्ती विधिक नकद कोष अनुपात केन्द्रीय बैंकों द्वारा साख नियंत्रण की एक अपेक्षाकृत नयी विधि है। इसे पहली बार अमेरिका की फेडरल रिजर्व प्रणाली ने अपनाया था। जिन देशों में मद्रा बाजार असंगठित व अल्पविकसित होता हैं वे अब साख नियंत्रण की इस विधि का अधिकाधिक प्रयोग कर रहे हैं।

आजकल प्रत्येक बैंक के लिये कानूनन या प्रथा द्वारा अपने कुल जमा दायित्वों का एक निश्चित प्रतिशत केन्द्रीय बैंक के पास न्यूनतम विधिक नकद कोष के रूप में रखना आवश्यक है। इस रू कोष अनुपात में परिवर्तन से व्यापारिक बैंकों के पास तरलता की मात्रा परिवर्तित होने की बहुत संभावना होती है और इसके परिणामस्वरूप उनकी ऋण देने की सामर्थ्य परिवर्तित हो जाती है। **जब साख संकुचन वांछित हो तो केन्द्रीय बैंक नकद कोष अनुपात को बढ़ा देता है और जब साख विस्तार करना होता है तो केन्द्रीय बैंक इसे घटा देता है।** यह विधि अधिक प्रत्यक्ष है। और इसका व्यापारिक बैंकों द्वारा निर्माण की जाने वाली साख की मात्रा पर तुरन्त प्रभाव पड़ता है। बैंक की नकद निर्माण सामर्थ्य नीचे दिये गये सूत्र की सहायता से निकाली जाती है :

$$AD = C \times \frac{1}{r}$$

इसमें AD = कुल जमाओं में परिवर्तन

c = नकद जमाएँ

r = न्यूनतम नकद कोष अनुपात

उदाहरण के लिये, यदि नकद कोष अनुपात 10% हो और बैंक के पास नकद जमाएँ

100 करोड़ हों तो उनकी ऋण देने की सामर्थ्य दस गुना यानि 1000 करोड़ रु. $\left(AD = 100 \times \frac{1}{\frac{10}{100}}\right)$ होगी।

लेकिन यदि नकद कोष अनुपात बढ़ाकर 20% कर दिया जाए तो यह सामर्थ्य केवल 5 गुना रह जाएगी यानि 500 करोड़ रु. (5×100 करोड़)।

यह विधि साख नियंत्रण का एक शक्तिशाली उपकरण तो है लेकिन इसकी भी कुछ सीमाएँ हैं जो निम्नलिखित हैं :

1. इसका बारंबार प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि इससे व्यापारिक बैंकों को बहुत अनिश्चितता का सामना करना पड़ता है।
2. यह प्रतिभूति बाजार पर निराशाजनक प्रभाव डालता है और इस प्रकार यह निवेश को प्रतिकूल रूप में प्रभावित करके आर्थिक विकास की प्रक्रिया में बाधा डालता है।
3. यह विभेदी प्रकृति का है क्योंकि यह गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थों पर लागू नहीं होता।
4. यदि बैंकों के पास पहले से ही अतिरिक्त कोष है तो यह प्रभा वहीन सिद्ध होता है।
5. न्यूनतम नकद कोष अनुपात में न्यूनतम परिवर्तन ही किये जा सकते हैं क्योंकि इसमें कोई भी द्य बड़ा परिवर्तन व्यापारिक बैंकों के लिये शीघ्र समायोजन करने में कठिनाइयाँ पैदा कर देगा।

(iv) गौण कोष अपेक्षाएँ (*Secondary Reserve Requirements*): केन्द्रीय बैंकों को अब यह अधिकार है कि वे व्यापारिक बैंकों के लिये न केवल न्यूनतम नकद कोष अनुपात निश्चित कर सकते हैं बल्कि कुल परिसम्पत्तियों में तरल परिसम्पत्तियों का अनुपात भी निश्चित कर सकते हैं। इससे उनकी साख निर्माण करने की सामर्थ्य और सीमित हो जाती है। इसका आधार यह है कि व्यापारिक बैंकों को सरकारी प्रतिभूतियों और अन्य तरल परिसम्पत्तियों को व्यापारिक ऋणों और अग्रिमों में परिवर्तित करने की स्वतंत्रता नहीं देनी चाहिये। एक ऊँची गौण कोष अपेक्षा का अर्थ दीर्घावधि के लिये कम ऋण व अग्रिम है जो कि स्फीतिकारक सिद्ध होते हैं। भारत सहित बहुत से देशों ने मुद्रा स्फीति की स्थिति पर काबू पाने के लिये इसका प्रयोग किया है। इसके द्वारा व्यापारिक बैंकों की ऋण देने की सामर्थ्य पर नियंत्रण किया गया। डी. काक का विश्वास है कि इस उपकरण की असाधारण स्फीतिकारक दबावों की स्थिति को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। सामान्यतया इस विधि का प्रयोग न्यूनतम नकद कोष अनुपात में परिवर्तनों के साथ किया जाता है ताकि इसे अधिक प्रभावी बनाया जा सके।

साख नियंत्रण के सामान्य उपायों के ऊपर दिये गये विवेचन से तीन तथ्य सामने आते हैं :–

1. नियंत्रण की कोई भी एक विधि वास्तव में प्रभावी नहीं हो सकती जब तक कि इसके साथ अन्य किसी विधि का प्रयोग न किया जाए,
2. ये विधियाँ मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के लिये तो उपयोगी हो सकती हैं लेकिन अवस्फीति को नियंत्रित करने की सामर्थ्य इनमें से किसी में भी नहीं है,
3. ये विधियाँ अर्थव्यवस्था के उन प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के साथ अनुकूल व्यवहार करने में असफल हैं जिनकी बैंक साख की आवश्यकताएँ अधिक आवश्यक और सामाजिक रूप में वांछनीय होती हैं।

7.5.2 गुणात्मक विधियाँ :

साख नियंत्रण की गुणात्मक विधियों को साख नियंत्रण की चयनात्मक विधियाँ भी कहते हैं। चयनात्मक साख नियंत्रणों को साख नियंत्रण की सामान्य विधियों से बेहतर समझा जाता है क्योंकि ये न केवल साख की कल मात्रा को नियत्रित करने की ओर लक्ष्य करते हैं बल्कि उन उपयोगों को भी निर्दिष्ट करते हैं जिनके लिये साख दिया जाता है। वास्तव में चयनात्मक नियंत्रण उन वांछनीय और आवश्यक उपयोगों तथा अवांछनीय तथा अनावश्यक उपयोगों में भेद करते हैं। जिनके लिये साख दिया जाता है। इसका उद्देश्य अवांछनीय उपयोगों से साख के प्रवाह को अधिक महत्वपूर्ण, वांछनीय और उत्पादक उपयोगों की ओर कर देना है। चयनात्मक नियंत्रणों में निम्नलिखित उपाय आते हैं।

(1) सीमान्त अन्तर अपेक्षाओं में परिवर्तन *(Variation in margin requirements)* : सीमान्त अन्तर की प्रथा को बैंकों ने उधार लेने वालों द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाली संपाश्विक जमानत (*collateral security*) का ऋण मूल्य निर्धारित करने के लिये अपनाया है। जमानत का ऋण मूल्य उसके बाजार मूल्य में से सीमान्त अन्तर को घटाकर निकाला जाता है। उदाहरण के लिये, एक शेयर जिसका बाजार मूल्य. 125 रु. है उसका 20% सीमान्त अन्तर अपेक्षा पर ऋण मुल्य 100 रु. (125 रु.–125 रु. का 20%) होगा। अतः बैंक इस जमानत पर 100 रु. से अधिक ऋण नहीं देगा।

केन्द्रीय बैंक को विभिन्न प्रकार के जमानतों (ऋणाधारों) के लिये सीमान्त अन्तर निश्चित करने का अधिकार है और इस प्रकार वह ऋण की अधिकतम सीमा को प्रभावित कर सकता है। सीमान्त अन्तर में वृद्धि एक ऋणीधार पर दिये जाने वाले ऋण की मात्रा को घटा देगी। इससे साख की मात्रा कम होगी और मुद्रास्फीति को रोकने में मदद मिलेगी। सीमान्त अन्तर अपेक्षाओं में परिवर्तन सट्टेबाजी क्षेत्रों में साख के नियमन करने का एक प्रभावी उपाय है और इससे अन्य उत्पादकों व वांछनीय क्षेत्रों में साख की उपलब्धता पर प्रतिकल प्रभाव नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त, यदि केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों से सहयोग प्राप्त कर सके तो इस विधि को प्रभावी रूप में आसानी से लागू किया जा सकता है।

(2) उपभोक्ता साख का नियमन *(Regulation of consumer credit)*
साख नियंत्रण की इस विधि का पहली बार अमरीका में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान उन वस्तुओं की मांग को सीमित करने के लिये प्रयोग किया गया जिनकी सप्लाई कम थी। इस विधि का महत्व उन देशों में है जहाँ किश्तों में भुगतान और अवक्रय (ीपतम चनतबींम) के द्वारा बड़े स्तर पर उपभोक्ता साख प्रणाली प्रचलित है। इस विधि का अर्थ है तुरन्त भुगतान की न्यूनतम राशि और। किश्तों की संख्या निश्चित करना।

केन्द्रीय बैंक अनुमोदित टिकाऊ उपयोग वस्तुओं के उपभोक्ताओं को व्यापारिक बैंकों द्वारा दिये जाने वाले ऋण की अधिकतम सीमा निश्चित करके उपभोक्ता साख का नियमन करता है। मुद्रास्फीति के समये उपभोक्ता) साख को सीमित करने के लिये केन्द्रीय बैंक तुरन्त भुगतान की राशि को बढ़ाने और किश्तों की संख्या कम करने का आदेश देता है जिससे कि वस्तुओं की मांग को सीमित किया जा सके और कीमतों को नियंत्रित किया जा सके। लेकिन उन अल्पविकसित देशों में इस विधि का अर्थव्यवस्था के मौद्रिक प्रबन्ध में बहुत सीमित महत्व है जहाँ अवक्रय प्रणाली अभी इतनी लोकप्रिय नहीं हुई है।

(3) साख की राशनिंग *(Rationing of Credit*) इस विधि की वित्तीय साधनों को उन क्षेत्रों में ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं जो योजना प्राधिकरण द्वारा निश्चित किये जाते हैं। साख राशनिंग एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा केन्द्रीय बैंक ऋणों और अग्रिमों की । अधिकतम सीमा निर्धारित करने का प्रयत्न करता है और कुछ विशेष मामलों में रू निर्दिष्ट श्रेणी के ऋणों व अग्रिमों के लिये भी सीमा निर्धारित करता है। इस तरह यह गैर प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में साख को सीमित करने का प्रयत्न करता है जिससे कि साख की उपलब्धता को अर्थव्यवस्था के वांछित क्षेत्रों में ले जाया जा सके। लेकिन सदस्य बैंक इस विधि को बहुधा पसंद नहीं करते क्योंकि यह उनकी स्वतंत्रता को कम करने का प्रयत्न करती है।

(4) निदेशों द्वारा नियंत्रण *(Issue of Directives) :* हाल के वर्षों में केन्द्रीय बैंकों ने व्यापारिक बैंकों से अपनी मौद्रिक नीति के प्रभावी कार्यान्वयन में सहयोगं और सहायता प्राप्त करने के लिये उन्हें निदेश देने शुरू कर दिये हैं। निदेश जबानी या लिखित हो सकते हैं तथा निवेदन या चेतावनी के रूप में हो सकते हैं और ये विशेष रूप से व्यक्तिगत साख संरचनाओं को नियंत्रित करने और ऋण की कल मात्रा को सीमित करने के लिये दिये जाते हैं। निर्देशों की सफलता व्यापारिक बैंकों की केन्द्रीय बैंक के साथ सहयोग करने की इच्छा पर निर्भर करती है। यद्यपि निदेशों का उल्लंघन करना दण्डनीय नहीं है लेकिन. व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक के साथ सहयोग करते हैं क्योंकि अपने कार्य संचालन के संबंध में उन्हें केन्द्रीय बैंक पर बहुत अधिक निर्भर रहना होता है। निर्देशों के साथ प्रायः साखं नियंत्रण की कुछ अन्य विधियाँ भी अपनायी जाती हैं।

(5) नैतिक आग्रह (*Moral Suasion*) रू इसका अर्थ है केन्द्रीय बैंक का व्यापारिक बैंकों से देश की सामान्य मौद्रिक नीति का अनुसरण करने के लिये आग्रह या प्रार्थना करना। मुद्रास्फीति के समय व्यापारिक बैंकों को सट्टेबाजी और अनावश्यक कार्यों के लिये ऋण सुविधाओं पर रोक लगाने के लिये समझाया जाता है।

अवस्फीति के समय व्यापारिक बैंकों से उन घटिया ऋणाधारों पर भी ऋण व अग्रिम प्रदान करने की प्रार्थना की जा सकती है। द्य जिन्हें वे सामान्यतया स्वीकार नहीं करते। इस विधि में व्यापारिक बैंकों का सहयोग प्राप्त करने के लिये उन पर केवल नैतिक दबाव झाला जाता है क्योंकि इम विधि में कोई डर या काननी दण्ड नहीं होता। तथापि, भारत में भारतीय रिजर्व बैंक ने इस विधि का प्रभावी और मफल प्रयोग किया है। बैंक ऑफ इंग्लैंड ने भी इस विधि का काफी हद तक सफलता पूर्वक प्रयोग किया है।

(6) प्रत्यक्ष कार्यवाही *(Direct Action)* : इसका तात्पर्य केन्द्रीय बैंक द्वारा गलती करने वाले बैंक के विरुद्ध निम्नलिखित में से किसी भी रूप में दण्डनीय कार्यवाही करने से हैं :

(i) केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों द्वारा निर्धारित सीमा में अधिक मांग की गयी साख के लिये बैंक दर के अलावा दण्ड –स्वरूप और भी व्याज भी ले सकता है।

(ii) केन्द्रीय बैंक उन व्यापारिक बैंकों को बंट्टा काटने की सुविधाएँ प्रदान न करे, जिनकी साख नीति सामान्य मौद्रिक नीति के अनुरूप नहीं है।

(iii) जिन व्यापारिक बैंकों के उधार उनकी पूँजी और नकद कोषों से अधिक हों उन्हें केन्द्रीय बैंक और साख सुविधाएँ देने से मना कर सकता है। परन्तु व्यवहार में, केन्द्रीय बैंक के लिये व्यापारिक बैंकों के विरुद्ध कार्यवाही करना सरल नहीं है, क्योंकि साख के अनुत्पादक और अनावश्यक प्रयोग का पता लगाना हमेशा आसान नहीं होता। इसके अतिरिक्त, यह सनिश्चित करना भी कठिन होता है कि उत्पादक कार्यों के लिये दिये गये। ऋण का सट्टेबाजी के लिये या अनावश्यक कार्यों के लिये उपयोग नहीं किया गया है।

(7) प्रचार : आजकल केन्द्रीय बैंक साख प्रणाली में हानिकारक प्रयोगों का और बैंक की उचित नीति क्या होनी चाहिये, इसका प्रचार करके बैंकिंग प्रणाली पर मनोवैज्ञानिक और नैतिक दबाव डालने का प्रयत्न करते हैं। केन्द्रीय बैंक नियमित रूप से बैंकिंग प्रणाली की परिसम्पत्तियों और देयताओं के विवरण, साख और व्यापार की स्थितियों की समीक्षा और मुद्रा बाजार की प्रवृत्तियों का प्रकाशन करता है जिससे सदस्य बैंकों की यह जानने में सहायता की जा सके कि उन्हें क्या करना चाहिये।

चयनात्मक साख नियंत्रण की सीमाएँ : साख प्रणाली की निम्नलिखित सीमाओं के कारण यह संभव है कि चयनात्मक साख नियंत्रण साख को नियंत्रित करने में और इसे वांछित दिशा में प्रवाहित करने में सफल न हों।

(i) चयनात्मक नियंत्रणों की सफलता सीमित है क्योंकि ये उपाय गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं को प्रभावित नहीं करते।

(ii) यह सुनिश्चित करना संभव नहीं भी हो सकता है कि व्यापारिक बैंकों द्वारा दिये गये ऋण वास्तव में उन्हीं कार्यों पर खर्च किये जाते हैं, जिनके लिये ये दिये गये थे।

(iii) यह संभव है कि व्यापारिक बैंक लाभ के उद्देश्य से सीमित रूप में निषिद्ध कार्यों के लिये ऋण दे दें और दण्डनीय कार्यवाही से बचने के लिये अपनी पुस्तकों में उनकी प्रविष्टियाँ अन्य शीर्षकों के अन्तर्गत कर दें।

(iv) अतः निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि केन्द्रीय बैंक की मौद्रिक नीति की क्षमता और सफलता काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि राष्ट्रीय आर्थिक उद्देश्यों को पूरा करने में व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक के साथ सहयोग करने के लिये कितने इच्छुक हैं और वे उसका कितना आदर करते हैं।

बोध प्रश्न 'ग'

1. निम्नलिखित में से चयनात्मक साख नियंत्रण का उपाय कौन सा है?

   (i) बैंक दर नीति

   (ii) नैतिक आग्रह

   (iii) सांविधिक नकद कोष अनुपात

   (iv) खुली बाजार क्रियाएँ

2. जब साख विस्तार करना हो तो केन्द्रीय बैंक को :

   (i) खुले बाजार में सरकारी प्रतिभूतियाँ खरीदनी चाहिये।

   (ii) बैंक दर बढ़ानी चाहिये।

   (iii) ऊँची सीमान्त अन्तर अपेक्षाएँ निर्धारित करनी चाहिये।

   (iv) गौण तरलता अनुपात बढ़ाना चाहिये।

3. निम्नलिखित में से कौन सा साख नियंत्रण का उद्देश्य नहीं है?

   (i) आर्थिक संवृद्धि

   (ii) आर्थिक कल्याण

   (iii) कीमतों की स्थिरता

   (iv) विदेशी विनिमय दर की स्थिरता।

4. बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :

   (i) नैतिक आग्रह साख नियंत्रण का एक बहुत प्रभावी उपकरण माबित हुआ है।

   (ii) बैंक दर नीति मुद्रास्फीति को रोकने का एक उपयुक्त उपाय है।

   (iii) न्यूनतम नकद कोष अनुपात में वृद्धि का साख के विस्तार को रोकने के संबंध में तुरन्त प्रभाव पड़ेगा और इससे मुद्रास्फीति के नियंत्रण में सहायता मिलेगी।

   (iv) बैंक दर नीति की अपेक्षा खूली बाजार क्रियाएँ अधिक प्रभावी हैं क्योंकि बैंक दर नीति केवल अप्रत्यक्ष रूप में कार्य करती है।

   (v) अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में, प्रभावी मौद्रिक प्रबंध के लिये माख नियंत्रण के किसी एक उपाय पर भरोसा करना उचित होगा।

5. रिक्त स्थानों को भरिये :

   (i) उपभोक्ता साख का विस्तार करने के लिये बैंक ऋण की अदायगी की किश्तों की संख्या

   (ii) . . . . को रोकने के लिये केन्द्रीय बैंक साख की उदारवादी नीति अपनायेगा

7.8 सारांश

केन्द्रीय बैंक की परिभाषा इसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों के आधार पर दी जाती है। केन्द्रीय बैंक किसी देश की मौद्रिक व वित्तीय प्रणाली की शिखर संस्था होता है, जिसकी व्यापारिक बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थाओं की क्रियाओं के संगठन, पर्यवेक्षण, नियमन और मार्गदर्शन में अग्रगामी ' भूमिका होती है। केन्द्रीय

बैंक का सरकार के साथ निकट का संपर्क रहता है जिससे देश की आर्थिक नीति का प्रभावी ढंग से कार्यान्वयन हो सके। अर्थव्यवस्था को आर्थिक दृष्टि से स्वस्थ बनाये रखने के लिये आन्तरिक कीमतों और विदेशी विनिमय दर में स्थिरता के साथ तीव्र आर्थिक विकास करने में यह सरकार की सहायता करता है।

मौद्रिक प्रबन्ध की व्यापक रूपरेखा सरकार द्वारा केन्द्रीय बैंक की सलाह से बनायी जाती है जिसे केन्द्रीय बैंक को कार्यान्वित करना होता है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय बैंक के गवर्नर और उच्च अधिकारियों की नियुक्तियाँ भी सरकार ही करती है।

केन्द्रीय बैंक और व्यापारिक बैंकों में अन्तर इनके उद्देश्यों और कार्य क्षेत्र के बारे में होता है। व्यापारिक बैंक जनता और केन्द्रीय बैंक के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करते हैं और इनका उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है जबकि केन्द्रीय बैंक का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय आर्थिक कल्याण होता है। इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय बैंक के पास नोट निर्गमन का एकाधिकार होता है। और यह समस्त मौद्रिक प्रणाली का अग्रणी होता है।

केन्द्रीय बैंक 07 महत्वपूर्ण परम्परागत कार्य करता है, यह नोट निर्गमन के बैंक और अन्तिम, ऋणदाता के रूप में कार्य करता है। यह न केवल सरकार के बैंकर और सलाहकार के रूप में कार्य करता है बल्कि सभी व्यापारिक बैंकों के बैंकर के रूप में भी कार्य करता है। यह देश के स्वर्ण व विदेशी विनिमय कोषों के संरक्षक के रूप में कार्य करता है। इन सबके अलावा यह अर्थव्यवस्था में माख की मात्रा को नियंत्रित करता है। हाल के वर्षों में विकासशील देशों के केन्द्रीय बैंकों ने अपने ऊपर कृषि, उद्योग, और विदेशी व्यापार जैसे क्षेत्रों के संवर्धन में सहायता की जिम्मेवारी भी ले ली है ताकि तीव्र आर्थिक विकास हो सके।

केन्द्रीय बैंक का सबसे बड़ी चुनौती वाला कार्य अर्थव्यवस्था में साख की मात्रा का नियंत्रण करना है। साख की मात्रा को नियंत्रित करने के लिये साख नियंत्रण के सामान्य उपकरणों का प्रयोग किया जाता है जब कि साख नियंत्रण की गुणात्मक विधियों (चयनात्मक साख नियंत्रण का प्रयोग तब किया जाता है जब साख की दिशा को प्रभावित करना हो। केन्द्रीय बैंक परिस्थितियों के अनुसार बैंक दर नीति तथा खुली बाजार क्रियाओं का कीमत स्तर के उतार–चढ़ावों को रोकने के लिये प्रयोग करता है लेकिन यह कीमतों के नियंत्रण को शीघ्र प्रभावित करने के लिये न्यूनतम नकद कोष अनुपात और गौण कोष अनुपात का भी प्रयोग कर सकता है।

हाल ही के वर्षों में साख नियंत्रण की गुणात्मक विधियाँ लोकप्रिय हुई हैं। सीमान्त अन्तर अपेक्षाओं में परिवर्तन के द्वारा, ऋण की अदायगी के लिये किश्तों की संख्या बदल कर, और साख की राशनिंग के द्वारा केन्द्रीय बैंक साख को अपेक्षित क्षेत्रों में प्रवाहित करने का प्रयत्न करता है। केन्द्रीय बैंक द्वारा दिये गये निदेश और नैतिक आग्रह साख नियंत्रण के प्रभावी उपाय सिद्ध हुए हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष कार्यवाही के प्रयोग का डर व्यापारिक बैंकों को केन्द्रीय बैंक के आदेशों की अवहेलना करने से रोकता है।

7.9 उपयोगी शब्दावली

- **मौद्रिक नीति** (Monetary Policy) : आर्थिक नीति का वह भाग जो अर्थव्यवस्था में मुद्रा की। मात्रा को नियमित करता है ताकि कीमत स्थिरता, संवृद्धि, भुगतान शेष में संतुलन जैसे उद्देश्य प्राप्त किये जा सकें।
- **प्रतिभूतियाँ** (Securities) : आय प्रदान करने वाले कागज जिनका शेयर बाजार या गौण बाजार में व्यापार किया जाना है।

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1 i) गलत ii) गलत iii) सही iv) गलत v) सही

2 i) व्यापारिक, केन्द्रीय ii) केन्द्रीय iii) केन्द्रीय

ख 1 i) नोट निर्गमन का एकाधिकार

ii) राज्य का बैंकर, एजेंट और वित्तीय सलाहकार,

iii) बैंकरों का बैंक

iv) स्वर्ण व विदेशी विनिमय कोषों का संरक्षक

v) साख का नियंत्रक

vi) केन्द्रीय समाशोधन, निपटान और अन्तरण का बैंक

vii) अन्तिम ऋणदाता !

2 i) सही ii) गलत iii) सही iv) सही

ग1 ii) 2 i) 3 ii) 4 i) सही

ii) गलत iii) सही iv) सही v) गलत

4 i) बढ़ाते हैं ii) अवस्फीति

7.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 केन्द्रीय बैंक क्या होता है? केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों से किस प्रकार भिन्न होता है?

प्रश्न–2 आधुनिक अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय बैंक के परम्परागत और प्रवर्तन कार्यों का विवेचन कीजिये।

प्रश्न–3 चयनात्मक साख नियंत्रणों से आप क्या समझते हैं? ये किस प्रकार साख नियंत्रण के परम्परागत उपकरणों से बेहतर हैं।

प्रश्न–4 साख नियंत्रण की मात्रात्मक और गुणात्मक विधियों में भेद कीजिये। अर्थव्यवस्था में साख की मात्रा को नियंत्रित करने में मात्रात्मक विधियों की क्षमता का विवेचन कीजिये।

प्रश्न–5 बैंक दर नीति और खुले बाजार की क्रियाओं की कार्यप्रणाली का विवेचन कीजिये और यह बताइये कि ये दोनों विधियाँ एक दूसरे के पूरक कैसे हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)
- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकषन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)
- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीष कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, SBPD पब्लिकेषन 2016)
- प्रो0 षिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेषन 2017)
- एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
- के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
- शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016) एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

****

इकाई–8 भारतीय रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया

इकाई की रूपरेखा

8.0. उद्देश्य

8.1. प्रस्तावना

8.2. भारतीय रिजर्व बैंक स्थापना के मुख्य उद्देश्य

8.3. भारतीय रिजर्व बैंक के मुख्यविभाग

8.4. भारतीय रिजर्व बैंक के कार्य

- **8.4.1** परम्परागत कार्य
- **8.4.2** विकासात्मक और प्रवर्तन संबंधी कार्य

8.5. नोट निर्गमन

- **8.5.1** नोट निर्गमन की प्रणाली
- **8.5.2** नोट निर्गमन के नियम

8.6. साख नियंत्रण

- **8.6.1** मुद्रा नीति के उद्देश्य
- **8.6.2** सामान्य साख नियंत्रण की पद्धतियाँ
- **8.6.3** प्रत्यक्ष साख विनियमन

8.7. भारतीय रिजर्व बैंक की मुद्रा नीति का मूल्यांकन

8.8. सारांश

8.9. उपयोगी शब्दावली

8.10. बोध प्रश्नों के उत्तर

8.11. महत्वपूर्ण प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि : –

- ❖ भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यों का वर्णन कर सकेंगे,
- ❖ भारत में नोट निर्गमन की प्रणाली बता सकेंगे,
- ❖ करेंसी नोटों के निर्गमन के नियम बता सकेंगे,
- ❖ भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अपनाये जाने वाले साख नियंत्रण के विभिन्न उपकरणों का विवेचन कर सकेंगे तथा

- ❖ भारतीय रिजर्व बैंक की मुद्रा नीति का मूल्यांकन कर सकें।

8.1 प्रस्तावना

भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 के प्रावधानों के अनुसार 1 अप्रैल 1935 को हुई थी। रिजर्व बैंक का केन्द्रीय कार्यालय प्रारम्भ में कलकत्ता में स्थापित किया गया था जिसे 1937 में स्थायी रूप से बम्बई में स्थानान्तरित कर दिया गया। यद्यपि ब्रिटिश राज के दौरान प्रारम्भ में यह निजी स्वामित्व वाला बैंक हुआ करता था परन्तु स्वतन्त्र भारत में 1 जनवरी 1949 में इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। उसके बाद से इस पर भारत सरकार का पूर्ण स्वामित्व है।

भारतीय रिजर्व बैंक भारत के सभी बैंकों का संचालक है। रिजर्व बैक भारत की अर्थव्यवस्था को नियन्त्रित करता हैं। केन्द्रीय बैंक बैंकिंग प्रणाली की शिखर संस्था है। करेंसी नोटों के निर्गमन के प्राधिकार, सरकार के बैंकर के रूप में इसकी भूमिका और बैंकों के बैंकर होने के कारण देश की बैंकिंग संरचना में इसका अद्वितीय स्थान है। भारतीय रिजर्व बैंक, जो इस देश का केन्द्रीय बैंक है, केवल वही कार्य नहीं करता है जो विकसित देशों में केन्द्रीय बैंक करते हैं बल्कि अल्पविकसित वित्तीय बाजारों और संस्थाओं के विकास में सहायता करने के लिये कुछ विकासात्मक और प्रवर्तन संबंधी कार्य भी करता है।

इस इकाई में आप भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यों, इसके द्वारा नोट निर्गमन की प्रणाली और नियमों तथा इसके द्वारा प्रयोग किये जाने वाले साख नियंत्रण के उपकरणों के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे। अपनी मुद्रा नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये भारतीय रिजर्व बैंक ने कितनी कुशलतापूर्वक मुद्रा नियंत्रण की विधियों का प्रयोग किया है, इसकी भी आलोचनात्मक जांच इस इकाई में की गयी है।

8.1 भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना का मुख्य उद्देश्य

आइये भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना का मुख्य उद्देश्यों को सूचिबद्ध कर समझने का प्रयास करें:—

- ❖ इम्पीरियल बैंक के दोषों को दूर करना।
- ❖ देश में बैंकिग प्रणाली का विकास करना।
- ❖ मुद्रा बाजार को संगठित करना।
- ❖ रूपये के आंतरिक तथा बाह्य मूल्यों में स्थिरता कायम करना।
- ❖ बैंको के नकद कोषों का केंद्रीयकरण करना।
- ❖ विदेशों से मौद्रिक संबंध कायम करना।
- ❖ सरकार के सामाजिक न्याय तथा स्थिरतापूर्ण आर्थिक विकास की गति को बढाने में सहायता देना।
- ❖ आंकड़ों का एकत्रीकरण एवं प्रकाशन।

8.3 भारतीय रिजर्व बैंक मुख्यविभाग

भारतीय रिजर्व बैंक के बहुत सारे विभाग है परन्तु बैंकिंग कार्यों को सफलतापूर्वक किया जा सके इसके लिए आर.बी.आई. के कुछ मुख्य भाग निम्नलिखित हैं। आइये क्रमषः इन्हें समझने का प्रयास करें:–

- **उपभोक्ता शिक्षण और संरक्षण विभाग :** यह विभाग भारतीय रिजर्व बैंक और रिजर्व बैंक द्वारा नियामित संस्थाओं से दी जानेवाली सेवाओं की कमियों पर प्राप्त सभी बाहरी शिकायतों का निवारण कार्य करता है। शिकायत निवारण के अलावा रिजर्व बैंक के नियामक क्षेत्राधिकार के अंतर्गत वित्तीय सेवा प्रदाताओं पर नैतिक व्यवहार को लागू करने के लिए नोडल विभाग के रूप में भी उपभोक्ता शिक्षण और संरक्षण विभाग कार्यरत है। यह विभाग बैंकिंग और वित्तीय सेवाओं के बारे में उपभोक्ताओं के बीच जागरूकता पैदा करने तथा जनता को शिक्षित करने का कार्य भी करता है।

- **बैंकिंग विनियमन विभाग :** बैंकिंग विनियमन विभाग बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949, भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम, 1975 और अन्य संबंधित संविधियों में निहित प्रावधानों के अनुसार वाणिज्यिक बैंकों, स्थानीय क्षेत्र बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के संबंध में विनियामक शक्तियों का प्रयोग करता है।

- **संचार विभाग :** संचार विभाग की उत्पत्ति काफी समय पहले साठ के दशक में तत्कालीन अर्थशास्त्र विभाग में प्रकाशन और प्रेस संपर्क प्रभाग में खोजी जा सकती है। रिजर्व बैंक और इसकी संबद्ध संस्थाओं के व्यापक कार्यों तथा प्रभावी प्रचार और जन संपर्क की आवश्यकता को देखते हुए सत्तर के दशक में प्रेस संपर्क अधिकारी के कार्यालय को संपूर्ण प्रेस संपर्क अनुभाग में परिवर्तित किया गया।

- **कॉर्पोरेट सेवा विभाग :** नवंबर 2014 में किए गए संस्थागत पुनर्गठन के भाग के रूप में सृजित किए गए कॉर्पोरेट सेवा विभाग कतिपय आंतरिक कॉर्पोरेट सेवाओं में सहयोग करने और उनकी सुपुर्दगी की सुविधा प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित करेगा ताकि विशेषीकृत विभाग अपने मुख्य कार्यों पर ध्यान केंद्रित कर सकें।

- **आर्थिक और नीति अनुसंधान विभाग :** आर्थिक और नीति अनुसंधान विभाग समष्टि आर्थिक मुद्दों विशेषकर मौद्रिक नीति, वित्तीय बाजारों, समष्टि आर्थिक चरों के पूर्वानुमान, वित्तीय स्थिरता और बाह्य क्षेत्र के प्रबंध के क्षेत्रों में संरचित अनुसंधान एजेंडा के तहत नीति सहायक अनुसंधान कार्य करता है।

- **बाह्य निवेश और परिचालन विभाग :** विदेशी मुद्रा और भारतीय रिजर्व बैंक की स्वर्ण आस्तियों का निवेश और प्रबंधन और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) से संबंधित लेनदेन सहित भारत सरकार की तरफ से बाह्य लेनदेन का प्रबंध।

- **वित्तीय समावेशन और विकास विभाग :** रिजर्व बैंक के वित्तीय समावेशन और विकास विभाग में ग्रामीण और सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम क्षेत्रों सहित अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रों के लिए ऋण उपलब्ध कराने के लिए नीतियां बनाने की परिकल्पना की गई है। वित्तीय शिक्षण और वित्तीय साक्षरता को बढ़ावा

देना इस कार्य का वर्तमान ध्यानकेंद्रण बिन्दु है और यह वित्तीय समावेशन पर नवीकृत राष्ट्रीय ध्यानकेंद्रण को संक्षेप में प्रस्तुत करता है।

➢ **मानव संसाधन प्रबन्ध विभाग :** इस विभाग का उद्देश्य है कि (1) संस्था की दक्षता को बढ़ाने के लिए सही परिवेश का सृजन करना, (2) स्टाफ का समुचित कार्यनियोजन करके, उसे प्रोत्सानहन देकर सर्वोत्कृष्ट कार्यनिष्पाादन और (3) भरोसे का वातावरण तैयार करना, प्रत्याशाओं के प्रति आश्वस्त करना और ऐसी भावना को बढ़ावा देना कि यह संस्था् अपने स्टाफ की सुख–सुविधाओं और उनकी अभिलाषाओं का ध्याान रखती है। इससे निजी अभिलाषाओं को व्यावसायिक लक्ष्यों के समतुल्यन रखते हुए दक्षता को बढ़ाने में मदद मिलेगी।

➢ **निरीक्षण विभाग** : निरीक्षण विभाग की स्थापना उसी वर्ष अर्थात् 1935 में हुई, जिस वर्ष भारतीय रिजर्व बैंक ने अपना कार्य आरंभ किया था। विभाग को भारतीय रिजर्व बैंक के परिचालन व कार्यप्रणाली के संबंध में निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ आश्वासन फीडबैक देने की जिम्मेदारी सौपी गई थी। विभाग कार्यो का परीक्षण और मूल्यांकित करता रहता है और रिजर्व बैंक के जोखिम प्रबंधन, आंतरिक नियंत्रण तथा गवर्नेंस प्रक्रिया की पर्याप्तंता और विश्विसनीयता के संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत करता है।

➢ **अंतरराष्ट्रीय विभाग :** रिजर्व बैंक में अंतरराष्ट्रीय विभाग का गठन 3 नवंबर 2014 को किया गया जिससे कि अंतरराष्ट्रीय वित्तीय कूटनीति और वैश्विक विनियामक मानकों के सृजन में सहभागिता पर ध्यानकेंद्रण को बढ़ावा दिया जा सके। यह विभाग अंतरराष्ट्रीय मंच पर भागीदारी करने और इस क्षेत्र में शीर्ष प्रबंध तंत्र के विचारों के आदान–प्रदान में सहायता देने और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक सहयोग में अपनी संस्था की सहभागिता के लिए जिम्मेदार है। यह विभाग इस क्षेत्र के मुद्दों पर रिजर्व बैंक के रुख के लिए अनुसंधान उन्मुखी कार्य करता है। विभाग रिजर्व बैंक की बाह्य सेवाओं और संपर्कों के लिए भी उत्तरदायी है जिसमें अन्य केंद्रीय बैंकों के साथ तकनीकी सहयोग के मामले शामिल हैं।

➢ **जोखिम निगरानी विभाग :** रिजर्व बैंक में व्यापारी–उद्यम जोखिम प्रबंधन प्रणाली के कार्यान्वयन हेतु जोखिम निगरानी विभाग का गठन किया गया है। परिचालनात्माक जोखिमों और वित्तीय जोखिमों की देखरेख हेतु इस विभाग में दो प्रभाग हैं। समूचे रिजर्व बैंक में व्यापक रूप से जोखिमों की प्रभावी पहचान, मूल्यां्कन एवं प्रबंधन हेतु जोखिम निगरानी विभाग को कार्य सौंपे गए हैं।

➢ **शोध एवं सांख्यकी विभाग :** बैंकिंग सेवाओं को बेहतर करने हेतु एवं उनमे विकास करने हेतु इस विभाग का गठन किया है।

8.4 भारतीय रिजर्व बैंक के कार्य

भारतीय रिजर्व बैंक की प्रस्तावना में बैंक के मूल कार्य इस प्रकार वर्णित किए गए हैं:–

"भारत में मौद्रिक स्थिरता प्राप्त करने की दृष्टि से बैंकनोटों के निर्गम को विनियमित करना तथा प्रारक्षित निधि को बनाएं रखना और सामान्य रूप से देश के हित में मुद्रा और ऋण प्रणाली संचालित करना, अत्यधिक जटिल अर्थव्यवस्था की चुनौती से निपटने के लिए आधुनिक मौद्रिक नीति फ्रेमवर्क रखना, वृद्धि के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए मूल्य स्थिरता बनाए रखना।"

सरल भाषा में भारतीय रिजर्व बैंक निम्नलिखित दो प्रकार के कार्य करता है, यथाः—

(i) केन्द्रीय बैंक के परम्परागत कार्य, और

(ii) विकासात्मक और प्रवर्तन संबंधी कार्य।

परम्परागत कार्य तो लगभग वही हैं जो एक केन्द्रीय बैंक सामान्यतया विकसित और अल्पविकसित दोनों प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में करता है। इसकी तुलना में अल्पविकसित देशों के केन्द्रीय बैंक के विकासात्मक व प्रवर्तन कार्य अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं, विशेष रूप से वहां के वित्तीय बाजारों की आवश्यकताओं से निर्धारित होते हैं। भारत में, कृषि वित्त की अपर्याप्यता और दीर्घकालीन औद्योगिक वित्त की विशिष्ट संस्थाओं के अभाव में ही मुख्यतया रिजर्व बैंक के विकासात्मक और प्रवर्तन कार्यों का निर्धारण किया गया है।

8.4.1 परम्परागत कार्य

भारतीय रिजर्व बैंक, बैंक ऑफ इंग्लैंड के मॉड्ल पर स्थापित किया गया था। इसलिये इसे वे सारे कार्य सौंपे गये थे जो बैंक ऑफ इंग्लैंड करता है। ये कार्य, जिन्हें प्रायः केन्द्रीय बैंक के परम्परागत कार्य कहते हैं, जो कि निम्नलिखित हैं :—

1. करेंसी नोटों का निर्गमन करना,
2. सरकार के बैंकर के रूप में कार्य करना,
3. बैंकरों के बैंक के रूप में कार्य करना,
4. बैंक का नियंत्रण व पर्यवेक्षण करना,
5. विदेशी विनिमय का प्रबंध व नियंत्रण करना तथा
6. साख का नियंत्रण करना ।

(1) करेंसी नोटों का निर्गमन : भारत में नोटों के निर्गमन का अधिकार केवल रिजर्व बैंक के पास है। भारत में करेंसी मुद्रा पूर्ति का एक महत्वपूर्ण भाग है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्गमित सभी करेंसी नोट भारत में वैध मुद्रा (समहंस जमदकमत) हैं। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम रुपये में 2, 5, 10, 20, 50, 100, 200, 500, 2,000, और बड़ी मूल्य के मूल्यवर्ग के नोट या ऐसे अन्य मूल्य वर्ग के नोट जो केन्द्रीय सरकार निर्दिष्ट करे। 100 रु. के नोट सबसे महत्वपूर्ण हैं क्योंकि कुल करेंसी नोटों के मूल्य के लगभग आधे मूल्य के नोट 100 रु. के ही हैं। रिजर्व बैंक द्वारा नोट निर्गमन की प्रणाली और नियमों पर इस इकाई में आगे चलकर विचार किया जाएगा।

(2) सरकार का बैंकर : भारतीय रिजर्व बैंक केन्द्रीय सरकार और राज्यों सरकारों का बैंकर है। बैंकर के रूप में यह सरकार को कई प्रकार की बैंकिंग सेवाएँ प्रदान करता है। इसमें जमा के रूप में मुद्रा स्वीकार करना, चेकों द्वारा कोष निकालना, सरकार को किये जाने वाले भुगतानों की प्राप्ति और कोषों का अंतरण शामिल होता है। रिजर्व बैंक पर केन्द्रीय सरकार को बैंकर की सेवाएँ प्रदान करने का सांविधिक दायित्व है। लेकिन राज्य सरकारें ये सेवाएँ इसके साथ किये गये करारों के आधार पर ही प्राप्त करती है। चूँकि रिजर्व बैंक श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार का कार्य करता है। अतः इसे इसके संबंध में काफी गहरी जानकारी होती है। इस

प्रकार रिजर्व बैंक सरकार को नये बांडों के निर्गमित की राशियों, शर्तों, और समय के बारे में उपयोगी परामर्श दे सकता है।

(i) ट्रेजरी बिल अब केन्द्रीय सरकार के सार्वजनिक ऋण का एक महत्वपूर्ण भाग है। ट्रेजरी बिलें रिजर्व बैंक द्वारा केन्द्रीय सरकार के एजेन्ट के रूप में निगमत किये जाते हैं।

(ii) सार्वजनिक ऋण का प्रबन्ध करने के अलावा रिजर्व बैंक सरकार को अल्पकालीन अग्रिम भी प्रदान करता है। सरकार के राजस्व में कमी होने से जो अस्थायी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं उन्हें दूर करने के लिये ये अल्पकालीन अग्रिम प्रदान किये जाते हैं।

(iii) अन्त में रिजर्व बैंक सरकार के परामर्शदाता के रूप में कार्य करता है। रिजर्व बैंक के पास विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित विशेषज्ञ होते हैं अतः यह न केवल बैंकिंग और वित्तीय मामलों में सरकार को सलाह देने की स्थिति में है बल्कि आर्थिक नियोजन के मामलों में भी सलाह देने में समर्थ है।

(3) बैंकरों का बैंक : अन्य केन्द्रीय बैंकों की भाँति, भारतीय रिजर्व बैंक जनता या व्यापारिक फर्मों के साथ लेन–देन नहीं करता। यह केवल बैंकरों का बैंक है। व्यापारिक बैंक और सहकारी बैंक बिलों प्रतिभूतियों पर ऋण व अग्रिम के रूप में रिजर्व बैंक से वित्तीय सहायता प्राप्त करते हैं। रिजर्व बैंक को बैंकिंग का सुदृढ़ आधार पर विकास करने का कार्य भी सौंपा गया है। इसलिये यह बैंकों को अग्रिम देते समय उनकी वित्तीय स्थितियों, ऋण नीतियों और उनके द्वारा प्रस्तुत की गयी प्रतिभूतियों के आधार पर उनके बीच भेद करता है।

(4) बैंकों का नियंत्रण और पर्यवेक्षण : भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 और बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 के अन्तर्गत भारतीय रिजर्व बैंक को व्यापारिक बैंकों को नियंत्रित करने के व्यापक अधिकार दिये गये हैं। रिजर्व बैंक के व्यापारिक बैंकों के बारे में नियंत्रणात्मक कार्यों में लाइसेंस देना, शाखा विस्तार, उनकी परिसम्पत्तियों की तरलता, प्रबंध और कार्यप्रणाली की पद्धति, समामेलन, पुनर्निर्माण और परिसमापन आते हैं।

नियंत्रण के उद्देश्य से रिजर्व बैंक बैंकों का निरीक्षण करता है और उनसे विवरण और सूचना माँगता है। रिजर्व बैंक उसकी कार्य प्रणाली में सुधार करने के लिये उपाय सुझा सकता है। कोई भी कम्पनी जो भारत में बैंकिंग व्यवसाय करना चाहती है उसे बैंकिंग विनियमन अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार भारतीय रिजर्व बैंक से लाइसेंस लेना पड़ता है।

(5) विदेशी विनिमय का प्रबंध और नियंत्रण : विदेशी विनिमय के प्रबंध और नियंत्रण में तीन कार्य करने होते हैं **(i)** करेंसी का बाह्य मूल्य बनाये रखना **(ii)** देश के बाह्य कोषों का प्रबंध और **(iii)** विनिमय नियंत्रण। केन्द्रीय बैंक होने के नाते भारतीय रिजर्व बैंक से इन तीनों कार्यों को करने की अपेक्षा की जाती है। विदेशी विनिमय का नियंत्रण विदेशी विनिमय विनियमन अधिनियम, 1973 द्वारा होता है। केन्द्रीय सरकार द्वारा रिजर्व बैंक के परामर्श से बनायी गयी सामान्य नीति के अनुरूप रिजर्व बैंक इस अधिनियम को लागू करता है।

(6) साख नियंत्रण : अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुरूप साख नियंत्रण करना केन्द्रीय बैंक का शायद सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। इस देश में आर्थिक नीति का उद्देश्य कीमत स्थिरता के साथ संवृद्धि है। मुख्यतया साख

नियंत्रण पर निर्भर मुद्रा नीति भी इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये कार्य करती हैं। इस प्रकार रिजर्व बैंक के साख नियंत्रण कार्य का विशेष महत्व है। साख की पूर्ति का नियमन करने के लिये रिजर्व बैंक मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों प्रणालियों का प्रयोग करता है। इन पर इस इकाई में आगे विचार किया गया है।

8.4.2 विकासात्मक और प्रवर्तन संबंधी कार्य

स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले की अवधि में रिजर्व बैंक कोई विकासात्मक कार्य नहीं करता था लेकिन उसके बाद की अवधि में यह बहुत से विकासात्मक व प्रवर्तन संबंधी कार्य कर रहा है। इन कार्यों को मोटे तौर पर चार वर्गों में बांटा जा सकता है :

(1) इसने अधिकांश कृषि साख को संस्थागत बनाया है। इसने पहले देशी बैंकरों को संगठित मुद्रा बाजार के साथ समन्वित करने का प्रयत्न किया। इसमें विफल होने पर इसने न केवल ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी साख के विकास को प्रोत्साहित किया बल्कि लाइसेंस देने के अपने अधिकार का इस तरह से प्रयोग किया कि व्यापारिक बैंक बड़ी संख्या में ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंच गये हैं।

(2) खास तौर से छोटे बचतकर्ताओं की बचत को एकत्र करने के लिये इसने भारतीय यूनिट ट्रस्ट (UTI) की स्थापना में क्रय भूमिका निभायी। जिन व्यक्तियों व संस्थाओं के पास निवेश निपुणता नहीं है उन्हें यूनिट ट्रस्ट सर्वोत्तम निवेश अवसर प्रदान करता है। यह अपने निवेशकों के लिये नियमित आय, तरलता, कम जोखिम और निपुण प्रबंध सुनिश्चित करता है।

(3) राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) की स्थापना में सहायता करके इसने कृषि वित्त में जो कमी थी उसे पूरा किया है। यह बैंक कृषि वित्त में शिखर संस्था है। इसकी आधी शेयर पूँजी रिजर्व बैंक ने दी है।

(4) रिजर्व बैंक ने भारत में कई विकास बैंकों की स्थापना में योगदान दिया है। वास्तव में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) की शुरू में स्थापना भारतीय रिजर्व बैंक के सहायक के रूप में हुई थी। 1976 में यह एक स्वायत्त संस्था बन गयी। वर्तमान में भारतीय जीवन बीमा निगम (LIC) ने इसका 51 प्रतिषत अंष प्राप्त कर इस पर नियंत्रण का अधिकार प्राप्त कर लिया है।

बोध प्रश्न 'क'

1. भारतीय रिजर्व बैंक के मुख्य कार्यों की सूची बनाइये।
2. भारतीय रिजर्व बैंक के विभिन विभागों में से कुछ मुख्य विभागों के बारे में बताएं।
3. बताइये कि निम्नलिखित कथनों में कौन सा सही है और कौन सा गलत :

   (i) भारतीय रिजर्व बैंक भारत का केन्द्रीय बैंक है।

   (ii) अपनी स्थापना के समय से ही रिजर्व बैंक सार्वजनिक क्षेत्रक का संगठन रहा है।

   (iii) भारत में नोट निर्गमन का अधिकार केवल भारतीय रिजर्व बैंक के पास है।

(iv) भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्गमित करेंसी नोट पूरी दुनियां में वैध मुद्रा है।

(v) भारतीय रिजर्व बैंक केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकारों इन दोनों का ही बैंकर है।

(vi) भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा ट्रेजरी बिल अपनी कार्यशील पूँजी जुटाने के लिये बेचे जाते हैं।

(vii) भारतीय रिजर्व बैंक बैंकरों का बैंक है।

(viii) सरकार के स्वामित्व वाले बैंकों सहित सभी व्यापारिक बैंकों को बैंकिंग व्यवसाय करने के लिये भारतीय रिजर्व बैंक से लाइसेंस लेना होता है।

(ix) भारत में विनिमय नियंत्रण का संचालन केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वतन्त्र रूप से किया जाता है।

(x) भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किये गये विकासात्मक और प्रवर्तन संबंधी कार्य वही हैं जो इंग्लैंड में बैंक ऑफ इंग्लैंड ने किये हैं।

8.5 नोट निर्गमन

जैसा कि इस इकाई में पहले बताया जा चुका है नोट निर्गमन भारतीय रिजर्व बैंक का एक मूल कार्य है। रिजर्व बैंक के पास नोट निर्गमन का एकाधिकार है। इस भाग में हम नोट निर्गमन की प्रणाली और इसके नियम पर विचार करेंगे।

8.5.1 नोट निर्गमन की प्रणाली :

रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया अधिनियम के अनुसार रिजर्व बैंक नोट निर्गमन का कार्य दो अलग–अलग विभागों के जरिये से करता है (1) निर्गमन विभाग और (2) बैंकिंग विभाग। निर्गमन विभाग समय–समय पर संचलन में लाये गये सभी करेंसी नोटों के लिये उत्तरदायी होता है। निर्गमन . विभाग को समान मूल्य की उपयुक्त परिसम्पत्तियाँ रखनी पड़ती है। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया अधिनियम के अनुसार, निर्गमन विभाग की उन सम्पत्तियों में जिनके विरुद्ध करेंसी नोट निर्गमित किये जाते हैं, सोना, विदेशी प्रतिभूतियाँ, रुपये वे सिक्के, भारत सरकार की प्रतिभूतियाँ और विनिमय पत्र और भारत में देय तथा रिजर्व बैंक द्वारा क्रय किये जा सकने वाले वचन–पत्र (*Promissory notes*) आते हैं। व्यवहार में, निर्गमन विभाग और बैंकिंग विभाग में विभेद का कोई आर्थिक महत्व नहीं है क्योंकि दोनों विभागों की परिसम्पत्तियाँ प्रायः एक से दूसरे के पास जाती. रहती है। तथापि, बैंकिंग विभाग की कुछ परिसम्पत्तियाँ निर्गमन विभाग अपने पास नहीं रखता। जो परिसम्पत्तियाँ निर्गमन विभाग द्वारा नहीं रखी जा सकतीं, वे हैं राज्य सरकारों की प्रतिभूतियाँ और सिक्के।

निर्गमन विभाग की जिम्मेवारियों में भारत सरकार के करेंसी प्रिंटिंग प्रेसों से नोटों के मुद्रण की व्यवस्था, जनता में करेंसी नोटों का वितरण और प्रयोग न किये जा सकने वाले नोटों को वापस लेना शामिल है। दूसरी ओर मुद्रा को संचलन में डालने या संचलन से वापस लेने के कार्य बैंकिंग विभाग करता है। एक उदाहरण की सहायता से इसे आसानी से समझा जा सकता है। मान लीजिये कि एक व्यापारिक बैंक रिजर्व बैंक के पास अपनी जमाओं में से 5 करोड़ रु. निकालना

चाहता है। यह कार्य बैंकिंग विभाग द्वारा किया जाएगा। सम्बद्ध बैंक को जिस मूल्यवर्ग की मुद्रा चाहिये, मिल जाएगी और रिजर्व बैंक में इसके खाते. को इसके द्वारा निकाली गयी राशि से डेबिट कर दिया जाएगा। ऐसी मांगों को पूरा करने के लिये बैंकिंग विभाग करेंसी का स्टॉक रखता है। जब कभी इसे लगता है कि करेंसी का स्टॉक पर्याप्त नहीं है तो यह उपयक्त परिसंपत्तियों के हस्तांतरण पर निर्गमन विभाग से करेंसी लेकर इसे पूरा कर लेता है। व्यापारिक बैंक रिजर्व बैंक में नियमित आधार पर जमायें भी करते हैं।

मान लीजिये कि एक बैंक रिजर्व बैंक को नकद राषि अपने खाते में जमा करने के लिये देता है, यह नकद राशि बैंकिंग विभाग प्राप्त करेगा और इसे करेंसी के स्टॉक के रूप में रखेगा। इसके कारण यदि बैंकिंग विभाग के पास करेंसी का अतिरिक्त स्टॉक हो जाता है तो इस अतिरिक्त नकद राशि को निर्गमन विभाग को हस्तांतरित कर दिया जाएगा और इसके बदले इसके बराबर के मूल्य की परिसम्पत्तियाँ ले ली जाएँगी। एक मूल्यवर्ग के करेंसी नोटों को दूसरों में बदलने के लिये या सिक्कों में बदलने के लिये निर्गमन विभाग प्रत्यक्ष रूप से जनता के साथ लेनदेन करता है। इसके लिये रिजर्व बैंक ने व्यापक व्यवस्था की है जैसे कि बहुत से शहरों में निर्गमन विभाग के कार्यालय रखना। अन्य केन्द्रों पर करेंसी की माँग को स्टेट बैंक और उसके सहायक बैंकों, अन्य राष्ट्रीयकृत बैंकों तथा सरकारी खजानों या उप–खजानों में। रिजर्व बैंक द्वारा रखी गई करेंसी तिजोरियों से पूरा किया जाता है। रिजर्व बैंक का एजेंट यानि स्टेट बैंक या कोई अन्य राष्ट्रीयकृत बैंक या खजाना, जहाँ तिजोरियाँ रखी गयी हैं, अपनी विश्यकतानसार उसमें से नकद राशि निकाल सकता है। तरन्त जितनी आवश्यकता है उससे अधिक नकद राशि को तिजोरी में जमा कराना होता है क्योंकि इन कोषों को बाद में जब भी आवश्यकता हो निकाला जा सकता है।

8.5.2 नोट निर्गमन के नियम

भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना के समय स्वर्ण मान (यानि वह मुद्रा प्रणाली जिसमें देश की मुद्रा सोने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से परिवर्तनीय थी) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विद्यमान था। इसलिये भारत में आनुपातिक कोष प्रणाली (proportional reserve system) को अपना कर नोट निर्गमन को सोने और विदेशी कोषों से जोड़ने के नियम का अनुसरण किया गया। इस प्रणाली के अन्तर्गत भारतीय रिजर्व बैंक को अपनी परिसम्पत्तियों के कम से कम 40% के बराबर सोने और विदेशी प्रतिभूतियों के कोष (1 जनवरी, 1949 तक स्टर्लिंग प्रतिभूतियाँ) रखने आवश्यक थे। किसी भी समय स्वर्ण के कोष 40 करोड़ रु. के मूल्य से कम नहीं होने चाहिये थे। केन्द्रीय बैंक से पूर्व स्वीकृति के आधार पर आनुपातिक कोष प्रणाली की शर्त को स्थगित किया जा सकता था। फिर भी, रिजर्व बैंक को वैधानिक रूप से अपेक्षित सोने और विदेशी प्रतिभूतियों के कोषों में कमी पर कर देना पड़ता था। नोट निर्गमन की यह प्रणाली लगभग 20 वर्षों तक ठीक–ठाक चली। क्योंकि इसने अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति पर नियंत्रण लगाया और इसलिये वस्तुओं और साधनों की कीमतों पर प्रभावी नियंत्रण रखा।

1956 में दूसरी पंचवर्षीय योजना को अपनाने से विकासात्मक कार्यों को बहुत तेज करना था। इसके अतिरिक्त मुद्रीकरण की प्रक्रिया भी तीव्र हो गयी। ऐसी परिस्थितियों में मुद्रा की मांग में वृद्धि होने की अपेक्षा थी जो आनुपातिक कोष प्रणाली के प्रतिबंधों के अन्तर्गत आसानी से पूरी नहीं की जा सकती थी। इसके अतिरिक्त यह भी महसूस किया गया कि करेंसी नोटों के निर्गमन के समर्थन के लिये विदेशी विनिमय को कोष में जमा रखने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं

होता, बल्कि यदि इनका उपयोग भुगतान शेष में अपरिहार्य घाटे को पूरा करने के लिये किया जाय तो यह इनका एक बड़े उद्देश्य के लिये उपयोग होगा। इसलिये 1956 में नोट निर्गमन की प्रणाली को अधिक लचीला बना दिया गया। **आनुपातिक कोष प्रणाली का स्थान न्यूनतम कोष प्रणाली ने ले लिया। इसका अर्थ है कि नोट निर्गमन प्राधिकरण पर सोने व विदेशी विनिमय कोषों के केवल एक निश्चित न्यूनतम रखने का बन्धन हैय शेष को उपयुक्त परिसम्पत्तियों में रखा जा सकता है।** भारतीय रिजर्व बैंक (संशोधन) अधिनियम, 1956 के अनुसार यह न्यूनतम कोष विदेशी प्रतिभूतियों में 400 करोड़ रु. और सोने में 115 करोड़ रु. निर्धारित किया गया। इस प्रकार दोनों का योग 515 करोड़ रु. हुआ। 1957 में वे प्रावधान संशोधित किये गये जो नोट निर्गमन के समर्थन के कोष की न्यूनतम राशि को विनियमित करते थे और सोने व विदेशी विनिमय की न्यूनतम राशि को 200 करोड़ रु. निश्चित किया गया, इसमें से सोने के कोष का न्यूनतम मूल्य 115 करोड़ रु. था। 1957 के दूसरे संशोधन अधिनियम ने रिजर्व बैंक को यह अधिकार प्रदान किया कि वह केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति से विदेशी प्रतिभूतियों में कोष रखने की शर्त को छोड़ सकता है। लेकिन 115 करोड़ रु. के स्वर्ण कोष तो सदा ही रखने होंगे। नोट निर्गमन की यह प्रणाली निस्संदेह लोचशील है लेकिन यह स्फीतिकारी प्रवृत्तियों पर कोई नियंत्रण प्रदान नहीं करती।

बोध प्रश्न 'ख'

1. 1935 में भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद इस देश में समय–समय पर अपनायी गयी नोट निर्गमन की दो पद्धतियों के नाम बताइये।

   (i) ....

   ....

   (ii) ....

   ....

2. बताइये कि निम्नलिखित कथनों में कौन सा सही है और कौन सा गलत :

   (i) भारतीय रिजर्व बैंक नोट निर्गमन का संचालन निर्गमन विभाग और बैंकिंग विभाग के जरिये करता हैं।

   (ii) संचलन में लाये सभी करेंसी नोटों के लिये बैंकिंग विभाग उत्तरदायी है।

   (iii) करेंसी नोटों के निर्गमन का समर्थन उपयुक्त परिसम्पत्तियों द्वारा किया जाता है।

   (iv) मुद्रा को वास्तविक संचलन में लाने का कार्य निर्गमन विभाग करता है।

   (v) करेंसी नोटों को सिक्कों में या एक मूल्य वर्ग के नोटों को दूसरों में बदलने के लिये निर्गमन विभाग जनता से प्रत्यक्ष रूप में लेन–देन करता है।

   (vi) जब भारतीय रिजर्व बैंक स्थापित किया गया था तो न्यूनतम कोष प्रणाली अपनायी गयी थी।

(vii) जब इस देश में आनुपातिक कोष प्रणाली अपनायी गयी थी तो कुल परिसम्पत्तियों के 40 करोड़ रुपये से कम 40% के बराबर स्वर्ण व विदेशी प्रतिभूतियों का कोष रखना आवश्यक था। .

(viii) आनुपातिक कोष प्रणाली ने करेंसी नोटों के स्फीतिकारी विस्तार पर रोक लगायी।

(ix) नोट निर्गमन की न्यूनतम कोष प्रणाली नोट निर्गमन में लोचशीलता के नियम का पालन करती हैं।

(x) आजकल नोट निर्गमन के समर्थन में स्खे जाने वाले स्वर्ण कोष की न्यूनतम राशि 515 करोड़ रु. से कम नहीं हो सकती

8.6 साख नियंत्रण

जैसा कि पहले बताया जा चुका है साख का नियंत्रण भारतीय रिजर्व बैंक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। वास्तव में रिजर्व बैंक के साख नियंत्रण के द्वारा सरकारें सारी आर्थिक क्रियाओं और कीमत स्तर को प्रभावित करने का प्रयत्न करती है। इस भाग में हम पहले भारतीय रिजर्व बैंक की मुद्रा नीति के उद्देश्य पर विचार करेंगे क्योंकि ये ही साख नियंत्रण के लिये रुपरेखा प्रदान करते हैं। इसके बाद सामान्य साख नियंत्रण के उपकरणों और प्रत्यक्ष साख नियमन पर विचार किया जाएगा।

8.6.1 मुद्रा नीति के उद्देश्य

मुद्रा नीति से आशय रोजगार व उत्पादन के अनुकूलतम स्तर, कीमत स्थिरता, भुगतान शेष संतुलन तथा राज्य द्वारा निर्धारित किसी अन्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिये केन्द्रीय बैंक द्वारा अपने नियंत्रण के अन्तर्गत के विभिन्न उपकरणों द्वारा मुद्रा और साख की पूर्ति का नियमन करना है। आजकल भारत में मुद्रा नीति का मुख्य उद्देश्य रोजगार के ऊँचे स्तर व कीमत स्थिरता के साथ आर्थिक संवृद्धि को लाना माना जाता है। इसने उद्योग, व्यापार व कृषि को पर्याप्त मात्रा में साख की सुविधा उपलब्ध कराकर आर्थिक संवृद्धि को प्रेरित किया है। इससे भारतीय रिजर्व बैंक के लिये ऐसी नीतियों का पालन करना आवश्यक हो गया जिनसे साख का विस्तार होता है, लेकिन ऐसी नीति से मुद्रास्फीति हो सकती है।

इसलिये रिजर्व बैंक की कोशिश रही है कि साख विस्तार में सावधानी बरते। स्फीतिकारी दबावों को नियंत्रण में रखने के लिये इसे साख विस्तार को सीमित करना होता है और साख के प्रवाह को सामाजिक रूप से अवांछनीय क्रियाओं जैसे सट्टेबाजी व जमाखोरी में जाने से रोकना होता है। इस प्रकार भारतीय रिजर्व बैंक का कार्य आन्तरिक कीमत स्थिरता को प्रतिकूल रूप में प्रभावित किये बिना विकास की गति को बनाये रखने के लिये साख की पर्याप्त उपलब्धि सुनिश्चित करना है। नियंत्रित विस्तार की नीति बहुधा नीति की विशेषता बताई जाती है।

8.6.2 सामान्य साख नियंत्रण की पद्धतियाँ

जैसा कि पिछली इकाई में बताया गया था साख नियंत्रण प्रणालियाँ दो प्रकार की होती हैं। **(i)** सामान्य या मात्रात्मक और **(ii)** चयनात्मक या गुणात्मक। पहली श्रेणी की साख नियंत्रण प्रणालियाँ बैंक दर, खुली बाजार क्रियाएँ और कोष से संबंधित हैं। ये विधियाँ व्यापारिक बैंक के ऋण योग्य कोषों को प्रभावित करके साख की मात्रा को प्रभावित करती हैं और इस प्रकार कुल मुद्रा पूर्ति को प्रभावित करती हैं। चयनात्मक या गुणात्मक साख नियंत्रण का प्रभाव साख की मात्रा की बजाय साख की दिशा पर होता है। सामान्य या मात्रात्मक साख नियंत्रण की प्रणालियाँ निम्नलिखित हैं :

(1) बैंक दर : बैंकदर ब्याज की वह दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों को अग्रिम देता है। केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों को अनुमोदित प्रतिभूतियों पर या उपयुक्त बिलों व अन्य व्यापारिक प्रलेखों के क्रय या पुर्नबट्टे पर वित्तीय सहायता प्रदान करता है। बैंक दर में परिवर्तन करने का उद्देश्य केन्द्रीय बैंक से कोष प्राप्त करने की लागत को परिवर्तित करना है। यदि बैंक दर बदलती है तो इससे बाजार ब्याज दरों की संरचना बदलती है जिससे आर्थिक क्रियाओं का स्तर प्रभावित होता है। जब स्फीतिकारी स्थिति होती है तो मुद्रा पूर्ति को कम करने की नीति अपनानी होती है, इसलिये बैंक दर को इस आशा से बढ़ा दिया जाता है कि इससे अनावश्यक निवेश क्रियाएँ नियंत्रित होंगी। दूसरी ओर, मंदी की स्थिति में बैंक दर को इस आशा से घटाया जाता है कि यह निवेश क्रियाओं को प्रेरित करेगी और समस्त आर्थिक क्रियाओं को प्रोत्साहन मिलेगा। लेकिन भारत में बैंक दर की प्रभावषीलता सीमित है। बैंक दर में परिवर्तनों का बहुत कम प्रभाव पड़ता है। ये केवल रिजर्व बैंक की साख नीति की दिशा को दर्शाते हैं। इसी कारण बैंक दर में परिवर्तनों के साथ लगभग सदा ही साख नियंत्रण की किसी अन्य प्रणाली का भी उपयोग किया जाता है।

(2) खुली बाजार क्रियाएँ : यह साख नियंत्रण की ऐसी प्रणाली है जिसके द्वारा केन्द्रीय बैंक प्रत्यक्ष रूप से बाजार में अपनी क्रियाओं से बैंकों की तरलता की स्थिति को बदलता है। खुली बाजार क्रियाओं में सरकारी प्रतिभूतियों, विदेशी विनिमय, स्वर्ण, बिलों और कम्पनियों के शेयरों का क्रय–विक्रय केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है। लेकिन भारत में खुली बाजार क्रियाएँ साधारणतया सरकारी प्रतिभूतियों (जिनमें ट्रेजरी बिलें भी शामिल हैं) के क्रय–विक्रय तक ही सीमित हैं।

खुली बाजार क्रियाओं के दो पहलू हैं। पहला है प्रतिभूतियों को खरीदना । जब केन्द्रीय बैंक बैंकों में प्रतिभूतियाँ खरीदता है तो बैंकों के नकद कोष बढ़ जाते हैं और इससे उनकी साख निर्माण की सामर्थ्य बढ़ती है। दूसरा पहलू है प्रतिभूतियों को व्यापारिक बैंकों को बेचना जिससे उनके नकद कोष कम हो जाते हैं। इससे बैंक की माख निर्माण सामर्थ्य कम हो जाती है। भारत में सरकारी प्रतिभूतियों का बाजार बहुत छोटा है और यह खुली बाजार क्रियाओं पर एक प्रतिबंध है। सरकारी प्रतिभूतियों का एक बड़ा भाग कुछ प्रमुख वित्तीय संस्थाओं के पास होता है और उनके लेन–देन की मात्रा सीमित होती है। इसके अतिरिक्त, ट्रेजरी बिल बाजार के लगभग न होने से रिजर्व बैंक की सारी खुली बाजार क्रियाएँ केवल सरकारी बांडों तक ही सीमित हैं। सरकारी प्रतिभूतियों का बाजार छोटा होने से रिजर्व बैंक द्वारा बड़े पैमाने पर। खुली बाजार क्रियाओं का कोई भी प्रयत्न अनावश्यक रूप में प्रतिभूतियों की कीमतों को अस्त व्यस्त कर देगा।

(3) कोष संबंधी शर्ते : केन्द्रीय बैंक कोष संबंधी शर्तों में परिवर्तन करके व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण सामर्थ्य को प्रभावित कर सकता है। यह साख

नियंत्रण का एक प्रभावी और प्रत्यक्ष उपकरण है। भारत में रिजर्व बैंक बैंकिंग प्रणाली की तरलता का दो पूरक विधियों से नियमन करता है : (i) नकद कोष अनुपात, और (ii) सांविधिक तरलता अनुपात। व्यापारिक बैंकों पर जमाओं का एक निश्चित प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास नकद कोष के रूप में रखने का सांविधिक दायित्व है। यह नकद कोष अनुपात रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित किया जाता है और जमाओं के 3 से 15 प्रतिशत के बीच हो सकता हैं। **जब कभी रिजर्व बैंक साख के विस्तार पर रोक लगाना चाहता है तो वह नकद कोष अनुपात बढ़ा देता है। विलोमतः, जब साख विस्तार अधिक करना होता है तो नकद कोष अनुपात को घटा दिया जाता है।**

नकद कोप अनुपात की प्रभावषीलता व्यापारिक बैंकों की अपने पास सरकारी प्रतिभूतियों को तरलता में परिवर्तित करके इसके प्रभाव को समाप्त करने की प्रवृति पर निर्भर करती है। इसलिये नकद कोष अनुपात में परिवर्तन के साथ–साथ माविधिक तरलता अनुपात में परिवर्तन भी आवश्यक है। भारत में 1962 तक व्यापारिक बैंकों को अपने जमा दायित्वों के विरुद्ध 20 प्रतिशत का तरलता अनुपात बनाये रखना होता था।

तरल परिसम्पत्तियों में अपने पास नकदी की राशि, केन्द्रीय बैंक या अन्य बैंकों के पास रखी नकदी, स्वर्ण और भार–रिहत अनुमोदिन प्रतिभूतियाँ शामिल की जाती थीं। 1962 तक सांविधिक प्रावधान् ये थे कि व्यापारिक बैंक कुछ सरकारी प्रतिभूतियों को, जब भी नकद कोष अनुपात बढ़ाया जाता था, नकदी में बदल सकते थे। अतः उनकी साख निर्माण सामर्थ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। इसलिये बैंकिंग विनियमन अधिनियम में संशोधन किया गया जिससे कि इस कमी को दर किया जा सके। अव सांविधिक रूप से नकद कोष अनुपात के रूप में तरल परिसम्पत्तियाँ रखनी होती हैं और इनमें रोकड़ शेष (*cash balance*) को शामिल नहीं किया जाता। सांविधिक तरलता अनुपात भी रिजर्व बैंक द्वारा निधारित किया जाता है।

8.6.3 प्रत्यक्ष साख विनियमन

बैंकों के कोषों या साख की लागत पर नियंत्रण के अलावा साख के विनियमन के अन्य उपायों को प्रत्यक्ष साख विनियमन या गणात्मक साख नियंत्रण कहते हैं। व्यापक रूप से प्रयोग की जाने वाली साख नियंत्रण की गणान्मक प्रणालियाँ हैं :

(i) चयनात्मक साख नियंत्रण, और

(ii) नैतिक आग्रह।

साख नियंत्रण की सामान्य या मात्रात्मक प्रणालियाँ सुसंगठित मुद्रा बाजारों में प्रभावी होती हैं लेकिन ये उन देशों में बहुत प्रभावी नहीं होती जहाँ मुद्रा बाजार अल्पविकसित हैं। अल्पविकसित मुद्रा बाजारों के लिये गुणात्मक प्रणालियाँ अधिक उपयुक्त हैं क्योंकि ये बैंक के साधनों को राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुरूप अर्थव्यवस्था के विशेष क्षेत्रों में वितरण या निर्देशन को नियमित करने में सहायता करती हैं। वास्तव में, गुणात्मक साख नियंत्रण उपाय सामान्य साख नियंत्रण के पूरक माने जाते हैं और जब इनका सामान्य साख नियंत्रण उपायों के साथ प्रयोग किया जाना है तो ये अधिक प्रभावी होते हैं।

(1) चयनात्मक साख विनियमन : रिजर्व बैंक बैंकिंग नियमन अधिनियम के अन्तर्गत चयनात्मक साख नियंत्रण का प्रयोग करता है। भारत में चयनात्मक साख

नियंत्रण की निम्नलिखित मुख्य प्रणालियाँ हैं : (i) चुनी हुई वस्तुओं के विरुद्ध ऋण देने की सीमान्त अन्तर शर्तेय (ii) साख की अधिकतम सीमा, और (iii) निर्दिष्ट वस्तुओं के विरुद्ध अग्रिमों पर न्यूनतम व्याज दर लेना। पहली दो प्रणालियाँ साख की मात्रा को नियंत्रित करती हैं और तीसरी प्रणाली साख की लागन पर प्रभाव द्वारा कार्य करती है। रिजर्व बैंक द्वारा इन उपकरणों का इस प्रकार प्रयोग किया जाता है कि ये विशेष स्थितियों की अपेक्षाओं को पूरा करें और साख के प्रवाह को अपेक्षित दिशा दें। विशेष वस्तु के लिये सीमा अन्तर का निर्धारण उस क्षेत्र की बैंक साख की सामाजिक व आर्थिक दृष्टि में न्यायसंगत आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया जाता हैं।

ऋण देने वाले बैंकों की नियंत्रित वस्तुओं के विरुद्ध ऋण देने की सामर्थ्य को सीमित करने के लिये अधिकतम सीमाएँ निश्चित की जाती हैं,विशेष क्षेत्रों में साख को बढ़ाने या घटाने के उद्देश्यों को पूरा करने के लिये ब्याज दर प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है। वास्तव में इसी प्रणाली के द्वारा कुछ प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों को रियायती ब्याज दरों पर साख उपलब्ध कराया जाता है।

(2) **नैतिक आग्रह :** नैतिक आग्रह का आशय केन्द्रीय बैंक द्वारा व्यापारिक बैंकों को दी जाने वाली उस सलाह से है जो उनके ऋण देने व अन्य कार्यों के बारे में इस आशा से दी जाती है कि उसे माना जाएगा और व्यापारिक बैंक उसी के अनुसार कार्य करेंगे। नैतिक आग्रह की वस्तु–विषय मात्रात्मक हो सकती है यानि एक बैंक द्वारा दी जाने वाली साख की मात्रा निश्चित की जा सकती है। यह गुणात्मक भी हो सकता है यानि बैंकों को सलाह दी जा सकती है कि वे कुछ वस्तुओं के विरुद्ध ऋण न दें क्योंकि इन वस्तुओं में सट्टेबाजी की प्रवृत्तियाँ हो सकती हैं। भारत में रिजर्व बैंक ने इस विधि को काफी उपयोगी पाया है। प्रमुख व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद से नैतिक आग्रह अधिक प्रभावी हो गया है। भारत में नैतिक आग्रह के प्रभावी होने का एक अतिरिक्त कारण यह भी है कि इसे रिजर्व बैंक की प्रत्यक्ष विनियमन की व्यापक शक्ति से समर्थन मिलता है।

बोध प्रश्न 'ग'

1. भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा प्रयोग किये जाने वाले साख नियंत्रण की तीन मात्रात्मक प्रणालियाँ बताइये।

   (i) ....

   (ii) ....

   (iii) ....

2. भारतीय रिजर्व बैंक प्रयोग की जाने वाली चयनात्मक साख नियंत्रण की तीन विधियाँ बताइये।

   (i) ....

   (ii) ....

   (iii) ....

3. बताइये कि निम्नलिखित कथनों में से कौन–सा सही है और कौन सा गलत :

(i) मुद्रा नीति का तात्पर्य केन्द्रीय बैंक की करेंसी नोटों के निर्गमन की नीति से है।

(ii) भारतीय मुद्रा नीति की विशेषता यह है कि यह एक नियंत्रित विस्तार की नीति है।

(iii) बैंक दर केन्द्रीय बैंक द्वारा व्यापारिक बैंकों से उन्हें दिये गये अग्रिमों पर ली गयी ब्याज की दर है।

(iv) भारत में बैंक दर नीति साख नियंत्रण की अपेक्षाकृत एक निष्प्रभावी प्रणाली है।

(v) खुली बाजार क्रियाओं का आशय केन्द्रीय बैंक द्वारा खुले बाजार में सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय करने से हैं।

(vi) खुली बीजार क्रियाएँ भारत में काफी प्रभावी है।

(vii) भारतीय रिजर्व बैंक जब नकद कोष अनुपात और सांविधिक तरलता अनुपात का प्रयोग करता है तो ये साख विनियमन के लिये प्रभावी सिद्ध होते हैं।

(viii) क्योंकि भारत में मुद्रा बाजार अल्पविकसित है इसलिये इस देश में चयनात्मक माख नियंत्रणों की कोई प्रासंगिकता नहीं है।

(ix) रिजर्व बैंक ने पाया है कि नियमन की व्यापक शक्तियों द्वारा समर्थन से नैतिक आग्रह की प्रणाली काफी उपयोगी सिद्ध हुई है।

8.7 भारतीय रिजर्व बैंक की मुद्रा नीति की मूल्यांकन

विकसित देशों में मुद्रा नीति का उद्देश्य साधारणतया कीमत स्थिरता के साथ पूर्ण रोजगार होता है। लेकिन विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में इसका उद्देश्य रोजगार के ऊँचे स्तर व कीमत् स्थिरता के साथ संवृद्धि को अनुकूलतम करना होता है। भारत जैसे देश में जहाँ हर समय संवृद्धि की दर को तीव्र करने का प्रयत्न किया जाता है, उद्योग, कृषि और व्यापार संबंधी साख की उचित आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये साख और मुद्रा पूर्ति का निरंतर विस्तार करना पड़ता है। इसलिये भारतीय रिजर्व बैंक साख को सीमित करने की नीति नहीं अपना सकता। इन परिस्थितियों में रिजर्व बैंक की केवल यह जिम्मेवारी है कि वह अनुत्पादक व सट्टेबाजी के लिये साख की उपलब्धता को रोके। **अतः भारतीय रिजर्व बैंक का यह दावा सही ही है कि इसकी मुद्रा नीति एक नियंत्रित विस्तार की नीति है।**

इस इकाई में आपको पहले बताया जा चुका है कि भारतीय रिजर्व बैंक के पास साख नियंत्रण के व्यापक अधिकार हैं। ये अधिकार मात्रात्मक और चयनात्मक दोनों प्रकृति के हैं। इस भाग में हम . इस बात पर विचार करेंगे कि भारतीय रिजर्व बैंक ने विकासात्मक नियोजन के वर्षों में मौद्रिक नियंत्रण के इन उपकरणों का कितने प्रभावी तरीके से प्रयोग किया है। हम अपने विश्लेषण को इस अवधि तक इसलिये सीमित कर रहे हैं कि 1951 से पहले भारतीय रिजर्व बैंक की कोई सुनिश्चित मुद्रा नीति नहीं थी।

विकासात्मक नियोजन का युग 1951 में शुरू हुआ। यह वह समय था जब दुनिया के अधिकांश देश सस्ती मुद्रा नीति का पालन कर रहे थे, जिसका अर्थ था

कि बैंक दर नीची रखी गयी थी। 1951 में कोरिया युद्ध से स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न हुए और भारतीय रिजर्व बैंक ने अपनी बैंक दर 3% से बढ़ाकर 3.5% कर दी। पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान मुद्रा पूर्ति (M_3) में वार्षिक वृद्धि केवल 3.4% थी, जो काफी कम थी। लेकिन उत्पादन में वृद्धि से व अर्थव्यवस्था के बढ़ते हुए मुद्रीकरण से उत्पन्न मुद्रा की मांग को पूरा करने के लिये यह पर्याप्त नहीं थी। अतः थोक कीमतों में 2.7% प्रति वर्ष कमी हुई। दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में स्थिति में बहुत. परिवर्तन आया। औद्योगीकरण पर अधिक जोर देने व अर्थव्यवस्था को तेजी से आगे बढ़ाने के प्रयत्नों से साख की माँग तेजी से बढ़ी। अतः 1956 से 1961 की अवधि में मुद्रा पर्ति (M_3) में वार्षिक वृद्धि 8.2 प्रतिशत थी। मुद्रा पूर्ति की वृद्धि को संयत करने के लिये रिजर्व बैंक ने न केवल मई,1957 में बैंक दर को बढ़ाकर 4% कर दिया बल्कि चयनात्मक साख नियंत्रण का भी प्रयोग किया। तथापि कीमत स्तर 6.3% वार्षिक दर से बढ़ा।

तीसरी योजना की अवधि में राष्ट्रीय आय में केवल 2.3% वार्षिक वृद्धि हुई लेकिन मंहगाई में प्रति वर्ष वृद्धि 9.1% हुई। इससे स्फीतिकारी स्थिति उत्पन्न हुई जिसे रिजर्व बैंक ने बैंक दर बढ़ाकर रोकने का प्रयत्न किया। जनवरी, 1963 में बैंक दर 4.5% कर दी गयी, अक्टूबर,1964 में 5% कर दी गयी और मार्च, 1965 में इसे 6% कर दिया गया। 1960 से 1964 तक भारतीय रिजर्व बैंक ने पुनर्वित्त प्रदान करने की कोटा व स्लैब पद्धति लागू की और 1964 में विभेदक ब्याज दरों की प्रणाली अपनायी। इन दोनों उपकरणों का उद्देश्य साख पर रोक लगाना था। सितम्बर, 1964 में , सांविधिक तरलता अनुपात को 20% से बढ़ाकर 25% कर दिया गया। यदि उत्पादन की स्थिति संतोषजनक होती तो ये उपाय प्रभावी सिद्ध होते। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। वस्तुओं की पूर्ति बढ़ाने में असफल होने से साख नियंत्रण उपाय अपनाने के बावजूद मुद्रा की पूर्ति में विस्तार स्फीतिकारी सिद्ध हुआ। 1967–68 में जब पूर्ति की स्थिति उत्पादन के क्षेत्र में प्रोत्साहक परिणामों के कारण सुधरी तब स्फीतिकारी दबाव कम हुए और बैंक दर को 6% से घटाकर 5% कर दिया गया।

चौथी पंचवर्षीय योजना की अवधि में उत्पादन के क्षेत्र में असफलताओं और सुरक्षा व्यय व शरणार्थी सहायता पर व्यय में वृद्धि से स्फीतिकारी दबाव बढ़े। इस अवधि में मुद्रा की पूर्ति को तीव्र दर से नहीं बढ़ने देना चाहिये था। लेकिन M_3 में प्रति वर्ष वृद्धि 16.2% हुई, जिससे अवश्य ही स्फीतिकारी दबाव बढ़े। फिर भी, रिजर्व बैंक ने मौद्रिक नियंत्रण के विभिन्न उपाय अपनाये। शुद्ध तरलता अनुपात अप्रैल, 1970 में 30% था, इसे जनवरी, 1971 में बढ़ाकर 34% कर दिया गया और 1973 में फिर बढ़ाकर 37% कर दिया गया। मई,1973 में बैंक दर को 6% से बढ़ाकर 7% कर दिया गया। नकद कोष अनुपात को 3% से बढ़ाकर 5% किया गया और सितम्बर, 1973 में इसे और बढ़ाकर 7, कर दिया गया। लेकिन ये सभी उपाय स्फीतिकारी दबावों को रोकने में असफल हुए और 1973–74 में थोक कीमतें 20.2% बढ़ीं। पांचवी पंचवर्षीय योजना की अवधि में राष्ट्रीय आय तो 5.3% वार्षिक दर से बढ़ी लेकिन मुद्रा पूर्ति 17.9% दर से बढ़ी। इससे स्फीतिकारी स्थिति में सुधार नहीं हुआ। अतः न केवल रिजर्व बैंक ने बैंक दर को 7% से बढ़ाकर 9% कर दिया बल्कि सरकार ने भी राजकोषीय उपाय अपनाये। इन उपायों से कुछ हद तक स्फीतिक स्थिति सुधरी और इसने रिजर्व बैंक को स्फीतिकारी स्थिति के बारे में कुछ हद तक आत्मसंतुष्ट बना दिया। इसके परिणामस्वरूप मुदा नीति की

मुद्रास्फीति पर पकड़ ढीली हो गयी। नकद कोष अनुपात को जून, 1974 में 7% से घटाकर 5% कर दिया गया और दिसम्बर, 1974 में 4% कर दिया गया। ये रियायतें अनावश्यक थीं। 1979–80 में सूखा पड़ा। इस वर्ष राष्ट्रीय आय में 5% कमी होने पर भी M_3 की पूर्ति को 17.3% बढ़ने दिया गया। इसके परिणामस्वरूप कीमतें 17.2ः बढ़ीं।

छठी योजना की अवधि में मौद्रिक अधिकारियों में आत्मसंतुष्टि झलकी। इस अवधि में राष्ट्रीय आय में 5.3% प्रतिवर्ष वृद्धि होने पर भी कीमतें 9.3% की दर से बढ़ी। यह M_3 में 16.9% की वार्षिक वृद्धि के कारण हुआ। जुलाई, 1981 में बैंक दर को बढ़ाकर 10% करने तथा नकद कोष अनुपात और सांविधिक नकदी अनुपात को 1984 में क्रमशः 9% और 35% निश्चित करने का स्फीतिकारी स्थिति पर नगण्य प्रभाव पड़ा।

सातवीं योजना की अवधि में मुद्रा पूर्ति (M_3) और राष्ट्रीय आय क्रमशः 17. 6% और 5.4% दरों से बढ़ी। इसी अवधि में थोक कीमतें 7% वार्षिक दर से बढ़ी। यह दर्शाता है कि रिजर्व बैंक ने मुद्रा पूर्ति के क्षेत्र में सावधानीपूर्वक कार्य नहीं किया। सातवीं योजना की अवधि में नकद कोष अनुपात कई बार बढ़ाया गया और अन्त में जून 30, 1988 से 11% निश्चित किया गया। साविधिक तरलता अनुपात भी कई बार बढ़ाया गया और अप्रैल, 1987 में इसे 38% निश्चित किया गया। ये तथा इनके साथ चयनात्मक साख नियंत्रण उपाय सामान्य कीमत स्तर में स्थिरता लाने में अप्रभावी सिद्ध हुए। 1990–91 में स्फीतिकारी स्थिति काबू में बाहर हो गयी क्योंकि थोक कीमतों में लगभग 12% वृद्धि हुई। इस अवधि में रिजर्व बैंक ने कीमत वृद्धि को रोकने के लिये कोई खास उपाय नहीं किये। सितम्बर, 1990 में केवल सांविधिक तरलता अनुपात को बढ़ाकर 38.5% कर दिया।

सारांश के रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय रिजर्व बैंक की मुद्रा नीति कमजोर रही है। ऐसा लगता है कि हर समय मौद्रिक नियंत्रण के कठोर उपाय अपनाने में झिझक रही है। यह संभव है कि रिजर्व बैंक की प्रभावी उपाय अपनाने की दुविधा का कारण यह रहा हो कि कठोर साख नियंत्रण उपायों के अपनाने से संवृद्धि दर में कमी होने का खतरा होता है।

बोध प्रश्न 'घ'

1. भारतीय रिजर्व बैंक की मुद्रा नीति एक वाक्य में बताइये।

   ....
   ....
   ....
   ....

2. बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :

   (i) भारत में मुद्रा नीति का सारा जोर साख को सीमित करने पर नहीं हो सकता।

   (ii) अपनी स्थापना के बाद पहले 16 वर्षों में रिजर्व बैंक ने अन्य केन्द्रीय बैंकों की भाँति सस्ती मुद्रा नीति अपनायी।

(iii) पहली योजना की अवधि में मुद्रा पूर्ति में वृद्धि दो अंकों में थी, जिससे स्फीतिकारी स्थिति पैदा हुई।

(iv) दूसरी पंचवर्षीय योजना को अवधि में M_3 में वार्षिक वृद्धि 8.2% थी।

(v) तीसरी योजना की अवधि में 9.1% वार्षिक वृद्धि अधिक नहीं थी क्योंकि इस अवधि में उत्पादन के क्षेत्र में अर्थव्यवस्था की स्थिति बहुत अच्छी थी।

(vi) चौथी योजना की अवधि में मद्रास्फीति को रोकने के लिये भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अपनाये गये विभिन्न उपाय अप्रभावी सिद्ध हुए।

(vii) पांचवी योजना की अवधि में M_3 में वार्षिक वृद्धि दर 17.9% थी।

(viii) जब रिजर्व बैंक ने 1979–80 में M में 17.3% वृद्धि की अनुमति दी तो उसकी मुद्रा नीति पूर्णतया विवेकहीन नहीं थी।

(ix) भारत में छठी योजना की अवधि में मौद्रिक अधिकारी स्फीतिकारी दबावों के प्रति कुछ आत्मसंतुष्ट से थे।

(x) सातवीं योजना के दौरान रिजर्व बैंक द्वारा अपनाये गये साख नियंत्रण संबंधी विभिन्न उपाय काफी प्रभावी सिद्ध योंकि इस अवधि में कीमतें स्थिर रहीं।

8.8 सारांश

भारतीय रिजर्व बैंक की भारत के केन्द्रीय बैंक के रूप में स्थापना अप्रैल, 1935 को हुई। यह मूलतः शेयरहोल्डरों के बैंक के रूप में स्थापित किया गया था लेकिन 1949 में इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। रिजर्व बैंक केन्द्रीय बैंक के परम्परागत और विकासात्मक व प्रवर्तन दोनों कार्य करता है। इसके परम्परागत कार्य हैं : i) करेंसी नोटों का निर्गमन करना, ii) सरकार के बैंकर के रूप में कार्य करना, iii) बैंकरों के बैंक के रूप में कार्य करना, iv) बैंक का नियंत्रण व पर्यवेक्षण करना, v) विदेशी विनिमय का प्रबन्ध व नियंत्रण करना, और vi) साख नियंत्रण करना।

भारत में आर्थिक नीति का मुख्य उद्देश्य स्थिरता के साथ संवृद्धि है और रिजर्व बैंक की नीतियाँ इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये निर्देशित की जाती हैं। रिजर्व बैंक के विकासात्मक व प्रवर्तन कार्यों में औद्योगिक व कृषि वित्त की विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना के संबंध में रिजर्व बैंक का ध्यान विशेष रूप से गया है।

रिजर्व बैंक द्वारा किये जाने वाले विभिन्न कार्यों में नोट निर्गमन का कार्य सबसे महत्वपूर्ण है। रिजर्व बैंक नोट निर्गमन का कार्य अपने निर्गमन विभाग और बैंकिंग विभाग के जरिये करता है। जब कभी मुद्रा की माँग होती है, बैंकिंग विभाग उपयुक्त परिसम्पत्तियाँ निर्गमन विभाग को देकर मुद्रा प्राप्त करता है। जिन परिसम्पत्तियों के विरुद्ध मुद्रा दी जाती है वे हैं स्वर्ण, विदेशी प्रतिभूतियाँ, 1 रु. के सिक्के और भारत में देय विनिमय पत्र व वचन पत्र। इस समय करेंसी निर्गमन के विरुद्ध स्वर्ण और विदेशी प्रतिभूतियों के कोष 200 करोड़ रु. से कम नहीं हो सकते और किसी भी स्थिति में इसमें से स्वर्ण कोष 115 करोड़ रु. से कम नहीं हो सकता।

योजना अवधि के दौरान रिजर्व बैंक का प्रयास रहा है कि आर्थिक संवृद्धि की गति को बनाये रखने के लिये आवश्यक मुद्रा और साख की पर्याप्त पूर्ति सुनिश्चित किया जा सके परन्तु साथ ही साथ अनावश्यक स्फीतिकारी दबाव भी पैदा न हो। यह नीति बहुधा नियंत्रित विस्तार की नीति कही जाती है। रिजर्व बैंक साख नियंत्रण के सभी उपकरणों, मात्रात्मक व गुणात्मक दोनों ही का प्रयोग कर सकता है। लेकिन भारत में बिलों व प्रतिभूतियों के बाजारों के पर्याप्त विकास के अभाव में बैंक दर नीति और खुली बाजार क्रियाएँ बहुत प्रभावी नहीं हैं। इसलिये, रिजर्व बैंक नकद कोष अनुपात और साविधिक तरलता अनुपात में परिवर्तनों पर अधिक भरोसा करता है। भारत में गुणात्मक साख नियंत्रण अधिक उपयुक्त हैं क्योंकि ये बैंक के साधनों को अर्थव्यवस्था के विशेष क्षेत्रों में वितरण व दिशा का विनियमन करते हैं। रिजर्व बैंक ने यह भी महसूस किया कि इसके साख विनियमन के व्यापक अधिकारों के कारण नैतिक आग्रह काफी प्रभावी सिद्ध हुए हैं। रिजर्व बैंक के पास मौद्रिक विनियमन के सभी संभव उपकरण हैं फिर भी इसकी वास्तविक मुद्रा नीति कमजोर रही है।

8.9 उपयोगी शब्दावली

- **बैंक दर** (*Bank Rate*) : ब्याज की वह दर जिस पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों को अग्रिम देना है या उनके बिलों पर पुनर्बट्टा काटता है।
- **नकद कोष अनुपात (***Cash Reserve Ratio*) : नकद कोष और बैंक की कुल जमाओं का अनुपात।
- **करेंसी तिजोरी** (*Currency Safe*) : वे पात्र जिनमें निर्गमन योग्य नोट स्टोर किये जाते हैं।
- **विनिमय नियंत्रण** (*Exchange Control*) : विदेशी विनिमय संबंधी सभी लेन–देनों पर मौद्रिक प्राधिकरण का नियंत्रण।
- **नोट निर्गमन की न्यूनतम कोष प्रणाली (***Minimum Reserve: System of Note Issue*) : नोट। निर्गमन की एक प्रणाली जिसमें नोट निर्गमन के समर्थन में कोष की एक न्यूनतम राशि स्वर्ण व विदेशी प्रतिभूतियों में रखनी आवश्यक है।
- **मुद्रा पूर्ति** (M_3½ ¼*Money Supply*) : मुद्रा की पूर्ति + बैंकों के पाम की सभी जमाएँ।
- **नैतिक आग्रह** (*Moral Urge*) : व्यापारिक बैंकों से यह आग्रह करके कि वे कुछ प्रतिबंधक नीति अपनायें, उनकी ऋण प्रदान करने की क्रियाओं पर दबाव डालने का केन्द्रीय बैंक का उपकरण।
- **खुली बाजार क्रियाएँ** (*Open Marke: Operations*) : उपयुक्त प्रतिभूतियों का केन्द्रीय बैंक द्वारा खुले बाजार में क्रय–विक्रय।
- **नोट निर्गमन की आनुपातिक कोष प्रणाली** (*Proportional Reserve System of Note Issue*) : नोट निर्गमन की प्रणाली जिसमें नोट निर्गमन के समर्थन के लिये कोषों का एक निश्चित प्रतिशत स्वर्ण व विदेशी प्रतिभूतियों में होना आवश्यक होता है।

- **चयनात्मक साख नियंत्रण** (*Selective Credit Control*) : वह साख नियंत्रण जो बैंक के साधनों के वितरण व दिशा को विभिन्न क्षेत्रों में नियमित करता है।

- **सांविधिक तरलता अनुपात** (*Statutory Liquidity Ratio*) : तरल परिसम्पत्तियों और कुल मांग व समय दायित्वों का सांविधिक रूप से निर्धारित अनुपात।

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1	i) सही	ii) गलत	iii) सहीiv) गलत		v) सही
	vi) गलत	vii) सही	viii) गलत	ix) गलत	x)गलत
ख 1	i) आनुपातिक कोष प्रणाली,		ii) न्यूनतम कोष प्रणाली		
2	i) सही	ii) गलत	iii) सही	iv) गलत	v) सही
	vi) गलत	vii) सहीं	viii) सही	ix) सही	x)गलत
ग 1	i) बैंक दर नीति ii) खुली बाजार क्रियाएँ iii) कोष अनुपात परिवर्तन				
2	i) सीमान्त अन्तर की शर्तों में परिवर्तन				
	ii) साख की अधिकतम सीमा				
	iii) कुछ अग्रिमों पर न्यूनतम ब्याज दर लेना				
3	i) गलत	ii) सही	iii) सही	iv) सहीv) सही	
	vi) गलत	vii) सही	viii) गलत	ix) सही।	
घ 1	भारतीय रिजर्व बैंक की मुद्रा नीति की विशेषता यह एक नियंत्रित विस्तार की नीति है।				
2	i) सही	ii) सही	iii) गलत	iv) सहीv)गलत	
	vi) गलत	vii) सही	viii) गलत	ix) सहीx)गलत	

8.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 भारतीय रिजर्व बैंक के विभिन्न कार्यों की विवेचन कीजिये।

प्रश्न–2 भारत में नोट निर्गमन प्रणाली समझाइये।

प्रश्न–3 रिजर्व बैंक द्वारा अपनायी गयी साख नियंत्रण विधियाँ समझाइये। इनके सापेक्षिक महत्व भी बताइये।

प्रश्न–4 भारतीय रिजर्व बैंक की मुद्रा नीति को बहुधा नियंत्रित विस्तार की नीति क्यों कहा जाता है?

प्रश्न–5 विकासात्मक नियोजन के वर्षों में की रिजर्व बैंक की मुद्रा नीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)
- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकेषन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)
- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीष कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, SBPD पब्लिकेषन 2016)
- प्रो0 षिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेषन 2017)
- एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
- के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
- शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016)
- एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

इकाई–9 भारतीय मुद्रा बाजार

इकाई की रूपरेखा

9.0. उद्देश्य

9.1. प्रस्तावना

9.2. वित्तीय बाजार

9.3. मुद्रा बाजार

9.4. भारतीय मुद्रा बाजार की संरचना

9.5. भारतीय मुद्रा बाजार की विशेषताएँ

- **9.5.1** विकसित मुद्रा बाजार के लक्षण
- **9.5.2** भारतीय मुद्रा बाजार की प्रकृति

9.6. भारतीय मुद्रा बाजार की समस्याएँ

- **9.6.1** समस्याओं की प्रकृति
- **9.6.2** समस्याओं का हल करने में भारतीय रिजर्व बैंक की भमिका
- **9.6.3** सुधार के लिये सुझाव

9.7. सारांश

9.8. उपयोगी शब्दावली

9.9. बोध प्रश्नों के उत्तर

9.10. महत्वपूर्ण प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- ❖ वित्तीय बाजार की संरचना को समझ सकेंगे,
- ❖ मुद्रा बाजार की परिभाषा निरुपित कर सकेंगे,
- ❖ मुद्रा बाजार और पूंजी बाजार में अंतर स्थापित कर सकेंगे,
- ❖ एक आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा बाजार की भूमिका और महत्व को रेखांकित कर सकेंगे,
- ❖ भारतीय मुद्रा बाजार के संघटकों को सूचिबद्ध कर सकेंगे,
- ❖ भारतीय मुद्रा बाजार की वे कमियाँ बता सकें जो इसे अल्पविकसित मुद्रा बाजार बनाती हैं तथा

❖ भारतीय मुद्रा बाजार की कमियों को दूर करने के लिये भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किये गये उपायों पर चर्चा कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए उसकी वित्तीय प्रणाली एक अहम बुनियादी विकास आधर है। इसके केंद्र में संगठित वित्तीय व्यापार का कामकाज है। इन बाज़ारों से सरकार तथा बड़ी फर्मों द्वारा सीधे संसाधन जुटाया जाता है। कतिपय परिवार सीधे इस बाजार में निवेश करते हैं। वित्तीय मध्यवर्ती संस्थाएं अन्य परिवारों को बाजार से जोड़ती है। वित्त यह निर्धरित करता है कि इस निवेश का आवंटन कार्य कौशल की दृष्टि से कैसे किया जाए। आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में वित्तीय बाजारों और संस्थाओं का महत्व बहुत बढ़ गया है क्योंकि वित्त आधुनिक व्यापार का एक अभिन्न अंग और आर्थिक विकास का एक आवश्यक संघटक बन गया है।

9.2 वित्तीय बाजार

मुद्रा बाजार को समझने से पहले वित्तीय बाजार को जानना जरूरी है। क्यूंकि, वित्तीय बाजार के तहत ही मुद्रा बाजार आता है। अतः इन दोनों के सम्बन्ध को समझना आवश्यक है।

एक वित्तीय बाजार एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अंतर्गत न केवल वित्तीय परिसंपत्तियों का निर्माण किया जाता है बल्कि उनका हस्तांतरण एवं साख उपकरणों का व्यापार भी किया जाता है। इस बाजार में किसी सामान के वास्तविक हस्तांतरण को संपन्न न करके मुद्रा और वास्तविक सामानों और सेवाओं का हस्तांतरण किया जाता है। वित्तीय बाजार विभिन्न प्रकार की वित्तीय परिसम्पत्तियों और साख उपकरणों का व्यापार करते हैं।

वित्तीय बाजार वास्तव में साख बाजार हैं। वे एक ओर तो व्यक्तियों, संस्थाओं और फर्मों की साख आवश्यकताओं को पूरा करते हैं और दूसरी ओर अर्थव्यवस्था में बचतों के संग्रहण में सहायता करते हैं।

वित्तीय बाजारों की संरचना का अध्ययन तीन दृष्टिकोणों से किया जा सकता हैः (1) कार्यात्मक (Functional), (2) संस्थानात्मक (Organizational), और (3) क्षेत्रीय (Regional)। कार्यात्मक वर्गीकरण साख की अवधि पर आधारित है। (यानि अल्पकालीन/short-term या दीर्घकालीन/long-term साख), संस्थानात्मक वर्गीकरण संगठन की प्रकृति पर आधारित है (यानि संगठित/organized या असंगठित/unorganized मुद्रा बाजार), और क्षेत्रीय वर्गीकरण विभिन्न क्षेत्रों जैसे कृषि, व्यापार, उद्योग आदि की साख व्यवस्था पर आधारित है। वित्तीय बाजारों के कार्यात्मक वर्गीकरण के आधार पर अल्पकालीन साख में व्यापार करने वाले बाजार मुद्रा बाजार (Money Market) होते हैं और दीर्घकालीन साख का प्रबन्ध करने वाले बाजार पूँजी बाजार (Capital Market) होते हैं।

वित्तीय बाज़ार के कार्य :

1. बचतों को गतिशील बनाना तथा उन्हें उत्पादक उपयोग में लगाना – वित्तीय बाजार बचतों को बचतकर्ता से निवेशकों तक अंतरित करने को सुविधापूर्ण बनाता है।

2. कीमत निर्धारण में सहायक – वित्तीय बाजार बचतकर्ता तथा निवेशकों को मिलता है। बचतकर्ता कोषों की पूर्ति करते हैं जबकि निवेशक कोषों की मांग करते है जिसके आधार पर वित्तीय सम्पत्तियों की कीमत का निर्धारण होता है।

3. निवेशकों के वित्तीय सपत्ति के विक्रय को तरलता तरलता प्रदान करना – वित्तीय बाजार द्वारा वित्तीय सम्पत्तियों के क्रय–विक्रय को सरल बनाया जाता है। इसके माध्यम से वित्तीय सम्पत्तियों को कभी भी खरीद या बेचा जा सकता है।

4. लेन–देन की लागत को घटानाः– वित्तीय बाजार, प्रतिभूतियों के विषय में महत्वपूर्ण सूचनाएं उपलब्ध कराते हैं। जिससे समय, प्रयासों एवं धन की बचत होती है। परिणामस्वरूप लेन–देन की लागत घटी है।

वित्तीय बाजार को नीचे दिए गए आरेख से भलीभॉति समझा जा सकता है।

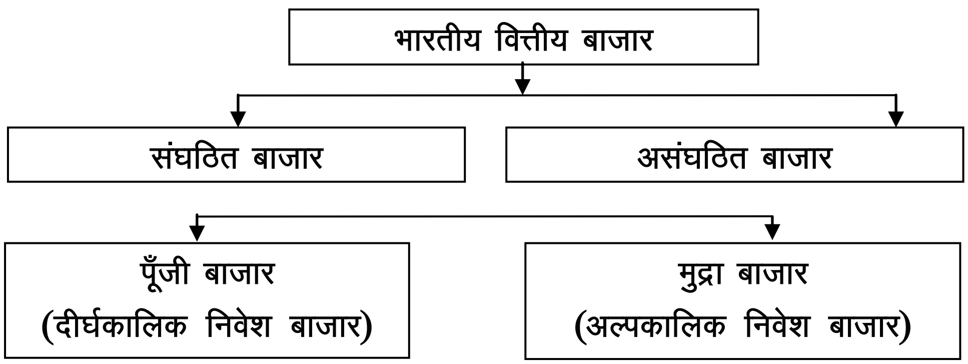

इस इकाई में आप भारत में मुद्रा बाजार की प्रकृति, संरचना और इसकी कमियों के बारे में अध्ययन करेंगें। आप उन उपायों का भी अध्ययन करेंगे जो सरकार ने इनके सुधारने के लिये किये हैं।

9.3 मुद्रा बाजार

यहाँ मुद्रा का अर्थ कोई भी वस्तु जो सभी प्रकार के व्यवहारों को पूरा करने में भुगतान के माध्यम के रूप में सामान्यतया स्वीकार की जाती है उसे हम मुद्रा कहते है; सभी वस्तुएँ या प्रपत्र मुद्रा है।

मुद्रा बाजार उस संगठन को कहते है, जहाँ वित्तीय एवं अन्य संस्थानों तथा व्यक्तियों के पास उपलब्ध विनियोज्य निधियाँ उधार प्राप्त करने वाले द्वारा अल्पकाल के लिए उधार ली जाती हैं। मुद्रा बाजार का तात्पर्य वित्तीय संस्थाओं के बिछे उस पूरे जाल से है जो अल्पकालीन कोषों का लेनदेन करती है और ऋणदाता को एक बाजार तथा ऋण लेने वाले को कोषों की सप्लाई का एक स्रोत प्रदान करती है। अल्पावधि एक दिन से लेकर कुछ महीने तक की हो सकती है। विभिन्न प्रकार के उधार–पत्रों (credit instruments) जैसे कि विनिमय पत्रों अल्पकालीन प्रतिभूतियों, वचनपत्रों और अल्पावधि के लिये लिखी सरकारी हुण्डियों आदि के विरुद्ध उधार लिये गये कोषों को मुद्रावत् (near money) कहते हैं। इस प्रकार मुद्रा बाजार शब्द भ्रामक हो सकता है क्योंकि यह मुद्रा या नकदी में लेनदेन नहीं करता बल्कि मुद्रावत् परिसम्पत्तियों में लेनदेन करता है।

मुद्रा बाजार का सविस्तार प्रतिपादन करते हुए भारतीय रिजर्व बैंक ने इसका वर्णन इस रूप में किया है, **यह मुख्यतया अल्पकालीन प्रकृति की मौद्रिक परिसम्पत्तियों के क्रय–विक्रय का केन्द्र होता है। यह ऋण लेने वालों की**

अल्पकालीन आवश्यकताओं को पूरा करता है और उन्हें तरलता या नकदी को ऋण देने वालों के द्वारा प्रदान करता है। यह वह स्थान है जहाँ ऋण लेने वाली संस्थाओं, व्यक्तियों तथा सरकार द्वारा वित्तीय तथा अन्य संस्थाओं और व्यक्तियों के पास अल्पकालीन निवेश–योग्य अतिरेक कोष प्राप्त किये जाते हैं।

अल्पकालीन कोषों की मांग सरकार, व्यापारिक प्रतिष्ठान और निजी व्यक्ति करते हैं। सरकार को चालू घाटों को पूरा करने के लिये अल्पकालीन कोषों की आवश्यकता होती है। फर्मों को कार्यशील पूँजी के लिये और अतिरिक्त स्टॉक रखने के लिये कोषों की आवश्यकता होती है। अन्य महत्वपूर्ण ऋण लेने वालों में शेयर बाजार के दलाल, विनिर्माता, व्यापारी आदि आते हैं। ऋण दिये जाने वाले कोषों की सप्लाई अधिकांशतः देश का केन्द्रीय बैंक, व्यापारिक बैंक और अन्य वित्तीय संस्थाएँ करती हैं।

मुद्रा बाजार पूँजी बाजार से भिन्न होता है। पूँजी बाजार का संबंध दीर्घकालीन निवेश योग्य कोषों की मांग और पूर्ति से होता है जबकि मुद्रा बाजार का संबंध अल्पकालीन कोषों से होता है। पूँजी बजार बॉंडों, स्टॉकों, और निगमों के शेयरों का लेनदेन करता है और दीर्घावधि के लिये साख का वचन देता है जबकि मुद्रा बाजार अल्पकालीन आवश्यकताओं को पूरा करता है, जैसे कि व्यापारिक संस्थाओं की कार्यशील पूंजी की आवश्यकताएँ, व्यक्तिगत ऋण और सरकार के अल्पकालीन दायित्व। तथापि इन दोनों बाजारों में निकट का संबंध है और ये कुछ हद तक परस्परवादी भी हैं क्योंकि वे ही संस्थाएँ बहुत बार दोनों प्रकार के ऋणों का लेनदेन करती हैं।

बोध प्रश्न 'क'

1. **रिक्त स्थानों को भरिये** (*Fill in the blanks*)**।**
   - **(i)** मुद्रा बाजार . . . . कोष प्रदान करता है।
   - **(ii)** मुद्रा बाजार में कोष . . . . के विरुद्ध उधार लिये जाते हैं।
   - **(iii)** मुद्रा बाजार और पूँजी बाजार में अन्तर . . . . वर्गीकरण पर आधारित है।
2. **बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :**
   - **(i)** मुद्रा बाजार मुद्रा का लेनदेन करता हैं।
   - **(ii)** पूँजी बाजार मुद्रा बाजार का एक भाग है।
   - **(iii)** मुद्रा बाजार और पूँजी बाजार एक दूसरे से निकट से संबंधित हैं।
   - **(iv)** वित्तीय बाजार और साख बाजार. वास्तव में एक ही हैं।

9.4 भारतीय मुद्रा बाजार की संरचना

मुद्रा बाजार को परिभाषित करने के उपरांत हमने ये पाया के मुद्रा बाजार वह बाजार है जिसमे क्रेता एवं विक्रेता द्वारा मुद्रा का लेन देन होता है, जहाँ मुद्रा का अर्थ हर उस वस्तु से होता है जो सभी प्रकार के व्यवहारों को पूरा करने में भुगतान के माध्यम के रूप में सामान्यतया स्वीकार की जाती है। अतः सभी वस्तुएँ या प्रपत्र मुद्रा है।

आइये मुद्रा बाजार को और अच्छी तरह समझने के लिये इसे एक आरेख द्वारा निरुपित करने का प्रयास करेंः–

भारतीय वित्तीय बाजार की ही तरह, मुद्रा बाजार भी संगठित एवं असंगठित क्षेत्रों में विभाजित है।

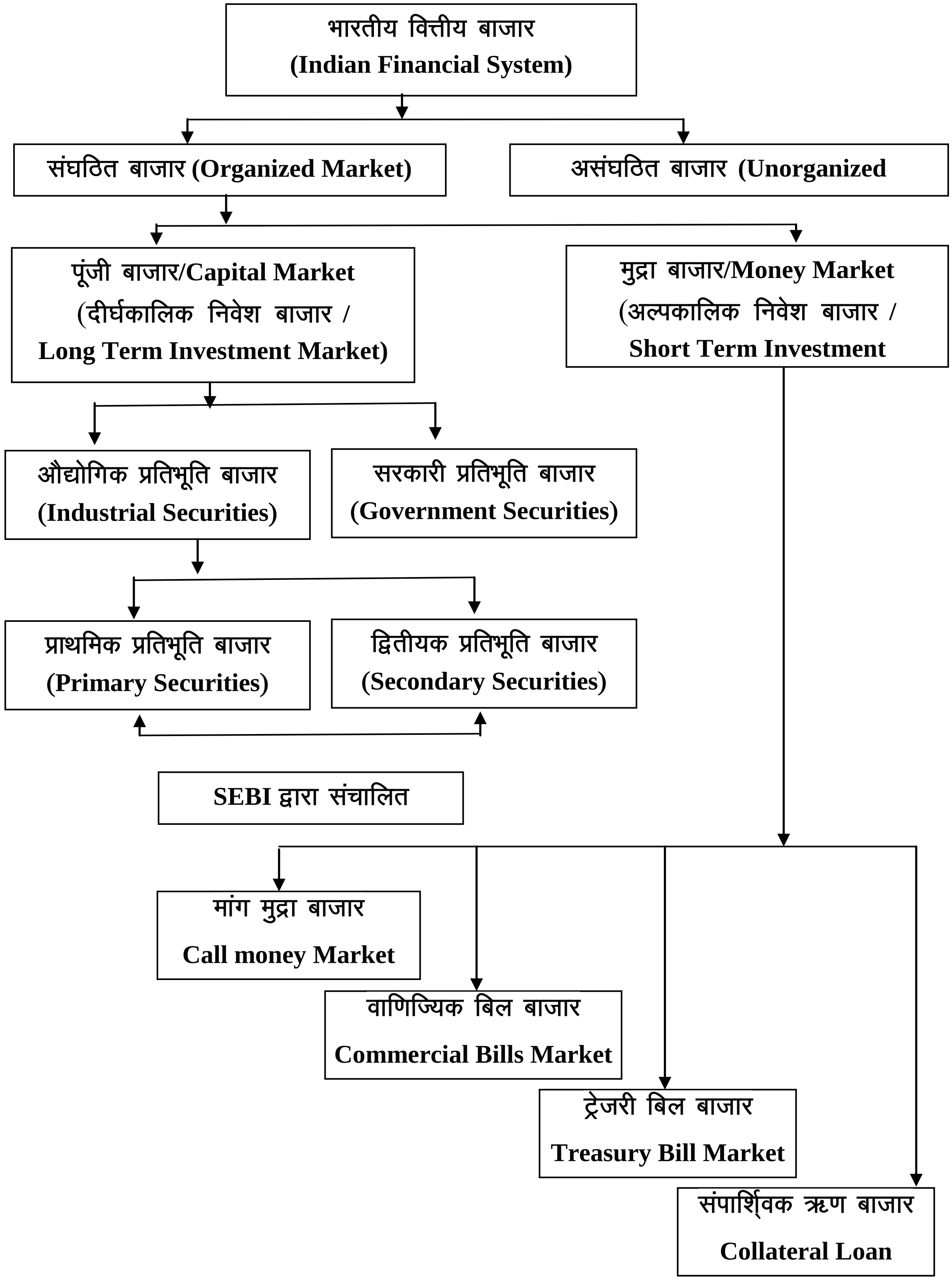

1. बैंक आते हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ गैर–बैंकिंग कम्पनियाँ और वित्तीय संस्थाएँ जैसे भारतीय सामान्य बीमा कम्पनी, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया, जीवन बीमा निगम भी संगठित मुद्रा बाजार में कार्य करती हैं। चिट फंड और डाक खाना बचत बैंक की भी महत्वपूर्ण भूमिका है, खासतौर से छोटे शहरों और अर्द्धशहरी क्षेत्रों में।

2. **असंगठित क्षेत्र :** मुद्रा बाजार के इस भाग में देशी बैंकर और महाजन आते हैं जिन्हें देश के विभिन्न भागों में सेठ, सर्राफ, चेटियार आदि कहा जाता है। बहुत से देशी बैंकर बैंकिंग व्यवसाय के साथ–साथ व्यापार और कमीशन का कार्य भी करते हैं, जबकि इनमें से कुछ अन्य बैंकिंग व्यवसाय ही करते हैं। देशी बैंकर हुण्डियों और वचन पत्रों का लेन देन करंते हैं। देश के अन्दर के व्यापार का लगभग 50 प्रतिशत वित्त के लिये असंगठित क्षेत्र पर निर्भर करता है।

सहकारी क्षेत्र मुद्रा बाजार के संगठित और असंगठित भागों के लगभग बीच में आता है। इस क्षेत्र में मुख्यतया सहकारी बैंक, ग्रामीण बैंक और सहकारी साख समितियाँ आती हैं। इनको मुख्य उद्देश्य ग्रामीण साख के देशीय स्रोतों को बढ़ाना है। ये किसानों, बुनकरों, ग्रामीण शिल्पियों आदि को उनकी उत्पादन और विपणन क्रियाओं के लिये वित्त प्रदान करते हैं।

मुद्रा बाजार बहुत सी वित्तीय एजेन्सियों से बनता है जो संगठित क्षेत्र में भी विभिन्न प्रकार की अल्पकालीन साख का व्यापार करते हैं।

अब हम मुद्रा बाजार के निम्नलिखित महत्वपूर्ण संघटकों पर विचार करेंगे:–

शीघ्रवधि द्रव्य / मांग मुद्रा बाजार (Call Money Market) : यह एक लघुकालिक मांग पर पुर्नभुगतान वित्त है – जिसकी परिपक्वता अवधि एक दिन से 14 दिन तक की होती है तथा अंतर बैंक अंतरण के लिए उपयोग किया जाता है जिससे भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार रिजर्व अनुपात बनाया जा सके। शीघ्रवधि द्रव्य) पर जो ब्याज दिया जाता है उसे शीघ्रावधि दर कहा जाता है। यह विकसित मुद्रा बाजार का एक भाग है जो बहुत कम अवधि के लिये साख सुविधा प्रदान करता है। यह मुद्रा बाजार के संगठित क्षेत्र का बहुत सक्रिय और संवेदी भाग है। बिलों और स्टॉक के दलाल प्रायः व्यापारिक बैंकों से मांग ऋण लेते हैं और इनके लिये कोई संपाश्विक प्रतिभूति नहीं मांगी जाती। परन्तु भारत में अन्तर–बैंक मांग मुद्रा का आम प्रचलन है। अनुसूचित और गैर–अनुसूचित व्यापारिक बैंकों के अलावा, विदेशी बैंक, सहकारी बैंक, जीवन बीमा निगम, और यूनिट ट्रस्ट जैसी अन्य वित्तीय संस्थाओं ने भी मांग मुद्रा बाजार में सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया है।

वाणिज्यिक बिल बाजार (Commercial Bill Market) : यह एक विनिमय प्रपत्र होता है जो व्यावसायिक फर्मो की कार्य पूंजी की आवश्यकता के लिए वित्तीयन में प्रयुक्त होता है। इनका प्रयोग उधार क्रय विक्रय की दशा में किया जाता है। इसे विक्रेता द्वारा क्रेता पर लिखा जाता है तथा इसे व्यापारिक / वाणिज्यिक विपत्र कहते है इसे देय तिथि से पहले बट्टे पर बैंक से भुनाया जा सकता है। बिल बाजार, जिसे इंग्लैंड में बड़ा बाजार कहते हैं, एक उप–बाजार है जिसमें अल्पकालीन बिलों का क्रय–विक्रय किया जाता है। सबसे महत्वपर्ण किस्म के बिल ट्रेजरी बिल, बैंक बिल और व्यापारिक बिल होते हैं, जिनकी अवधि 91 दिन की होती है। क्योंकि ये बिल मूलतः उत्तर–दिनांकित (Post Dated) चेक होते हैं, अतः इन्हें मुद्रा बाजार में आसानी से भुनाया जा सकता है। भारत में कोई विकसित

बिल बाजार नहीं है यद्यपि बड़े बैंक अपने प्रतिष्ठित ग्राहकों के बिलों का बट्टा काटकर भुगतान करते हैं।

राजकोष/कोषागार प्रपत्र (Treasury Bill Market) : इन्हें केन्द्रीय सरकार की तरफ से भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी किया जाता है जिनकी परिपक्वता अवधि एक वर्ष से कम होती है। इन्हें अंकित मूल्य से कम पर जारी किया जाता है परन्तु भुगतान के समय अंकित मूल्य दिया जाता है। राजकोष बिल 25000 रू के न्यूनतम मूल्य और इसके बाद बहुगुणन में प्राप्त होते हैं। यह एक विनिमय साध्य प्रलेख होते हैं जिनका स्वतन्त्रतापूर्ण हस्तान्तरण किया जा सकता है। इन्हें सुरक्षित निवेश समझा जाता है, इन पर कोई ब्याज नहीं दिया जाता बल्कि कटौती पर जारी किये जाते हैं।

संपाश्विक ऋण बाजार (Collateral Loan Market) : जब ऋण संपाश्विक प्रतिभूतियों पर दिये जाते हैं, जैसे कि स्टॉक, बाँड, माल आदि तो इन ऋणों को सम्पाष्विक ऋण कहते हैं। मुद्रा बाजार में प्रमुख ऋणदाता व्यापारिक बैंक होते हैं। ऋण लेने वाले ये ऋण नकद साखों और ओवरड्राफ्टों के रूप में लेते हैं।

अन्य संघटक

बचत / जमा प्रमाण पत्र (Certificate of Deposits - CDs) : यह एक धारक प्रमाणपत्र होता है जो बेचनीय होता है तथा जिसे वाणिज्यिक बैंकों एव विकास वित्त संस्थानों द्वारा जारी किया जाता है। इनके द्वारा अल्पवधि के लिए बड़ी राशि प्राप्त की जा सकती है। इनकी समता अवधि 91 दिन से एक वर्ष होती है।

यह ध्यान रखिये कि विभिन्न उप–बाजारों को मिलाकर एक बाजार बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिये, मांग ऋण उनके द्वारा लिये जाते हैं जो बट्टा बाजार में लेन देन करते हैं और उनमें से बहुत से जो कि बिलों पर बट्टा काटते हैं, स्वीकृति गृहों के रूप में भी कार्य करते हैं। इन संस्थाओं के अतिरिक्त, मुद्रा बाजार में देश का केन्द्रीय बैंक भी शामिल होता है। यह एक शिखर संस्था है और मुद्रा बाजार का अग्रणी है जो मुद्रा बाजार की सारी क्रियाओं का नियंत्रण और मार्गदर्शन करता है।

9.5 भारतीय मुद्रा बाजार की विशेषताएँ

भारतीय मुद्रा बाजार में 8 नवंबर 2017 की रात से केंद्र सरकार की घोषणा के बाद अब बड़ा बदलाव आ गया है। विमुद्रीकरण के कारण इस बाजार पर आंशिक रूप से एक झटका लगा है। परन्तु इस बदलाव से भारतीय मुद्रा बाजार में असंठित एवं अवैधानिक तत्वों का अंत होगा एवं सुचारू रूप से देश के विकास में इसका एक बड़ा यागदान मिलेगा ऐसी सोच को दर्शाता है ये निर्णय।

वर्त्मान में भारतीय मुद्रा बाजार की प्रकृति को समझाने और एक विकसित मुद्रा बाजार की परिकल्पना को उसमे संजोने की आवष्यकता है। अतः अध्याय के इस भाग में हम सबसे पहले विकसित मुद्रा बाजार के लक्षण एवं गुणों को जानेंगे उसके पश्चात वर्त्मान में भारतीय मुद्रा बाजार की प्रकृति की विवेचना करेंगे।

9.5.1 विकसित मुद्रा बाजार के लक्षण

जो मुद्रा बाजार निम्नलिखित शर्तों को पूरा करता है उसे विकसित मुद्रा बाजार माना जाता है :

a. बहुत ही संगठित व्यापारिक बैंकिंग प्रणाली का होना।

b. कुशल केन्द्रीय बैंक का होना।

c. परक्राम्य प्रतिभूतियों जैसे विनिमय पत्र, ट्रेजरी बिल, अल्पकालीन सरकारी बॉड आदि की निरंतर सप्लाई।

d. बहुत से उप–बाजारों का होना, जिनमें से प्रत्येक की एक विशेष प्रकार की अल्पकालीन परिसम्पत्ति में विशिष्टता हो। जितने अधिक उप–बाजार होंगे उतनी ही अधिक विस्तृत और विकसित मुद्रा बाजार की संरचना होगी।

e. इसके अतिरिक्त, उप–बाजारों को मिलाकर एक समन्वित संरचना बननी चाहिये जिसमें मुद्रा बाजार के प्रत्येक भाग का एक दूसरे से गहरा संबंध हो। यह विभिन्न उप–बाजारों में ब्याज दरों में एकरूपता सुनिश्चित करने के लिये और कोषों के मुक्त प्रवाह के लिये आवश्यक है।

दुनिया में बहुत अधिक संख्या में विकसित मुद्रा बाजार नहीं है जिनमें कि ये सभी विशेषताएँ हों। लंदन और न्युयार्क मुद्रा बाजार विकसित मद्रा बाजार के सबसे अच्छे उदाहरण हैं। अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय केन्द्रों के अन्य उदाहरण पैरिस, ज्यूरिच, फ्रैंकफर्ट, एमेस्टरडम और वियना हैं जिनमें विकसित मुद्रा बाजार की अधिकांश विशेषताएँ हैं।

9.5.2 भारतीय मुद्रा बाजार की प्रकृति

भारतीय मुद्रा बाजार बहुत संगठित और समन्वित नहीं है, इसलिये इसे अति विकसित मुद्रा बाजार की श्रेणी में नहीं डाला जा सकता। वास्तव में इसमें दो श्रेणियों की वित्तीय एजेन्सियाँ हैं : (1) संगठित और (2) असंगठित भाग। संगठित क्षेत्र में अच्छी तरह स्थापित व व्यवस्थित वित्तीय संस्थाएँ हैं जबकि असंगठित क्षेत्र में ऐसी एजेन्सियाँ हैं जिनकी नीतियों में विविधता है तथा ऋण देने के व्यवसाय में एकरूपता और सामंजस्य का अभाव है। इन दोनों भागों के बीच में डाक घर,बचत बैंक और सहकारी बैंक हैं।

1. संगठित खण्ड : इसके शिखर पर भारतीय रिजर्व बैंक है जो मुद्रा बाजार का अग्रणी है और बैंकिंग क्षेत्र को नियंत्रित करता है। इसके अतिरिक्त इसमें संयुक्त पूँजी व्यापारिक बैंक हैं जो दो प्रकार के हैं : (i) अनुसूचित बैंक और (ii) गैर–अनुसूचित बैंक। जुलाई, 1969 से भारत के सभी बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इसके अतिरिक्त स्टेट बैंक ऑफ इंडिया व इसके सहयोगी बैंक भी केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक संगठित बैंकिंग प्रणाली के वित्त के लगभग 90% को नियंत्रित करते हैं। 15 विदेशी बैंक भी हैं। इन सबके अतिरिक्त, डाकघर बचत बैंक, सहकारी बैंक, ग्रामीण बैंक और चिट फण्डों की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। ये बचतों का संग्रहण करते हैं और छोटे धारकों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, खास तौर से अर्द्ध–शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में।

2. असंगठित खण्ड : इसमें देशी बैंकर, महाजन व अपंजीकृत चिट फंड आते हैं। भारत में 2,500 से अधिक देशी बैंकर हैं जो कृषि वित्त का लगभग 50%

प्रदान करते हैं। देशी बैंकरों और महाजनों की वित्तीय क्रियाएँ अधिकतर छोटे शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों तक ही सीमित हैं, जहाँ आधुनिक बैंकिंग सुविधाओं का अभाव है। ये बड़े शहरों में भी बहुत सीमित रूप में कार्य करते हैं। ये मूलतः कोषों की स्थानीय मांग को पूरा करते हैं और ये सामान्यतया उन लोगों को संपाश्विक प्रतिभूतियों पर ऋण देते हैं जिन्हें ये व्यक्तिगत रूप से जानते हैं जिससे कि जोखिम न्यूनतम हो जाए।

अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय मुद्रा बाजार न तो अच्छी तरह संगठित है और न ही समन्वित तथा समरूप है।

भारतीय मुद्रा बाजार के कुछ मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं :

a. द्विविधता (Duality) : भारतीय मुद्रा बाजार के दो खण्ड हैं संगठित और असंगठित क्षेत्र। पहले में आधुनिक, सुसंगठित और कुशलतापूर्वक चलने वाली वित्तीय संस्थाएँ आती हैं, जैसे कि भारतीय रिजर्व बैंक, निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के अनुसूचित और गैर–अनुसूचित बैंक और विदेशी बैंक। डाकघर बचत बैंक और सहकारी बैंक मुद्रा बाजार के संगठित और असंगठित क्षेत्रकों के बीच में आते हैं। असंगठित क्षेत्रक में बिखरे हुए देशी बैंकर, महाजन व चिट फण्ड आदि आते हैं जिनमें कुशल संगठन का अभाव है।

b. सरकारी और अर्द्ध सरकारी प्रतिभूतियों का आधिक्य (Government and Semi-Government Securities) : भारत में बिल बाजार, जो मुद्रा बाजार के संगठित क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण और अत्यन्त संवेदी भाग है, भी अल्पविकसित है। विकसित देशों की तुलना में इस देश में व्यापारिक बिलों की बहुत कमी है। अतः क्रय–विक्रय की जाने वाली प्रतिभूतियों में बहुत बड़ा भाग सरकारी और अर्द्ध सरकारी प्रतिभूतियों का होता है।

c. बट्टा गृहों का अभाव (Lack of Discounting Houses) : भारतीय मुद्रा बाजार में स्वीकृति गृहों और बट्टा गृहों का लगभग पूर्ण अभाव है। इसका कारण व्यापारिक बिलों की कमी है जिससे उनका कोई बाजार नहीं है। भारत में व्यापारी कुशलता पूर्वक लिखे विनिमय पत्रों के बजाय हुण्डियों का प्रयोग करते हैं।

d. कोषों का मौसमी अभाव और ब्याज दरों में उतार–चढ़ाव (Market Fluctuations) : भारतीय अर्थव्यवस्था मूलतः एक कृषि अर्थव्यवस्था है और इसका भारतीय मुद्रा बाजार पर प्रभाव पड़ता है। भारत में कोषों की मांगों के तेजी और मंदी के समय आते हैं। तेजी की स्थिति कृषि–उत्पादों के उत्पादन व विपणन क्रियाओं के समय होती है। इसके लिये अक्टूबर नवम्बर से अप्रैल मई तक अतिरिक्त कोषों की आवश्यकता होती है जिससे मुद्रा का अभाव हो जाता है और इस कारण तेजी के समय ब्याज दरें ऊँची हो जाती हैं तथा मंदी के समय ब्याज दरें कम हो जाती हैं।

e. सीमित बैंकिंग सुविधाएँ (Limited Banking Facilities) : 1969 में भारत में 14 बैंकों के राष्ट्रीयकरण से पहले लगभग प्रति 65,000 व्यक्तियों के लिये बैंक की केवल एक शाखा होती थी और अधिकांश बैंक। केवल बड़े शहरों में थे। छोटे शहरों व गाँवों में लगभग कोई बैंक नहीं था। पिछले 20 वर्षों में शाखा विस्तार से स्थिति में सुधार हुआ है। कुछ बैंकिंग सुविधाएँ ग्रामीण क्षेत्रों व छोटे शहरों तक पहुँची तो हैं लेकिन ये अपर्याप्त हैं।

f. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजारों से अलगाव (No connectivity with the Foreign Money Market) : भारतीय मुद्रा बाजार विदेशी बाजारों से लगभग अलग रहा है। कोषों का भारतीय मुद्रा बाजार और विदेशी बाजारों के बीच मुश्किल से ही कोई प्रवाह रहा होगा। यह स्थिति अंशतः पूँजी प्रवाहों पर विनिमय नियंत्रण प्रतिबन्ध के कारण है और अंशतः भारतीय मुद्रा बाजार की अल्प विकसित प्रकृति के कारण रही है।

बोध प्रश्न 'ख'

1. **बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :**

   (i) भारतीय मुद्रा बाजार एक सुसंगठित बाजार है।

   (ii) सभी गैर–बैंकिंग कम्पनियाँ भारतीय मुद्रा बाजार के असंगठित क्षेत्रक का एक भाग हैं।

   (iii) अल्पकालीन बिल तत्वतः उत्तर–दिनांकित चैक हैं इसलिये इनका पैसा आसानी से बट्टे पर प्राप्त किया जा सकता है।

   (iv) स्वीकृत गृह एजेन्टों के रूप में कार्य करते हैं जिनमें या तो आयातक का या निर्यातक का पूरा विश्वास होता है।

   (v) भारतीय मुद्रा बाजार विदेशी बाजारों से लगभग अलग है।

2. **निम्नलिखित में से भारतीय मुद्रा बाजार के मुख्य लक्षण कौन से हैं?**

   (i) सरकारी और अर्द्ध–सरकारी प्रतिभूतियों का आधिक्य ।

   (ii) बहुत संगठित व्यापारिक बैंकिंग प्रणाली।

   (iii) बहुत से उप–बाजारों का होना जिनमें से प्रत्येक एक विशेष प्रकार की अल्पकालीन परिसम्पत्ति का लेनदेन करता है।

   (iv) द्विविधता होना।

9.6 भारतीय मुद्रा बाजार की समस्याएँ

भारतीय मुद्रा बाजार, न्यूयॉर्क और लंदन मुद्रा बाजारों जैसे उन्नत बाजारों की तुलना में अपेक्षाकृत अविकसित है। भारतीय मुद्रा बाजार में प्रचलित अनेको विषमताओं में (1) संगठित एवं असंगठित बाजारों का विरोधाभास भारतीय तथा केंद्रीय बैंक के समन्वय और एकीकरण की कमी, (2) ब्याज दरों में विविधता, (3) अपेक्षाकृत अल्पविकसित बैंकिंग आदतें, (4) पर्याप्त निधि की कमी, (5) संगठित बिल बाजार की अनुपस्थिति, (6) अपर्याप्त बैंकिंग सुविधाएंय, (7) मनी मार्केट की मौसमी होना, (8) अक्षम और भ्रष्ट प्रबंधन एवं अन्य कई कारण विद्यमान हैं।

9.6.1 समस्याओं की प्रकृति

संगठन और विकास दोनों ही दृष्टि से भारतीय मुद्रा बाजार दुनिया के किसी विकसित मुद्रा बाजार जैसे लंदन या न्यूयार्क मुद्रा बाजार से तुलनीय नहीं है। इन

विकसित मुद्रा बाजारों के साधनों की मात्रा, स्थिरता और लोच से भी इसकी तुलना नहीं की जा सकती। इसमें बहुत सी कमियाँ हैं। जिनमें से निम्नलिखित अधिक महत्वपूर्ण हैं :

(1) संगठित एवं असंगठित बाजारों का विरोधाभास तथा भारतीय केंद्रीय बैंक के समन्वय और एकीकरण की कमी (Dichotomy) **:** भारतीय मुद्रा बाजार की एक प्रमुख विशेषता दो बाजारों के अस्तित्व की है – संगठित मुद्रा बाजार और असंगठित मुद्रा बाजार। संगठित क्षेत्र में आर.बी.आई, वाणिज्यिक बैंक, वित्तीय संस्थान इत्यादि शामिल हैं। असंगठित क्षेत्र में चिट फंड, निधि आदि शामिल हैं। आरबीआई के लिए संगठित और असंगठित मुद्रा बाजार को एकीकृत करना मुश्किल है। अपनी आर्थिक क्रियाओं में भारतीय मुद्रा बाजार के संगठित और असंगठित क्षेत्रक एक दूसरे से पूर्णतया अलग हैं। भारतीय मुद्रा बाजार के विभिन्न संघटकों में सहयोग और समन्वय के बजाय प्रतिस्पर्धा अधिक है। व्यापारिक बैंक सहयोग करने की बजाय आपस में प्रतिस्पर्धा करते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक का देशी बैंकरों पर कोई प्रभावी नियंत्रण नहीं है क्योंकि ये संगठित बैंकिंग प्रणाली द्वारा प्रदान की जाने वाली पुनर्बट्टा सुविधा का यदा–कदा ही उपयोग करते हैं। इससे भारतीय रिजर्व बैंक की मुद्रा नीति पूर्णतया प्रभावहीन हो गयी है। इसके अतिरिक्त वास्तव में कोई अखिल भारतीय मुद्रा बाजार नहीं हैं, केवल उचित रूप में विकसित स्थानीय मुद्रा बाजार हैं।

(2) ब्याज दरों में अन्तर (Diversity in Interest Rates) : भारत के विभिन्न भागों में एक सी ब्याज दरें नहीं हैं यानि मुद्रा बाजार के विभिन्न भागों में ऊँची व नीची दोनों तरह की ब्याज दरें एक साथ मौजूद होती हैं। कार्य के स्थान, प्रस्तुत की जाने वाली प्रतिभूतियों की किस्मों, अग्रिमों की प्रकृति और प्रतियोगिता के आधार पर बैंकों द्वारा ली जाने वाली ब्याज दरों में भी बहुत अन्तर होता है। इसके अतिरिक्त मंदी के समय की तुलना में व्यस्त समय में ब्याज दरें हमेशा ऊँची होती है। भारतीय मुद्रा बाजार का एक अन्य लक्षण यह है कि अल्पकालीन ब्याज दरें दीर्घकालीन ब्याज दरों से ऊँची होती हैं। तथापि हाल के वर्षों में इसमें कुछ सुधार हुआ है।

(3) अपेक्षाकृत अल्पविकसित बैंकिंग आदतें (Relatively underdeveloped Banking Habits) **:** कॉफी शाखा विस्तार होने पर भी, चेकों व साख पत्रों का प्रयोग अभी कम लोकप्रिय है। लोग नकद लेनदेन अधिक पसंद करते हैं। इसके अलावा भारत में खासतौर से ग्रामीण और अर्द्धशहरी क्षेत्रों में जमाखोरी एक लोकप्रिय आदत है। इसके फलस्वरूप सोने–चांदी के जेवरों और अन्य अमौद्रिक परिसम्पत्तियों में निवेश किया जाता है।

(4) कोषों की कमी (Shortage of Funds) **:** भारतीय मुद्रा बाजार में कोषों की कमी है क्योंकि ऋण के रूप में कोषों की मांग उनकी पूर्ति से सदा ही अधिक होती है। व्यस्त समय में यह कमी और बढ़ जाती है। भारत में विशाल जनसंख्या और दूर तक फैली गरीबी से प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है और इससे उनकी बचत सामर्थ्य कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त काले धन के होने से भारतीय मुद्रा बाजार में वित्तीय संसाधनों की पूर्ति बहुत कम हो गयी है।

(5) संगठित बिल बाजार का अभाव (Lack of Organized Commercial Bill Market) : भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 1970 में शुरू की गयी नयी बिल बाजार योजना के बावजूद भारत में बिल बाजार अभी विकसित होना है।

इसके बहुत से कारण हैं, जैसे (i) देश के विभिन्न भागों में बिलों के लिखने में एकरूपता का अभाव, (ii) नकद लेनदेनों के लिये सामान्य प्राथमिकता, (iii) मियादी बिलों (usance bills) आदि पर ऊँचा मुद्रांक–शुल्क।

(6) अपर्याप्त बैंकिंग सुविधाएँ (Inadequate Banking Facilities) **:** राष्ट्रीयकरण के बाद बैकिंग शाखाओं के विस्तार के बावजूद भारतीय किसानों और ग्राम्य शिल्पियों के लिये महाजन अभी भी साख का प्रमुख स्रोत हैं। इससे गाँवों में छोटी बचतों के संग्रहण में बाधा आयी है। इसके अलावा समाशोधन गृहों की सुविधाओं के अभाव और लघु और अति लघु क्षेत्रों को साख प्रदान करने के लिये विशिष्ट बैंकों के अभाव भारतीय मुद्रा बाजार की कुछ अन्य समस्याएँ हैं।

(7) मनी मार्केट की मौसमी होना (Seasonality of Money Market)**:** भारतीय कृषि के दृष्टि से नवंबर से जून की अवधि व्यस्तम होती है। जिसके परिणामस्वरूप धन की भारी मांग भी होती है। परन्तु इस अवधि के दौरान मुद्रा बाजार, मौद्रिक कमी से पीड़ित होता है। जिसके परिणामस्वरूप ब्याज की उच्च दर की मार को सहन करना पड़ता है। ढीले मौसम की दर के दौरान ब्याज दर गिरता है और उस समय पर्याप्त धन उपलब्ध होता हैं। आरबीआई ने मौसमी उतार–चढ़ाव को कम करने के लिए कदम उठाए हैं, लेकिन फिर भी भिन्नताएं मौजूद हैं।

(8) अक्षम और भ्रष्ट प्रबंधन (Inefficient and Corrupt Management) **:** भारतीय मुद्रा बाजार की प्रमुख समस्या में से एक इसका अक्षम और भ्रष्ट प्रबंधन है। अक्षमता दोषपूर्ण चयन, प्रशिक्षण की कमी, खराब प्रदर्शन मूल्यांकन, दोषपूर्ण प्रचार आदि के कारण है। मुद्रा बाजार की वृद्धि और सफलता के लिए, बैंकों में अच्छी तरह से प्रशिक्षित और समर्पित कार्मिकों की आवश्यकता है।

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में मुद्रा बाजार अभी भी अपेक्षाकृत कम विकसित हुए हैं और अभी तक पर्याप्त परिपक्वता प्राप्त नहीं कर पाए हैं। आर.बी.आई. द्वारा समय–समय पर किए गए नीतिगत उपायों से कमी धीरे–धीरे और तेजी से खत्म हो जाती है।

9.6.2 समस्याओं का हल करने में भारतीय रिजर्व बैंक की भूमिका

1952 में रिजर्व बैंक ने व्यापारिक बैंकों के ग्राहकों के अनुमोदित मियादी बिलों के विरुद्ध व्यापारिक बैंकों को ऋण प्रदान करने के लिये बिल बाजार योजना शुरू की। असली निर्यातकों को उदार स्तर पर सहायता करने के लिये 1958 में यह सुविधा निर्यात बिलों पर भी दी जाने लगी। मुद्रा बाजार को पुनः सक्रिय बनाने के लिये और 1952 की योजना के कुछ दोषों को दूर करने के लिये 1970 में नयी बिल बाजार योजना (New Bil Market Scheme) शुरू की गयी। यह बिल योजना भारत में एक अमली विल बाजार के निमाण में महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण और नयी बिल बाजार योजना के बाद मुद्रा बाजार की कुछ कमियाँ दूर हो गयी हैं, जैसे कि ग्रामीण और अर्द्ध–शहरी क्षेत्रों में शाखा विस्तार, मुद्रा बाजार के विभिन्न भागों में आपस में तालमेल, ब्याज दरों को युक्तिसंगत बनाना, मुद्रा के मौसमी अभाव को कम करना। लेकिन भारतीय रिजर्व बैंक की आशा पूरी नहीं हो सकी, क्योंकि नयी योजना केवल अनुसूचित बैंकों को ही सुविधाएँ प्रदान करती है और यह मुख्यतया व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में ही केन्द्रित है और कृषि क्षेत्र की सहायता करने में असफल रही है। इसके अतिरिक्त

पुनर्बट्टा सुविधा प्राप्त करने के लिये बैंकों से बहुत सी पूर्व–अपेक्षाएँ होती हैं जिन्हें उन्हें पूरा करना होता है।

अतः भारतीय मुद्रा बाजार की कार्यप्रणाली को सुधारने के लिये सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अभी बहुत कुछ करना शेष है ताकि भारत में वास्तव में एक विकसित मुद्रा बाजार हो।

9.6.3 सुधार के लिये सुझाव

मुद्रा बाजार की कार्यप्रणाली को सुधारने के लिये भारतीय रिजर्व बैंक को निम्नलिखित कदम उठाने चाहिये

1- देशी बैंकिंग का विनियमन (*Regularization of Indigenous Banks*) **:** भारतीय मुद्रा बाजार के उचित संगठन के लिये देशी बैंकरों का पंजीकरण अनिवार्य बना देना चाहिये। इन्हें रिजर्व बैंक के नियंत्रण में लाना चाहिये और इन्हें ऋण सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिये।

2- हुण्डियों का मानकीकरण (*Standardization of Hundis*) **:** व्यापारिक बिलों को लोकप्रिय बनाने के लिये देशी हण्डियों और बिलों का मानकीकरण आवश्यक है ताकि इनके विषय, भाषा और उपयोग में एकरूपता लायी जा सके। यह सही अर्थों में बिल बाजार के विकास में सहायक होगा।

3- पुनर्बट्टा सुविधाओं का विस्तार (*Expansion of Rediscounting Facilities*) **:** बिलों के विस्तृत प्रयोग के लिये भारतीय रिजर्व बैंक को द्य बिलों के पुनर्बट्टे के लिये सभी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिये। इससे मुद्रा बाजार की क्रियाओं के विस्तार में सहायता मिलेगी और कोषों की कमी भी दूर होगी।

4- समाशोधन गृह सुविधा (*Proper Clearnce House Facility*) **:** बैंकिंग सेवाओं के विस्तार के लिये पूरे देश में समाशोधन गृह सुविधाओं का विस्तार करना आवश्यक है। इसके लिये समाशोधन गृहों की संख्या बढ़ानी चाहिये और इनमें ऐसे सुधार लाने चाहिये कि ये यूरोप के समाशोधन गृहों की तरह कार्य करें।

5- स्टांप शुल्क में कमी (*Reduction in Stamp Duty*) **:** बिलों के प्रयोग को लोकप्रिय बनाने के लिये स्टांप शुल्क को एक उचित स्तर तक घटा देना चाहिये।

6- अन्य उपाय (*Other Suggestions*) **:** ऊपर बताये गये उपायों के अलावा, निम्नलिखित अन्य उपाय भी भारत में मुद्रा बाजार को सुधारने में सहायक हो सकते हैं:

(i) स्वीकृति गृहों और बट्टा गृहों की स्थापना।

(ii) ऑल इंडिया बैंकर्स एसोसिएशन के कार्यों का विस्तार।

(iii) तैयार फसलों के लिये कृषि बिल प्रणाली का विकास।

(iv) कोषों के शीघ्र और सस्ते हस्तांतरण की सुविधा।

बोध प्रश्न 'ग'

1. बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :

   (i) भारतीय मुद्रा बाजार एक विकसित मुद्रा बाजार की तरह संगठित भले ही न हो लेकिन यह निश्चित रूप से एक विकसित बाजार की तरह स्थिर और लोचशील है।

   (ii) भारतीय मुद्रा बाजार के विभिन्न संगठन परस्पर सहयोग कम और प्रतिस्पर्धा अधिक करते हैं।

   (iii) भारत में बैंकिंग के विस्तार के बाद भी भारतीय मुद्रा बाजार में महाजनों का प्रभुत्व बना हुआ है।

   (iv) देशी बैंकिंग क्षेत्र को भी भारतीय रिजर्व बैंक के नियंत्रण में लाना चाहिये।

   (v) हमारे देश के विभिन्न भागों में एक सी ब्याज दरे हैं।

2. रिक्त स्थानों को भरिये :

   (i) भारतीय रिजर्व बैंक ने नयी बिल बाजार योजना . . . . में शुरू की।

   (ii) भारत में काले धन ने महत्वपूर्ण रूप में मुद्रा बाजार में वित्तीय साधनों की पूर्ति को . . . . है।

   (iii) अपनी आर्थिक क्रियाओं के संबंध में भारतीय मुद्रा बाजार के संगठित और असंगठित क्षेत्रक एक दूसरे से पूर्णतया . . . . हैं।

   (iv) भारतीय मुद्रा बाजार में कोषों की . . . . है।

9.7 सारांश

आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा बाजार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्था है। औद्योगिक संवृद्धि और व्यापार के विस्तार,खास तौर से विदेशी व्यापार में, एक विकसित मुद्रा बाजार के होने से बहुत सुविधा मिलती है। मुद्रा बाजार की उपयोगिता न केवल व्यापार व औद्योगिक क्षेत्रों के लिये बल्कि सरकार और केन्द्रीय बैंक के अधिकारियों के लिये भी, आर्थिक क्रियाओं के अपेक्षित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये अपनी नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिये सीमित है।

मुद्रा बाजार पूँजी बाजार से भिन्न है। मुद्रा बाजार उन फर्मों व संस्थाओं को दिया गया एक सामूहिक नाम है जो अल्पकालीन साख यानि मुद्रावतु परिसम्पत्तियों का लेनदेन करती हैं। पूँजी बाजार का संबंध दीर्घकालीन निवेश योग्य कोषों की सप्लाई से होता है।

भारतीय मुद्रा बाजार के दो खण्ड हैं, संगठित और असंगठित। संगठित खण्ड में मांग मुद्रा बाजार, बिल बाजार, व्यापारिक बैंक, सहकारी व ग्रामीण बैंक, डाकघर बचत बैंक और पंजीकृत चिट फण्ड़ आते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक भारतीय मुद्रा बाजार का अग्रणी है। असंगठित क्षेत्र में देशी बैंक और महाजन आते हैं।

भारतीय मुद्रा बाजार को लंदन और न्यूयार्क मुद्रा बाजार की भाँति विकसित मुद्रा बाजार नहीं कहा जा सकता। एक बड़े असंगठित क्षेत्र की मौजूदगी,

विकसित बिल बाजार का अभाव, ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का अभाव, कोषों की कमी, विशेष रूप से व्यस्त समय में, इन सबके कारण भारतीय मुद्रा बाजार अल्पविकसित रहा है।

कठिनाइयों को दूर करने के लिये भारतीय रिजर्व बैंक ने 1970 में नयी बिल योजना शुरू की। सरकार ने रिजर्व बैंक के मुद्रा बाजार पर नियंत्रण को कड़ा करने के लिये 20 प्रमुख व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण भी किया। अब तक जो भी उपाय किये गये उनसे मुद्रा बाजार में सुधार तो हुआ है लेकिन अभी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। इस बारे में निम्नलिखित सुझाव रिजर्व बैंक द्वारा विचार करने व कार्यान्वित करने योग्य हैं हुण्डियों का मानकीकरण करके बिलों के प्रयोग को लोकप्रिय बनाना, बिले बाजार का विस्तार और संवर्धन, देशी बैंकरों और महाजनों का विनियमन, समाशोधन गृहों का विस्तार, मियादी बिलों पर स्टांप शुल्क कम करना आदि। ये उपाय रिजर्व बैंक की मुद्रा नीति को अधिक प्रभावी बनाने में सहायक होंगे और भारतीय मुद्रा बाजार के विकास में भी सहायक होंगे।

9.8 उपयोगी शब्दावली

- **मांग मुद्रा** (Call Money) : अति अल्पकाल के लिये, सात दिन से अधिक नहीं, साख सुविधा।
- **पूँजी बाजार** (Capital Market) : दीर्घकालीन निवेश योग्य कोषों की मांग व पूर्ति से संबंधित।
- **संपाश्विक ऋण** (Collateral Loan) : वह ऋण जो स्टॉक, बाँड, माल आदि प्रतिभूतियों पर दिया जाता है।
- **देशी बैंकर** (Indigenous Bankers) : जो हुण्डियों और वचन पत्रों का लेनदेन करते हैं।
- **मुद्रा बाजार** (Money: Market) : वे संस्थानात्मक व्यवस्थाएँ जों अल्पकालीन कोषों के उधार लेने और देने में सुविधा प्रदान करती हैं।
- **ट्रेजरी बिल** (Treasury Bill) : सरकार की ओर से भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्गमित बिल।
- **मियादी बिल** (Usance Bill) : एक निर्दिष्ट परिपक्वता समय वाले बिल।

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1	i) अल्पकालीन	ii) उधार–पत्रों	iii) कार्यात्मक		
2	i) गलत	ii) गलत	iii) सही	iv) सही	
ख 1	i) गलत	ii) गलत	iii) सही	iv) गलत	v) सही
2	i) और	iv)			
ग 1	i) गलत	ii) सही	iii) सही	iv) सही	v) गलत
2	i) 1970	ii) कम किया	iii) अलग	iv) कमी	

9.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 मुद्रा बाजार किसे कहते हैं? आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा बाजार का महत्व बताइये।

प्रश्न–2 मुद्रा बाजार के विभिन्न संघटकों का और भारत में उनकी कार्यप्रणाली का विवेचन कीजिये।

प्रश्न–3 एक विकसित मुद्रा बाजार की विशेषताएँ बताइये। क्या भारतीय मुद्रा बाजार को एक। विकसित मुद्रा बाजार कहा जा सकता है?

प्रश्न–4 मुद्रा बाजार और पूँजी बाजार में भेद कीजिये। भारतीय मुद्रा बाजार की वे कमियाँ बताइये जिनके कारण ये अल्पविकसित हैं।

प्रश्न–5 भारतीय मुद्रा बाजार की विशेषताएँ बताइये। इसकी कार्यप्रणाली में सुधार के लिये उपाय भी बताइये।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)
- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)
- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीष कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, SBPD पब्लिकेशन 2016)
- प्रो0 षिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेशन 2017)
- एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
- के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
- शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016)
- एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

****

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

DC B.COM-102

मुद्रा बैंकिंग एवं वित्तीय संस्थान

खण्ड – 3

भारत में गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थान

इकाई – 10 196–206

गैर–बैंकिंग (बैंकेतर) वित्तीय मध्यस्थता : सिंहावलोकन

इकाई – 11 207–224

सावधिक ऋण देने वाली वित्तीय संस्थाएं–अखिल भारतीय

इकाई – 12 225–238

सावधिक ऋण देने वाली संस्थाए

इकाई – 13 239–258

भारत में कृषि वित्त

विशेषज्ञ समिति

1. डॉ. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
2. डॉ देवश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
3. प्रो. आर.सी. मिश्रा, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन एवं वाणिज्य विद्याशाखा, उत्तराखण्उ मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
4. प्रो. लवकुश मिश्रा, निदेशक, इंस्टीट्यूट ऑफ टूरिज्म एण्ड होटल मैनेजमेंट, श्री भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।
5. प्रो. सोमेश शुक्ला, विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
6. प्रो. राधेश्याम सिंह, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

लेखक :– डॉ विकास सिंह, सहायक आचार्य, वाण्ज्यि विभाग, एस.एस.खन्ना गर्ल्स डिग्री कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

सम्पादक :– प्रो. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

परिमापक :–

अनुवाद की स्थिति में

मूल लेखक	अनुवाद
मूल सम्पादक	भाषा सम्पादक
मूल परिमापक	परिमापक

सहयोगी टीम

संयोजक :– डॉ देवेश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

2020 (मुद्रित)
© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2020
ISBN- 978-93-83328-88-8

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।
प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021

इकाई–10 गैर–बैंकिंग (बैंकेतर) वित्तीय मध्यस्थता : सिंहावलोकन

इकाई की रूपरेखा

1. उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थता
    - 10.2.1 बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थता
    - 10.2.2 बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थों की भूमिका
    - 10.2.3 विभिन्न प्रकार के बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थ
4. भारतीय जीवन बीमा निगम
5. सामान्य बीमा कंपनियां
6. यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया
7. अन्य बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं
8. सारांश
9. उपयोगी शब्दावली
10. बोध प्रश्नों के उत्तर
11. महत्वपूर्ण प्रश्न

10.0. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- ❖ वित्तीय मध्यस्थता का अर्थ बता सकेगें,
- ❖ बँकेत्तर वित्तीय मध्यस्थों की भूमिका का वर्णन कर सकेगें,
- ❖ भारत में विभिन्न प्रकार के बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थों को पहचान सकेगें, तथा
- ❖ बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थों के रूप में विभिन्न संस्थानों की भूमिका और उनके महत्त्व का वर्णन कर सकेगें।

10.1. प्रस्तावन

पिछले खण्ड में आपने व्यापारिक बैंकिंग के सिद्धान्त और व्यवहार के बारे में पढ़ा था । आपने देश के आर्थिक विकास में विभिन्न बैंकिंग संस्थाओं, खास तौर से व्यापारिक बैंकों और केन्द्रीय बैंक की भूमिका का भी अध्ययन किया है।

इस इकाई में आप भारतीय जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा कम्पनियों और यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया सहित विभिन्न बैंकेतर वित्तीय संस्थाओं की भूमिका का अध्ययन करेंगे । इन संस्थाओं का विस्तृत अध्ययन करने से पहले वित्तीय मध्यस्थता का अर्थ और बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थों व वित्तीय मध्यस्थों यानि व्यापारिक बैंकों में अन्तर जानना आवश्यक है।

10.2. बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थता

बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थता, भारतीय आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थता उधारकर्ताओं और अंतिम उधारदाताओं के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य करते हैं, जो सुरक्षा और तरलता प्रदान करते हैं। गैर–बैंकिंग/बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थता को समझाने हेतु ये अत्यंत आवश्यक हो जाता है के निम्नलिखित बिन्दुओं पर बात करें:

10.2.1. बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थता का अर्थ

वित्तीय मध्यस्थता वित्तीय संस्थाओं के लिए प्रयोग की जाने वाली आधुनिक शब्दावली है। वित्तीय मध्यस्थ बचत करने वालों और पूंजी का प्रयोग करने वालों को एक दूसरे के पास में लाने के लिए मध्यस्थ के रूप में कार्य करते हैं । ये बचत करने वालों से, उन्हें प्रतिभूतियां बेचकर, पैस एकत्र करते हैं और इसे ऋण लेने वालों को उधार देते हैं। मोटे तौर पर वित्तीय मध्यस्थ शब्दावली का प्रयोग बहुत तरह की संस्थाओं के लिए किया जा सकता है । इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

- व्यापारिक बैंक *(Commercial Banks)*
- बीमा कम्पनियाँ *(Insurance Companies)*
- भविष्य निधि संगठन *(Provident Fund Organizations)*
- निवेश कम्पनियाँ *(Investments Companies)*
- विशेष वित्तीय कम्पनियाँ *(Special Financial Companies)*
- शेयर दलाल व व्यापारी *(Share Brokers and Traders)*
- अवक्रय वित्तीय कम्पनियाँ *(Financial Promoters)*
- चिट फण्ड कम्पनियाँ *(Chit-Fund Companies)*

इन संस्थाओं में से व्यापारिक बैंक, बैंक वित्तीय संस्थाओं की श्रेणी में आते हैं, क्योंकि ये जनता से पैसा एकत्र करते हैं और उन्हें मांग करने पर देते हैं। ये व्यक्तियों और फर्मों को मुख्यतया अल्पकाल के लिए उधार देते हैं । साधारणतया व्यापारिक बैंक व्यापार या उद्योग के विकास के लिए प्रत्यक्ष रूप से प्रवर्तन क्रियाएं नहीं करते या उनमें भाग नहीं लेते। दूसरी ओर, बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं वित्तीय मध्यस्थों के रूप में कार्य करके जनता से बचत एकत्र करती हैं और फिर इसे व्यापारिक फर्मों को उधार देती हैं। व्यापारिक बैंकों को छोड़कर ऊपर बतायी गयी अन्य सभी संस्थाएं बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थ हैं। बैंक और बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थों में निम्नलिखित अन्तर हैं :

1. बैंकिंग संस्थाएं जनता से मांग जमाएं और अन्य जमाएं एकत्र करती हैं और उसे ग्राहकों को मांग करने पर देती हैं। बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं जनता से लिए गए पैसे को एक निर्दिष्ट समय के बाद ही वापस करती हैं।

2. बैंकिंग संस्थाएं व्यक्तियों और व्यापारिक फर्मों को मुख्यतया अल्पकाल के लिए ऋण देती हैं। बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं केवल व्यापारिक फर्मों को मुख्यतया सावधिक ऋण देती हैं। ये औद्योगिक प्रतिष्ठानों के शेयरों और ऋणपत्रों में भी अभिदान करती हैं।

3. व्यापारिक बैंक साधारणतया प्रवर्तन क्रियाओं में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेते। इसके विपरीत, बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं देश में तीव्र औद्योगिक विकास के लिए बहुत सी प्रवर्तन क्रियाएं करती हैं।

4. देश की सभी बैंकिंग संस्थाएँ संगठित क्षेत्र में हैं। बैंकिंग कम्पनी (विनियमन) अधिनियम, 1949 सभी बैंकिंग संस्थाओं पर लागू होता है। लेकिन बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थ संगठित व असंगठित दोनों क्षेत्रकों में आते हैं।

10.2.1. बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थों की भूमिका

बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं मध्यस्थों के रूप में कार्य करके बचत करने वालों और ऋण लेने वालों को एक दूसरे से मिलाती हैं। इन संस्थाओं का मध्यस्थता कार्य, व्यक्तियों को अपने कोशोंको सुरक्षित निवेश करने में और व्यापारिक फर्मों की बिना किसी समस्या के ऋण प्राप्त करने में सहायता करता है।

उदाहरण के लिए मान लीजिए कि कार बनाने वाली एक फर्म 500 करोड़ रु. का ऋण लेना चाहती है। वित्तीय मध्यस्थों के न होने पर उसे ऐसे व्यक्ति ढूंढ़ने पड़ेंगे, जिनसे वह इतना ऋण ले सके, और यह बहुत कठिन कार्य होगा। इसी तरह मान लीजिए कि आप 5,000 रु. उधार देना चाहते हैं। आप किस प्रकार किसी ऐसे ऋण लेने वाले की खोज करेंगे, जिसे केवल 5,000 रु. उधार लेने हों । ऐसी स्थितियों में वित्तीय संस्थाएं सहायक होती हैं। ये समस्या का हल इस प्रकार करती हैं कि सभी पक्षों को लाभ होता है । ये बचत करने वालों (उनके कोशोंको एकत्र करके), और इस बचत का प्रयोग करने वालों (इस प्रकार एकत्रित कोष को उधार देकर) के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य करती हैं। इसके अतिरिक्त बड़ी मात्रा में कोशोंके संग्रहण से कुछ प्रशासनिक मितव्ययताएं भी होती हैं। मध्यस्थों के रूप में कार्य करके बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं व्यक्तियों, व्यापारिक फर्मों और पूरे देश की निम्नलिखित रूप में सहायता करती हैं :

1. बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं निवेशकर्ताओं को तीन प्रकार के लाभ यानि कम जोखिम *(low risk)*, नियमित प्रतिफल *(regular return)* और पूंजीगत लाभ *(capital profit or gain)*, प्रदान करके उनकी सहायता करती हैं।

2. ये व्यापारिक फर्मों की समय पर व उचित लागत पर कोष प्राप्त करने में सहायता करती हैं। ये बहुत से छोटे–छोटे निवेशकर्ताओं से बचतों को एकत्रित करने का जोखिम उठाती हैं। इस तरह व्यापारिक फर्मों को पूरे देश में फैले छोटे–छोटे निवेशकर्ताओं तक जाने की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता।

3. बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं सरकार द्वारा समय–समय पर निश्चित की गयी. प्राथमिकताओं के अनुसार अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रकों की भी सहायता करती हैं।

4. पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित किये गये उद्यमों *(industries/enterprises)* को आसान शर्तों पर वित्तीय सहायता प्रदान करके ये देश में क्षेत्रीय असंतुलन को ठीक करने में सहायता करती हैं।

5. जन तीव्र औद्योगीकरण के कार्यक्रम वित्त की अपर्याप्तता के कारण रुक जाते हैं, तब ये बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं ऋणों *(loans)*, अभिमान अंषों *(preference shares)* या साधारण अंषों *(ordinary shares)* और ऋणपत्रों *(debentures)* में अभिदान *(subscription)* के रूप में महत्त्वपूर्ण सहायता प्रदान करती है।

6. ये उद्यमकर्ताओं को तकनीकी *(technological)*, वित्तीय *(financial)* और प्रबंधकीय *(managerial)* सहायता प्रदान करती हैं। ये विभिन्न प्रवर्तन कार्य भी करती हैं, जैसे परियोजना बनाना, उनकी व्यवहार्यता का अध्ययन करना, परियोजनाओं को कार्यान्वित करना आदि। इस प्रकार वित्तीय संस्थाएं औद्योगिक विकास की गति को तेज करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

10.2.2. विभिन्न प्रकार के बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थ

बैंकेतर वित्तीय संस्थाओं के कार्यों के आधार पर इन्हें मोटे तौर पर 3 श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है, आइये इन्हें समझने का प्रयास करें:–

1. निवेश ट्रस्ट (Investment Trusts) : इन संस्थाओं को निवेश बैंक भी कहते हैं। ये दूर–दूर तक फैले हुए लोगों की जमाएं एकत्रित करती हैं और उन्हें उत्पादक कार्यों में लगाती हैं। दीर्घकालीन ऋण (*Long Term Loans*) देने के अतिरिक्त ये अपना अतिरिक्त पैसा विभिन्न प्रतिभूतियों में भी लगाती हैं। ये व्यापारी बैंकिंग क्रियाएं करती हैं तथा प्रतिभूतियों का अभिगोपन भी करती हैं। इस प्रकार की संस्थाओं में भारतीय जीवन बीमा निगम (*Life Iinsurance Corporation of India*), भारतीय सामान्य बीमा निगम (*General Insurance Corporation of India*) और यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया (*Unit Trust of India*) आते हैं।

2. विकास बैंक (Development Banks) : इन संस्थाओं को विशेष वित्तीय संस्थाएं भी कहते हैं। ये विभिन्न रूपों में औद्योगिक उपक्रमों को दीर्घकालीन वित्तीय सहायता प्रदान करती हैं। चूंकि ये अनेक प्रवर्तन कार्य भी करती हैं, अतः इन्हें विकास बैंक भी कहा जाता है। इन संस्थाओं में राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (*Industrial Financial Corporation of India*), भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम (*Industrial Credit and Investment Corporation of India*) और भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (*Industrial Development Bank of India*) तथा राज्य स्तर पर राज्य वित्त निगम (*State Finance Corporation*) और राज्य औद्योगिक विकास निगम (*State Industrail Development Corporation*) आते हैं।

3. अन्य संस्थाएं : कुछ संस्थाएं ऐसी होती हैं, जो साधारणतया वित्तीय सहायता नहीं देतीं। ये मुख्यतया प्रवर्तन कार्य करती हैं और उद्यमकर्ताओं को विभिन्न प्रकार की सेवाएं प्रदान करती हैं। इनमें राष्ट्रीय लघु उद्योग विकास निगम (*National Small Industries Development Corporations*), राज्य लघु उद्योग विकास निगम (*State SIDs*) और तकनीकी परामर्श संगठन शामिल हैं।

बोध प्रश्न 'क'

1. मोटे तौर पर बैंकेतर संस्थाएं तीन प्रकार की होती हैं। वे प्रकार कौन–कौन से हैं?

....
....
....
....
....
....

2. निम्नलिखित कथनों में कौन सा सही है और कौन सा गलत :

   (i) वित्तीय मध्यस्थ पूंजी की मांग करने वालों और सप्लाई करने वालों का एक दूसरे से सम्पर्क कराते हैं।

   (ii) बैंकेतर संस्थाएं व्यक्तियों और व्यापारिक फर्मों को पैसा उधार देती हैं।

   (iii) बैंकिंग संस्थाएं मुख्यतया दीर्घावधि के लिए ऋण देती हैं, जबकि बैंकेतर संस्थाएं अल्पावधि के लिए।

   (iv) बैंकेतर संस्थाएं पिछड़े क्षेत्रों में उद्यमकर्ताओं को आसान शर्तों पर वित्तीय सहायता प्रदान करती हैं।

   (v) राज्य लघु उद्योग विकास निगम मुख्यतया उद्यमकर्ताओं को परामर्श व अन्य ऐसी सेवाएं प्रदान करते हैं।

   (vi) बैंकेतर संस्थाएं मुख्यतया उद्यमकर्ताओं को तकनीकी, वित्तीय और प्रबंधकीय सहायता प्रदान करती है।

   (vii) बैंकिंग कम्पनी (विनियमन) अधिनियम, 1949 सभी बैंकिंग संस्थाओं पर लागू नहीं होता है।

   (viii) बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं जनता से लिए गए पैसे को एक निर्दिष्ट समय के बाद ही वापस करती हैं।

   (ix) साधारणतया व्यापारिक बैंक उद्योग के विकास के लिए प्रत्यक्ष रूप से प्रवर्तन क्रियाएं नहीं करते हैं।

   (x) निवेश ट्रस्ट संस्थाओं को निवेश बैंक भी कहते हैं।

10.3. भारतीय जीवन बीमा निगम

भारतीय जीवन बीमा निगम का मुख्यालय भारत की वित्तीय राजधानी मुंबई में है। भारतीय जीवन बीमा निगम के 8 आंचलिक कार्यालय और 101 संभागीय कार्यालय भारत के विभिन्न भागों में स्थित हैं। इसके लगभग 2048 कार्यालय देश के कई शहरों में स्थित हैं और इसके 10 लाख से ज्यादा एजेंट भारत भर में फैले हैं।

(क) जीवन बिमा एवं जीवन बिमा अधिनियम का इतिहास – जीवन बीमा अपने आधुनिक रूप के साथ 1818 दशक में इंग्लैंड से भारत आया। भारत की पहली जीवन बीमा कम्पनी कलकत्ता में युरोपियन्स के द्वारा शुरू कि गई जिसका नाम था ओरिएन्टल लाईफ इंश्यो रेंस। भारत की पहली जीवन बीमा कम्पनी की नीव 1870 में मुंबई म्युचुअल लाइफ इंश्योररेंस सोसायटी के नाम से रखी गई। पूरी तरह स्वदेशी इन कम्पनियों की शुरूआत देशभक्ति की भावना से हुयी। भारत बीमा कम्पनी 1896 भी राष्ट्रीयता से प्रभावित एक ऐसी ही कम्पनी थी। 1912 में लाइफ इंश्योरेंस कम्पनी एक्ट और प्रोविडेन्ड फन्ड एक्ट पारित हुये, जिसके परिणामस्वरूप बीमा कम्पनियों के लिए अपने प्रीमियम रेट टेबल्स और पेरिओडिकल वैल्युएशन्स को मान्यता प्राप्त अधिकारी से प्रमाणित करवाना आवश्यक हो गया। द इंश्योरेंस एक्ट 1938 भारत का पहला ऐसा कायदा था, जिसने जीवन बीमा के साथ– साथ सभी बीमा कम्पनियों के उद्योग पर राज्य सरकार का कड़ा नियंत्रण लागू किया। इसके बावजूद भारत में काफी समय के बाद जीवन बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण 18 जनवरी 1956 में हुआ। भारतीय संविधान ने 19 जून 1956 को लाइफ इंश्योरेंस कार्पोरेशन एक्ट पास किया। 1 सितंबर 1956 में लाइफ इंश्योरेंस कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया की स्थापना हुई, जिसका उद्देश था, जीवन बीमा को बड़े पैमाने पर फैलाना, खास तौर पर गाँव में, ताकि भारत के हर नागरिक को पर्याप्त आर्थिक सहायता उचित दरों पर उपलब्ध करवाई जा सके। 244 निजी कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण द्वारा जीवन बीमा निगम अधिनियम, 1956 के अंतर्गत किया गया था। इस निगम की स्थापना का मुख्य उद्देश्य जीवन बीमा के व्यवसाय को समाज को सर्वाधिक लाभ देने व कोशोंका उपयोग योजना की प्राथमिकताओं के अनुसार करने के लिए चलाना था। भारतीय जीवन बीमा निगम का गठन सरकार के पूर्ण स्वामित्व वाले निगम के रुप में किया गया है। यह निगम अपने विभिन्न क्षेत्रीय केन्द्रों तथा विभिन्न शाखाओं के माध्यम से सम्पूर्ण भारत वर्ष में कार्यरत् है।

(ख) जीवन लक्ष्य – "प्रतियोगी लाभ देने वाले उत्पादों और वित्तीय सेवाएं मुहैया कराकर आर्थिक सुरक्षा के माध्यम तथा प्रतियोगी लाभ देने वाले उत्पादों से लोगों से लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाना और प्रदर्शन करने वाले आर्थिक विकास के लिये उपाय का प्रबंध करना।"

(ग) दर्शन –"एक महत्वंपूर्ण प्रतिस्पर्धी वा हस्तंतरणीय– राष्ट्रीय आर्थिक ढाँचा खड़ा करना, जो समाज के काम आये और भारत के लिये गर्व का विषय हो।" यदि भारतीय जीवन बिमा निगम के औपचारिक जीवन लक्ष्य एवं दर्शन पर ध्यान दें तो हम पाएंगे की अपने मूल बीमा सम्बंधित व्यापार के अलावा राष्ट्रीय आर्थिक ढांचा खड़ा करने में सेवा एवं सहयोग प्रदान करना भी मुख्य बिंदु बन गया है।

(घ) विशिष्ट उद्देश्य – उपरोक्त दर्शन के क्रम में निगम के निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्यों को निर्धारित किया गया है :

1. जीवन बीमा का संदेश पूरे देश में गांव–गांव तक पहुंचाना ।
2. समाज के विभिन्न वर्गों के लिए उपयुक्त बीमा योजनाओं के द्वारा देश में प्रत्येक बीमा योग्य स्त्री व पुरुष को जीवन बीमा सुरक्षा देना।
3. राष्ट्रीय निर्माण के लिए प्रभावी तरीके से सार्वजनिक बचतों को एकत्रित करना।

4. सौजन्यतापूर्वक कारगर सेवा प्रदान करके बीमित व्यक्तियों का ज़्यादा से ज़्यादा हित साधने के लिए निगम में काम करने वाले तमाम लोगों की कार्यक्षमता का अधिकतम इस्तेमाल करना।

5. जीवन बीमा को व्यापक प्रसार देना और ख़ास तौर से ग्रामीण इलाकों और सामाजिक–आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों तक उसे पहुंचाना।

6. बीमा संलग्न बचत को आकर्षक बना कर जनता को बचत के लिए प्रेरित करना।

7. पॉलिसी धारकों को कम दरों पर पूर्ण सुरक्षा और तात्कालिक व कुशल सेवा प्रदान करना।

8. बदलते सामाजिक–आर्थिक परिवेश के मद्देनजर पैदा होने वाली जीवन बीमा आवश्यकताओं को पूरा करना।

9. यह ध्यान रखते हुए कि पैसा पॉलिसी धारकों का है, मितव्ययिता से कार्य करना और कोशों का इस प्रकार निवेश करना कि पूंजी सुरक्षित रहे और अधिकतम प्रतिफल भी मिले।

10. न्यासिता की भावना से कार्य करने वाले प्रबंध के अन्तर्गत एक गत्यात्मक और सशक्त संगठन का विकास करना ।

(च) भारतीय जीवन बीमा निगम की निवेश नीति – यह निगम वास्तव में एक निवेश संस्था है। इसकी निवेश नीति मूलधन की सुरक्षा, विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों में निधियों को लगाने, उद्यमों के प्रकार और संख्या, परिपक्वता और क्षेत्रों संबंधी मूलभूत नियमों को ध्यान में रखकर बनायी जाती है। निगम से यह आशा की जाती है कि यह व्यावसायिक नियमों के आधार पर कार्य करे, और इसकी निवेश नीति का उद्देश्य पॉलिसी धारकों का हित होगा, जब तक कि ऐसी स्थिति न हो, जिसमें देश के हित को प्राथमिकता देनी हो।

पूर्व में इसकी निवेश नीति का स्वरूप बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 27 A द्वारा निर्धारित होता था। इसमें अप्रैल, 1975 में संशोधन किया गया। भारतीय जीवन बीमा निगम की निवेश नीति के निर्देशक नियम निम्नलिखित हैं :

1. निगम की निवेश नीति का आधार यह है कि इसे अपने कोशों का निवेश इस प्रकार करना चाहिए, जिससे पॉलिसी धारकों के हित सुरक्षित रहें और जिससे इनको अधिकतम लाभ हो । लेकिन इसे देश के हित की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

2. निवेश विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों, उद्योगों व क्षेत्रों में किया जाना चाहिए। निगम को नीति किसी कम्पनी के बकाया ईक्विटी शेयरों के 30% से अधिक नहीं खरीदने की है।

3. निगम को विशुद्ध रूप से एक निवेशकर्ता की तरह कार्य करना चाहिए। इसे प्रतिभूतियों की कीमतों में अस्थायी उतार–चढ़ावों का फायदा उठाने के लिए कार्य नहीं करना चाहिए।

4. निगम को प्रतिभूतियों के निर्गमन का अभिगोपन परियोजना की वित्तीय, आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और प्रबंधकीय दृष्टि से अच्छी तरह जांच–पड़ताल करने के बाद करना चाहिए।

5. निगम को समय–समय पर उन सब परिसम्पत्तियों को पुनर्विलोकन करना चाहिए, जिनमें उसने निवेश किया है और इनके गठन में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन करना चाहिए ।

6. विशेष परिस्थितियों को छोड़कर निगम को ऐसे किसी कारोबार के प्रबंध का नियंत्रण अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए या उसमें हिस्सा नहीं लेना चाहिए, जिसमें उसने निवेश किया है।

(छ) निवेश नीति का मूल्यांकन – जीवन बीमा निगम ने राष्ट्रीय महत्व की सामाजिक–आर्थिक योजनाओं और सार्वजनिक व निजी क्षेत्रक के उपक्रमों को वित्त प्रदान करने के लिए लोगों से एकत्रित की गयी जमाओं से एक बहुत बड़ा कोष बनाकर अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया है। निगम के निवेश का एक बड़ा भाग सरकारी प्रतिभूतियों में है और सामाजिक दायित्व को पूरा करने वाली योजनाओं और परियोजनाओं को ऋणों के रूप में है। संयुक्त पूंजी कम्पनियों में बहुत थोड़ा भाग लगाया गया है। सार्वजनिक क्षेत्रक को निगम द्वारा दी गयी सहायता का तीन चौथाई भाग मिला और बाकी का एक चौथाई भाग अन्य क्षेत्रकों को मिला।

विभिन्न उद्योगों और क्षेत्रों में किये गये निवेश में कोई महत्त्वपूर्ण विविधता नहीं आयी है। इसने कृषि क्षेत्रक को जो भारतीय अर्थव्यवस्था का सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र माना जाता है, कोई सहायता नहीं दी । यदि जीवन बीमा निगम अपने कोशों का निवेश औद्योगिक व कृषि क्षेत्र में करने के लिए एक अधिक यथार्थवादी नीति अपनाये तो इससे भविष्य में देश में संतुलित आर्थिक संवृद्धि लाने में सहायता मिलेगी।

निगम की स्थापना के समय से ही पूंजी बाजार में इसकी प्रमुख भूमिका रही है। यद्यपि निगम के कोशों का बहुत छोटा भाग निजी क्षेत्र के उद्यमों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रयोग किया जाता है, लेकिन इसके साधनों का परिमाण इतना बड़ा है कि यह छोटा भाग भी देश में औद्योगिक वित्त के सबसे बड़े स्रोतों में से एक रहा है।

निगम की निवेश नीति अपनी उपलब्धियों के बावजूद विवाद का विषय रही है। यह कहा जाता है कि नये औद्योगिक जोखिमों को इसका योगदान बहुत कम रहा । इसमें कोई शक नहीं कि निगम के पास जो भी कोष हैं, वे आम लोगों की मेहनत करके की गई बचते हैं। इसलिए निगम इस स्थिति में नहीं है कि वह नई औद्योगिक जोखिमों में निवेश करे । फिर भी, निगम अन्य साख संस्थाओं के साथ अभिगोपन सहायता संघ बनाकर और अन्य वित्तीय संस्थाओं की प्रतिभूतियों, शेयरों और ऋणपत्रों को उदारतापूर्वक खरीदकर इनकी सहायता कर सकता है। यह कहा जाता है कि सामाजिक विकास परियोजनाओं, जैसे आवास, जल–निकास, जल–आपूर्ति और अन्य मूल सुविधाओं में इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण नहीं रही है। इस प्रकार भारतीय पूंजी बाजार की विभिन्न वित्तीय संस्थाओं में जीवन बीमा निगम का अद्वितीय स्थान है। इसके कोशों की मात्रा बहुत अधिक होने से जीवन बीमा निगम के निर्णय जो चाहे सरकारी बांडों, औद्योगिक प्रतिभूतियों या स्थावर संपदा के बारे में हों, पूंजी बाजार पर निर्णायक प्रभाव डालते हैं।

10.4. सामान्य बीमा कम्पनियां

भारतीय साधारण बीमा निगम (General Insurance Corporation of India) भारत के घरेलू पुनर्बीमा बाजार की एकमात्र कम्पनी है। भारत में पूरे साधारण बीमा व्यवसाय को, साधारण बीमा व्यवसाय (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम 1972 के अधीन राष्ट्रीयकृत किया गया था। कम्पनियों के प्रबंध के लिए इसने 1973 में भारतीय सामान्य बीमा निगम (GICI) की स्थापना की। यह निगम एक नियंत्रक कम्पनी है, जिसकी निम्नलिखित चार नियंत्रित कम्पनियां हैं :

- नेशनल इन्शोरेंस कंपनी लिमिटेड (*National Insurance Company Limited*)
- दि न्यू इंण्डिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (*The New India Assurance Company Limited*)
- दि ओरिएण्टल इन्शोरेंस कंपनी लिमिटेड (*The Oriental Insurance Company Limited*) एवं
- युनाइटेड इंडिया इन्श्योरेंस कंपनी लिमिटेड (*United India Insurance Company Limited*)

(क) लक्ष्य – भारतीय साधारण बीमा निगम निम्नलिखित बिंदु द्वारा अपना लक्ष्य प्राप्त करना :

- व्यावसायिक भागीदारों के साथ दीर्घ अवधि के पारस्पारिक लाभकारी संबंध स्थापित करना,
- अच्छे व्यावसायिक आचार और मूल्यों का अनुपालन करना,
- नवीनतम तकनीक को कार्यान्वित करना,
- उद्यम जोखिम प्रबंधन और नए निदानों सहित प्रक्रिया को जारी करना,
- कर्मचारियों की बेहतरीन व्यावसायिक टीम को विकसित कर निगम से सहसंबद्ध रखना,
- सार्वभौम स्थिति के अनुरूप लाभप्रदता एवं वित्तीय क्षमताओं का विस्तारण

(ख) भारतीय साधारण बीमा निगम का व्यवसाय – भारतीय साधारण बीमा निगम का व्यवसाय दो भागो में विभाजित किया जा सकता है –

(i) स्वदेशी पुनर्बीमा व्यवसाय

(ii) अन्तरराष्ट्रीय पुनर्बीमा व्यवसाय

(i) स्वदेशी पुनर्बीमा व्यवसाय – स्वदेशी पुनर्बीमा बाजार में एकल बीमाकर्ता के रूप में सा. बी. नि. भारतीय बाजार में सीधे कार्यरत सामान्य बीमा कंपनियों को पुनर्बीमा प्रदान करती है। सा. बी. नि. प्रत्येक पालिसी पर कुछ सीमाओं के तहत 20% साविधिक अर्पण प्राप्त करती है। यह कई स्वदेशी कंपनियों के ट्रीटी कार्यक्रम एवं फैकलटेटिव प्लेसमेंट में प्रमुख भूमिका अदा करती है।

(ii) अन्तरराष्ट्रीय पुनर्बीमा व्यवसाय – सा. बी. नि. एफ्रो एशियन क्षेत्र में एक प्रभावशाली पुनर्बीमाकर्ता भागीदार के रूप में अपना स्थान बना रहा है और सार्क देशों, दक्षिण पूर्व एशिया, मध्य पूर्व और अफ्रीका की कई बीमा कम्पनियों के पुनर्बीमा कार्यक्रमों में अग्रणी रूप से भाग ले रही है। अपने अन्र्तराष्ट्रीय ग्राहकों को सरल उपलब्धता, प्रभावी सेवा और टेलर मेड पुनर्बीमा संरक्षण प्रदान करने के लिए सा. बी. नि. ने लंदन और मास्को में संपर्क/प्रतिनिधि कार्यालय खोले हैं। सा. बी. नि. व्यवसाय के वरीयता क्रम के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय बाजार द्वारा उत्पन्न जोखिमों पर ट्रीटी तथा फैकलटेटिव व्यवसाय हेतु उल्लिखित क्षमता उपलब्ध करा रही है।

बोध प्रश्न 'ख'

1. भारतीय साधारण बीमा निगम का व्यवसाय दो भागो में विभाजित किया जा सकता है–

   (i) ....

   (ii) ....

2. बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत ।

   (i) जीवन बीमा निगम एक नियंत्रक कम्पनी है।

   (ii) जीवन बीमा निगम को सट्टेबाजी के उद्देश्य से प्रतिभूतियों में निवेश करना चाहिए ।

   (iii) जीवन बीमा निगम द्वारा प्राप्त ब्याज, लाभांश, प्रतिदान और शोधन उसके निवेश करने योग्य साधनों का एक भाग हैं।

   (iv) प्रतिभूति निर्गमन का अभिगोपन करने से पहले जीवन बीमा निगम को विस्तृत छानबीन करनी चाहिए।

   (v) जीवन बीमा निगम की निवेश नीति में सार्वजनिक व निजी क्षेत्रकों को समान महत्त्व दिया गया है।

   (vi) भारतीय साधारण बीमा निगम का व्यवसाय दो भागो में विभाजित किया जा सकता है – स्वदेशी पुनर्बीमा व्यवसाय और राष्ट्रीय पुनर्बीमा व्यवसाय।

   (vii) 1919 में लाइफ इंश्योरेंस कम्पनी एक्ट और प्रोविडेन्ड फन्ड एक्ट पारित हुये, जिसके परिणामस्वरूप बीमा कम्पनियों के लिए अपने प्रीमियम रेट टेबल्स और पेरिओडिकल वैल्युएशन्स को मान्यता प्राप्त अधिकारी से प्रमाणित करवाना आवश्यक हो गया।

10.5. यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया (यूटीआई) से यूटीआई म्यूचुअल फंड

यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया (यूटीआई) कही जाने वाली संस्था को दिनांक 01 फरवरी 2003 से यूटीआई म्यूचुअल फंड के नाम से जाना जाने लगा। यूटीआई को

सेबी पंजीकृत म्यूचुअल फंड के रूप बना दिया गया तथा मूल रूप से म्यूचुअल फंड निगम के रूप में प्रदर्शित किया गया। यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया एक्ट 1963 को निरस्त कर दिया गया था। यूटीआई एमएफ का आरंभ 14 जनवरी, 2003 को हुआ था, इसने यूटीआई एसेट मैनेजमेंट कंपनी लिमिटेड के दृष्टिकोण पर चलना शुरु किया।

यूनिट ट्रस्ट की प्रारंभिक पूंजी सांविधिक रूप से 5 करोड़ रु. निश्चित की गयी थी। इसमें भारतीय रिजर्व बैंक को 2.5 करोड़ रु., जीवन बीमा निगम को 75 लाख रु., स्टेट बैंक व उसके सहायक बैंकों को 75 लाख रु., तथा बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थाओं को 1 करोड़ रु. लगाने थे। 1976 में ट्रस्ट में लगी रिजर्व बैंक की प्रारंभिक पूंजी को भारतीय औद्योगिक विकास बैंक को हस्तांतरित कर दिया गया और इस प्रकार यह इस बैंक की एक संबंधित संस्था बन गया।

पश्चिमी देशों में यूनिट टस्ट बहुत लोकप्रिय रहे हैं और इन्होंने वास्तविक निवेश कम्पनियों से भी अधिक प्रगति की है। यह यूनिट ट्रस्टों को मिलने वाले ऐसे लाभों के कारण हुआ है, जो अन्य मध्यस्थों को प्राप्त नहीं हैं। यूनिट ट्रस्टों के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं :

1. निवेश में विविधता या जोखिमों का एकीकरण
2. व्यावसायिक प्रबंध
3. अत्यधिक तरलता

एक छोटा निवेशकर्ता यदि प्रत्यक्ष रूप से कम्पनियों के शेयरों और ऋणपत्रों में निवेश करता है तो वह जोखिम से नहीं बच सकता । क्योंकि उसके पास निवेश करने के लिए साधन बहुत कम होते हैं, इसलिए उसके निवेश में विविधता संभव नहीं है। लेकिन यूनिट ट्रस्टों के शेयरों में निवेश करके इन ट्रस्टों की निवेश नीति के कारण जोखिम से बचा जा सकता है। यूनिट ट्रस्टों की नीति कुछ ही कम्पनियों में निवेश को केन्द्रित करने की नहीं होती, चाहे इन कम्पनियों की वित्तीय स्थिति कैसी भी हो। इसके अतिरिक्त इन्हें व्यावसायिक प्रबंध का लाभ मिलता है। यूनिटों के शोधन की विशेषता तरलता को सुनिश्चित करती है। वास्तव में इनका यही वह लाभ है, जो बचत करने वालों की बड़ी संख्या को यूनिटों में पैसा लगाने के लिए प्रेरित करता है।

(क) यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया की स्थापना : भारतीय केन्द्रीय बैंकिंग जांच कमेटी ने 1931 में ही भारत में छोटी बचत करने वालों की बचतों को संग्रहित करने में यूनिट ट्रस्टों का महत्त्व जान लिया था। 1954 में सर्राफ कमेटी ने फिर इन ट्रस्टों की स्थापना पर जोर दिया। लेकिन यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया की स्थापना यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया अधिनियम, 1963 के अंतर्गत 1964 में ही हो पायी । यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया एक निवेश संस्था है, जो भारत की औद्योगिक संवृद्धि का एक भाग छोटे निवेशकर्ता को प्रस्तुत करती है और न्यूनतम जोखिम तथा उचित प्रतिफल पर उसकी ओर से उत्पादक निवेश करती है।

यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया विकास बैंक नहीं है। जैसा कि नाम से ही पता लगता है, यह एक निवेश ट्रस्ट है। यह वित्तीय संस्था है, जो अन्य आर्थिक इकाइयों से बचते संग्रहित करती है और उनको ऋण देती है, जो इनका उत्पादक उपयोग करना चाहते हैं। यूनिट ट्रस्ट अमेरिका में म्यूचुअल फंडों के नाम से जाना जाता है।

(ख) यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया के उद्देश्य : इस ट्रस्ट का मुख्य उद्देश्य देश में बचतों को प्रोत्साहित करना और संग्रहित करना है। यह इन बचतों को उत्पादक निगम निवेशों का रूप देता है, ताकि देश की अर्थव्यवस्था की संवृद्धि बढ़े और उसमें विविधता आए। ट्रस्ट के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

(i) समाज की बचतों को एकत्र करना और उन्हें उत्पादन निवेशों का रूप देना । बचत करने वालों को ट्रस्ट तीन तरह के लाभ प्रदान करने का वचन देता है, ये हैं : सुरक्षा, तरलता और लाभदायकता । इससे यह विभिन्न व्यक्तियों को बचत करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

(ii) यह प्रत्येक यूनिट धारक को बहुत सी चुनी हुई कम्पनियों के शेयरों और प्रतिभूतियों के अप्रत्यक्ष रूप से स्वामित्व प्राप्त करने का अवसर देता है और निवेशकर्ताओं को औद्योगिक संवृद्धि से होने वाली संपन्नता में भागीदार बनने के योग्य बनाता है।

(ग) यूनिट पूंजी : भारतीय यूनिट ट्रस्ट के कोशों का मुख्य स्रोत यूनिट पूंजी है, जो जनता को विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत यूनिटें बेचकर जुटायी जाती है। इस रूप में अधिकांश कोष यूनिट योजना, 1964 और पूंजीगत लाभ इकाई योजना, 1983 के अन्तर्गत प्राप्त हुए। यूनिटों की बिक्री से एकत्र कुल राशि का दो–तिहाई से अधिक भाग इन दो योजनाओं से प्राप्त हुआ। यूनिट योजना, 1964 इस ट्रस्ट द्वारा शुरू की गयी सबसे पहली योजना थी और यह निवेशकर्ताओं में सदा ही लोकप्रिय रही। इस योजना के अन्तर्गत बेची जाने वाली यूनिटों का अंकित मूल्य 10 रु. है। लेकिन इनका बाजार मूल्य समय–समय पर निर्धारित किया जाता है और यह अंकित मूल्य से अधिक होता है। इस योजना के अन्तर्गत यूनिटों का बाजार मूल्य निर्धारित करने का आधार ट्रस्ट द्वारा पिछली अवधि में किये गये कुल निवेशों का बाजार मूल्य होता है। क्रय मूल्य को विक्रय मूल्य से नीचा रखा जाता है और इन दोनों में अन्तर हमेशा 30 पैसे या अधिक रहा है।

(घ) निवेश नीति : यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया की निवेश नीति, मूलधन की सुरक्षा और पूंजी के प्रतिफल में संतुलन स्थापित करने का प्रयत्न करती है। पूंजी की सुरक्षा की दृष्टि से, जिन प्रतिभूतियों में निवेश किया जाता है, वे आर्थिक दृष्टि से ठोस और आसानी से विक्रय योग्य होनी चाहिए । इसका अर्थ यह हुआ कि प्रतिभूतियों का चयन करते समय सुरक्षित और तरल प्रतिभूतियों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इन प्रतिभूतियों पर बहुत उचित प्रतिफल मिलता है और पूंजीगत लाभ की भी उचित संभावना होती है।

यूनिट ट्रस्ट के लिए, जीवन बीमा निगम और बैंकों की भांति अपने कोशों का एक निश्चित भाग सरकारी व अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में लगाना आवश्यक नहीं है । इसे यह निर्णय लेने की स्वतंत्रता है कि अपने कोशों का निवेश कहाँ करे । लेकिन इस बारे में कुछ निर्देशक नियम अवश्य हैं, जो यह सुझाते हैं कि ट्रस्ट द्वारा किसी भी एक कम्पनी में किया जाने वाला निवेश इसके निवेश करने योग्य कुल कोशों का 5% से अधिक नहीं होना चाहिए या ऐसी कम्पनी की निर्गमित और बकाया प्रतिभूतियों के मूल्य के 15% से अधिक नहीं होना चाहिए। इसके अतिरिक्त नये औद्योगिक संस्थानों की प्रतिभूतियों के प्रारंभिक निर्गमन में निवेश, ट्रस्ट के कुल निवेश योग्य कोशों के 5% से कम होना चाहिए। यूनिट ट्रस्ट द्वारा निवेश करने के बारे में ये निर्देशक नियम बनाने का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि निवेश में उचित विविधता हो।

(च) यूनिट धारकों को लाभ : निवेश करने वाले यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया की यूनिटों में निवेश करके निम्नलिखित लाभ प्राप्त करते हैं :

1. **निवेश की सुरक्षा :** ट्रस्ट की यूनिटों में किया गया निवेश काफी सुरक्षित होता है । यूनिट ट्रस्ट जोखिम और प्रतिफल को ध्यान में रखकर इस पैसे का बहुत तरह की प्रतिभूतियों में पुनर्निवेश करता है। अतः निवेशकर्ता के निवेश की सुरक्षा सुनिश्चित कर दी जाती है।

2. **निवेश पर नियमित व उचित प्रतिफल :** सांविधिक निर्देशन के अनुसार यूनिट ट्रस्ट को अपनी आय का कम से कम 90% भाग यूनिट धारकों में बांटना होता है। इससे यूनिट धारकों को अपने निवेश पर एक नियमित व उचित प्रतिफल मिलना सुनिश्चित हो जाता है।

3. **तरलता :** यूनिट धारक अपनी यूनिटों को आसानी से नकद राशि में परिवर्तित कर सकते हैं। ट्रस्ट यूनिटों का इसके द्वारा निश्चित की गयी कीमतों पर किसी भी समय पुर्नक्रय कर लेता है । इसके अतिरिक्त यूनिट धारक अपनी यूनिटों को किसी तीसरे पक्ष को हस्तांतरित कर सकते हैं या इन्हें बैंकों के पास ऋणाधार के रूप में रखकर उनसे ऋण ले सकते हैं।

(छ) आलोचना : यद्यपि यूनिट दृस्ट ऑफ इंडिया ने पिछले 27 वर्षों में प्रत्येक वर्ष प्रगति की है, फिर भी इसके कार्यों की निम्नलिखित आलोचनाएं की जाती हैं :

1. **विकसित राज्यों की ओर झुकाव :** इसके कार्यों की एक प्रमुख आलोचना यह है कि अपने कोशों का निवेश करने में इसका झुकाव पिछड़े क्षेत्रों की अपेक्षा औद्योगिक रूप से विकसित राज्यों की ओर अधिक रहा है। लेकिन यह आलोचना उचित प्रतीत नहीं होती, क्योंकि इसे औद्योगिक प्रतिभूतियों में निवेश करते समय यूनिट धारकों के कोशों की सुरक्षा और उन्हें एक स्थिर प्रतिफल प्रदान करने की आवश्यकता को ध्यान में रखना पड़ता है।

2. **शहरों की ओर झुकाव :** एक अन्य आलोचना यह है कि यह ट्रस्ट अपनी क्रियाओं को शहरी क्षेत्रों में केन्द्रित कर रहा है और ग्रामीण जनता को देश की औद्योगिक प्रगति में हिस्सेदार बनने के लाभों से वंचित किया जा रहा है। पिछले कुछ वर्षों से ट्रस्ट ग्रामीण बचतों को भी एकत्रित करने का प्रयत्न कर रहा है, लेकिन इस दिशा में अभी बहुत कुछ करना बाकी है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि ट्रस्ट ऐसी अनेक योजनाएं नहीं बना सका, जो खासतौर से ग्रामीण क्षेत्रों के विभिन्न प्रकार के निवेशकर्ताओं के लिए उपयुक्त हों ।

3. **अनुदार निवेश नीति :** निवेश संबंधी निर्णय लेते समय ट्रस्ट अनुदार निवेश नीति का अनुसरण करता है। आधे से अधिक निवेश ऐसी प्रतिभूतियों में हैं, जिनसे स्थिर आय प्राप्त होती है और ऐसी प्रतिभूतियों में पूंजीगत लाभों की संभावना कम होती है। भविष्य में ट्रस्ट को इस मामले में अधिक गत्यात्मक होना चाहिए।

4. **अधिक अनुरक्षण व्यय :** ट्रस्ट का अनुरक्षण व्यय प्रतिवर्ष कई गुना बढ़ता जा रहा है। ये व्यय ट्रस्ट की आय के 10% से अधिक ही हैं। क्योंकि ट्रस्ट अपनी आय का 90% यूनिट धारकों में बाँटता है, इसलिए इसके पास अपनी निधियों को बढ़ाने के लिए या आय में से निवेश करने के लिए कुछ नहीं बचता।

5. **प्रतिफल अधिक नहीं :** ट्रस्ट द्वारा अपने यूनिट धारकों को दी जाने वाली लाभांश दर ऊँची नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि इसने अपनी लाभांश दर धीरे–धीरे बढ़ायी है, लेकिन अन्य कम्पनियों में इतने ही जोखिम वाले निवेशों पर

प्रतिफल की दर की तुलना में यह कम है। यदि ट्रस्ट प्रतिस्पर्धी लाभांश दर देता तो यह अधिक बचतकर्ताओं को आकर्षित कर सकता था।

6. यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया का भविष्य : 31 मार्च, 1989 को ट्रस्ट के यूनिट धारकों की संख्या 48.56 लाख थी और ये पूरे देश में फैले हुए हैं। यह आशा की जाती है कि ट्रस्ट तेजी से प्रगति करता रहेगा और यह भारतीय अर्थव्यवस्था व खास तौर से पूजी बाजार के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देगी। लेकिन भविष्य में इसकी सफलता इसकी ग्रामीण क्षेत्रों से बचत संग्रहित करने की क्षमता और यूनिट–धारकों को कुशल सेवा प्रदान करने पर निर्भर करती है।

10.6 अन्य बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं

भारत में जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम और यूनिट ट्रस्ट के अलावा अन्य बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं भी हैं । आइये इन्हें क्रमबद्ध कर समझने का प्रयास करें :–

1. विक्रय वित्त कम्पनियाँ (Hire Purchase Finance Companies)
2. निवेश कम्पनियाँ (Investment Companiè)
3. आवास वित्त कम्पनियाँ (House Finance Companies)
4. वित्त निगम (Finance Corporation)
5. म्यूचुअल बेनीफिट वित्त कम्पनियाँ (Mutual Fund Companies)
6. चिट फंड कम्पनियाँ (Chit Fund Companies) आदि।

ये बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं अंशतः संगठित क्षेत्रक में हैं और अंशतः असंगठित क्षेत्रक में। इन्हें बैंकेतर वित्तीय कम्पनियों और बैंकेतर अवित्तीय कम्पनियों में बाँटा जा सकता है। पहली श्रेणी में अवक्रय कम्पनियां, निवेश सम्पनियां और वित्त निगम आदि आते हैं और दूसरी श्रेणी में सभी औद्योगिक व व्यापारिक कम्पनियां आती हैं और इसमें

ऐसी कम्पनियाँ भी शामिल होती हैं, जो अवित्तीय हैं। विविध बैंकेतर कम्पनियाँ जैसे कि चिट फण्ड कम्पनियां भी इसी श्रेणी में आती हैं। ये कम्पनियां जनता से अल्पावधि व मध्यावधि के लिए जमाएं मांगती हैं। ये कम्पनियां साधारणतया मांग जमाएं स्वीकार नहीं करतीं ।

अन्य बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं भी देश के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही हैं। ये शहरी और ग्रामीण बचतकर्ताओं से काफी मात्रा में बचते एकत्र कर रही हैं। यद्यपि इस बारे में सांख्यिकी आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन इनका आर्थिक विकास में योगदान कम नहीं है।

इन पर भारतीय रिजर्व बैंक या अन्य सरकारी एजेंसियों का कोई नियंत्रण न होने से ये भोली–भाली जनता का शोषण कर लेती हैं। ये बहुत ऊँची ब्याज दरों का प्रलोभन देकर बहुत पैसा एकत्र कर लेती हैं और उसके बाद गायब हो जाती हैं और इस प्रकार लोगों का शोषण करती हैं।

रिजर्व बैंक और सरकार को इनके द्वारा किये जाने वाले शोषण को रोकने के लिए इनका विनियमन करना चाहिए।

बोध प्रश्न 'ग'

1. यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया के निवेश योग्य कोशों के स्रोत क्या हैं? .

....
....
....
....
....
....
....
....
....

2. बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :

(i) यूनिट टुस्ट ऑफ इण्डिया पश्चिमी देशों के म्यूचुअल फण्ड की भांति है।

(ii) यूनिट ट्रस्ट की निधियों का मुख्य स्रोत सरकार है।

(iii) यूनिट ट्रस्ट सुरक्षित व तरल प्रतिभूतियां चुनने का प्रयत्न करता है।

(iv) 1988–89 तक यूनिट ट्रस्ट ने 12 विभिन्न योजनाएं शुरू की।

(v) यूनिट ट्रस्ट के आधे से अधिक निवेश निश्चित आय प्रदान करने वाली प्रतिभूतियों में हैं।

10.7 सारांश

वित्तीय मध्यस्थ वित्तीय साधनों की मांग करने वालों और सप्लाई करने वालों को एक दूसरे से मिलाते हैं। इन मध्यस्थों में व्यापारिक बैंक, निवेश ट्रस्ट, बीमा कम्पनियां, शेयर दलाल और अवक्रय कम्पनियां आदि आती हैं। व्यापारिक बैंकों को छोड़कर ऊपर बतायी गयी सभी संस्थाएं बैंकेतर वित्तीय संस्थाओं की श्रेणी में आती हैं।

निवेशकर्ताओं को नियमित प्रतिफल व पूंजीगत लाभ प्रदान करके बैंकेतर वित्तीय संस्थाएं उनकी सहायता करती हैं। ये संस्थाएं आसान शर्तें व उचित लागत पर पिछड़े हुए क्षेत्रों में व्यापार व उद्योग को कोष प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त ये तकनीकी व प्रबंधकीय परमार्श भी प्रदान करती हैं।

जीवन बीमा निगम का गठन जीवन बीमा निगम अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत एक पूर्ण सरकारी स्वामित्व वाले संगठन के रूप में किया गया। इसके मुख्य उद्देश्यों में से हैं, जीवन बीमा के संदेश को देश के कोने–कोने तक फैलाना,, समाज के सर्वोत्तम हित में जीवन बीमा का कार्य करना और जनता की संचित जमाओं का देश की आर्थिक नीति के अनुरूप प्रयोग करना । कोशों का निवेश करते समय जीवन बीमा निगम बहुत सी बातों को ध्यान में रखता है, जैसे कोशों की सुरक्षा, निवेश में विविधता और प्रतिभूतियों का परिपक्वता समय आदि।

जीवन बीमा निगम लोगों की बचतों की एक बड़ी राशि को एकत्रित करने में सफल हुआ है, लेकिन यह अपने निवेशों में विविधता लाने में सफल नहीं हुआ। नये औद्योगिक उपक्रमों और कृषि क्षेत्र को इसका योगदान बहुत कम रहा।

भारतीय सामान्य बीमा निगम एक नियंत्रक कम्पनी है जिसकी 4 नियंत्रित कम्पनियां हैं। यह अर्थव्यवस्था के उन क्षेत्रों में कोशों का निवेश करता है जो समाज की ओर अभिमुख हैं। इसमें सरकारी प्रतिभूतियां और आवास तथा शहरी विकास में लगी एजेन्सियां आती हैं। इस निगम ने पिछड़े क्षेत्रों को रियायती दरों पर कोई वित्तीय सहायता नहीं दी। लेकिन इसने सामान्य । बीमा सुविधाओं का एक अच्छा जाल सा फैलाने में सहायता की है।

यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया एक निवेश ट्रस्ट है, जिसकी स्थापना 1964 में की गयी । इसका मुख्य उद्देश्य समाज के अतिरेक कोशों को उत्पादक प्रयोगों में लगाना है, जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था की संवृद्धि हो और विविधता आए । ट्रस्ट की निवेश नीति सुरक्षा और निवेश पर प्रतिफल में एक उचित संतुलन स्थापित करने का प्रयत्न करती है। जीवन बीमा निगम और व्यापारिक बैंकों को तो अपने कोशों का एक भाग सरकारी और अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में लगाना होता है, लेकिन यूनिट ट्रस्ट पर ऐसी कोई पाबन्दी नहीं है। समाज के प्रत्येक क्षेत्र से साधनों को इकट्ठा करने के लिये ट्रस्ट ने समय–समय पर बहुत योजनाएं शुरू की। इसकी एक आलोचना यह भी है कि इसके निवेशयोग्य कोशों के एक बड़े भाग का निवेश शहरी क्षेत्रों में किया गया। ट्रस्ट को ग्रामीण बचतों को इकट्ठा करने के लिए नयी योजनाएं शुरू करनी चाहिये और वित्तीय सहायता देने के लिये ग्रामीण उद्योगों का पता लगाना चाहिये। इसके अतिरिक्त इसे अपने खर्चे कम करने चाहिये और यूनिट धारकों को अधिक लाभांश देना चाहिए।

10.8 उपयोगी शब्दावली

- **म्यूचुअल फण्ड (Mutual Fund)** : वह कम्पनी जिसकी निर्गमित पूंजी नहीं होती और इस पर उन सदस्यों का स्वामित्व होता है, जो इसके साथ व्यापार करते हैं। इसके लाभ इसके सदस्यों में बांटे जाते हैं।

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क. 1. निवेश ट्रस्ट, विकास बैंक, अन्य संस्थाएं जो मुख्यतया प्रवर्तन कार्य करती हैं और उद्यमकर्ताओं को सेवाएं प्रदान करती हैं।

2. i) सही ii) गलत iii) गलत iv) सही v) सही
vi) सही vii) सही viii) सही ix) सही x) सही

ख 1. i) स्वदेशी पुनर्बीमा व्यवसायii) अन्तरराष्ट्रीय पुनर्बीमा व्यवसाय

2 i) गलत ii) गलत iii) सही iv) सही
v) गलत vi) सही vi) सही

ग 1. प्रारंभिक पूंजी, यूनिट पूंजी

2. i) सही ii) गलत iii) सही iv) सही v) गलत

10.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थ क्या है? इसकी क्या विशेषताएं हैं?

प्रश्न–2 बचतों के संग्रहण में और राष्ट्रीय आर्थिक उद्देश्यों को पूरा करने में जीवन बीमा निगम की भूमिका का विवेचन कीजिये।

प्रश्न–3 यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया बँकेतंर वित्तीय मध्यस्थों में व्यावसायिकता लाया है । विवेचन कीजिये।

प्रश्न–4 भारतीय सामान्य बीमा निगम पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)
- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकेषन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)
- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीष कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, SBPD पब्लिकेशन 2016)
- प्रो0 षिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेशन 2017)
- एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
- के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
- शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016)
- एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

****

इकाई–11 सावधिक ऋण देने वाली वित्तीय संस्थाएं– अखिल भारतीय स्तर

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 विकास बैंक

11.3 विकास बैंक के कार्य

11.4 विकास बैंकों का उद्गम

11.5 भारतीय औद्योगिक वित्त निगम

11.6 भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम

11.7 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक

11.8 अन्य विकास बैंकिंग संस्थाएं

11.8.1 भारतीय औद्योगिक पुनर्निमाण बैंक

11.8.2 भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक

11.9 भारत में विकास बैंकों का मूल्यांकन

11.10 सारांश

11.11 उपयोगी शब्दावली

11.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.13 महत्वपूर्ण प्रश्न

11.0. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि

- ❖ विकास बैंकों का अर्थ, कार्य व उद्देश्य बता सकेंगे,
- ❖ भारत में विकास बैंकों के उद्गम को विवेचन कर सकेंगे,
- ❖ अखिल भारतीय स्तर के विकास बैंकों की कार्यप्रणाली बती सकेंगे तथा
- ❖ भारत में विकास बैंकों द्वारा किये गये कार्यों व इनकी प्रत्याशाओं का मूल्यांकन कर सकें।

11.1. प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपको भारत में बचत करने वालों और पूंजी का प्रयोग करने वालों को जोड़ने वाली बैंकेतर वित्तीय संस्थाओं (non-banking financial institutions) के बारे में बताया गया था। आपको भारतीय जीवन बीमा निगम, भारतीय सामान्य बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट और अन्य बैंकेतर वित्तीय संस्थाओं सहित विभिन्न बैंकेतर वित्तीय संस्थाओं की संवृद्धि, कार्य प्रणाली और समस्याओं की विशेष रूप से जानकारी प्रदान की गयी थी। इस इकाई में हम विकास बैंकों (development banks) के अर्थ, महत्त्व और उद्‌गम का अध्ययन करेंगे और इसके साथ—साथ भारत में राष्ट्रीय स्तर के विभिन्न विकास बैंकों की भूमिका, कार्यों व इनकी उपलब्धियों का भी अध्ययन करेंगे।

11.2. विकास बैंक

औद्योगिकीकरण एवं वैश्विकरण के चलते विकास बैंकों की शुरू की गयी। परंपरागत वित्तीय संस्थान अपनी तरलता एवं ऋण की सीमाओं के कारण ओद्योगिक सहायता करने की चुनौती को नहीं उठा सकते थे। वित्तपोषण की इस जटिल समस्या से निपटने के लिए विशेष रूप से बैंकों का गठन होने की चर्चा हुई तथा विकास बैंकों की परिकल्पना होने के साथ उन्हें वित्तपोषण करने का भार सौंपा गया।

विकास बैंक विशिष्ट वित्तीय संस्थाएं हैं, जिनकी स्थापना विकास के तीन मूल संघटक प्रदान करने के लिये की जाती है। ये संघटक हैं – (1) पूंजी, (2) ज्ञान, और (3) उद्योग को उद्यमवृत्ति। ये बैंक विकसित व अल्पविकसित देशों में दूसरे विश्व युद्ध के बाद स्थापित किये गये। इनकी संरचना औद्योगिक विकास को तीव्र करने के लिये उत्प्रेरक के रूप में की गयी। एक अल्पविकसित देश में, जहां न केवल पूंजी की कमी है, बल्कि कुशल उद्यमकर्ताओं की भी कमी है, ऐसे बैंकों की आवश्यकता है जो उद्यमकर्ताओं को सावधि पूंजी प्रदान करने तक ही अपनी क्रियाओं को सीमित न करें।

ऐसे बैंकों को औद्योगिक सर्वेक्षणों के द्वारा, विकासात्मक परियोजनाओं का पता लगाकर और दिलचस्पी लेने वाले उद्यमकर्ताओं को परियोजना के निर्माण से लेकर उसके कार्यान्वयन तक तकनीकी प्रबंधकीय और अन्य सहायता प्रदान करके प्रवर्तन भूमिका निभानी चाहिये। **विलियम डायमंड** के अनुसार, विकास बैंक एक संकर संस्था है, जिसके कार्यों में एक वित्त निगम और एक विकास निगम दोनों के कार्य शामिल होते हैं। वित्त निगम का सम्बन्ध मुख्यतया दीर्घावधि ऋण पूंजी से होता है, जबकि विकास निगम का सम्बन्ध मुख्यतया शेयर पूंजी से और विशिष्ट कम्पनियों को विकसित करने और उनका प्रबंध करने तथा उन्हें वित्तीय समर्थन प्रदान करने से होता है। विकास बैंक एक व्यापक विकास दृष्टिकोण के साथ अनिवार्य रूप से एक बहुउद्देश्यीय वित्तीय संस्थान है। इस प्रकार, विकास बैंक को ऋण संस्थान, ऋण, अंडरराइटिंग, निवेश और गारंटी संचालन, और प्रचार गतिविधियों के रूप में व्यावसायिक इकाइयों को सभी प्रकार की वित्तीय सहायता (मध्यावधि व दीर्घावधि) प्रदान करने से संबंधित वित्तीय संस्थान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

11.3 विकास बैंक के कार्य

1. **ऋणों की स्वीकृति** *(Granting and Sactioning Loans)* **:** अधिकांश विकास बैंकों का महत्वपूर्ण कार्य औद्योगिक संस्थानों को मध्यावधि व दीर्घावधि ऋण प्रदान करना है। कुछ विकास बैंक विदेशी मुद्रा में भी ऋण देते हैं।

2. **ऋणों की गारण्टी देना** *(To Gaurantee Loans)* **:** ये व्यापारिक संस्थानों द्वारा अन्य स्रोतों से जुटाये गये ऋणों की गारण्टी भी देते हैं। ये विदेशों से पूंजीगत वस्तुएं खरीदने के लिये आस्थगित भुगतानों की भी गारण्टी देते हैं।

3. **औद्योगिक प्रतिभूतियों का अभिगोपन** *(Underwriting of Securities)* **:** इसका एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य औद्योगिक संस्थाओं के शेयरों, बाण्डों और ऋण पत्रों का अभिगोपन करना है।

4. **शेयरों और ऋणपत्रों में निवेश** *(Investing in Shares & Debentures)* **:** अभिगोपन के अतिरिक्त विकास बैंक औद्योगिक संस्थाओं के अंशों और ऋण पत्रों में अभिदान करके उनमें प्रत्यक्ष रूप से निवेश भी करते हैं।

5. **व्यापारी बैंकिंग** *(Commercial Banking Services)* **:** हाल ही में कुछ विकास बैंकों ने अपनी सहयोगी कम्पनियाँ स्थापित की हैं जो विभिन्न प्रकार के व्यापारी बैंकिंग कार्य करती हैं।

6. **विकास कार्य** *(Industrial Development)* **:** विशेष वित्तीय संस्थाएं न केवल सावधिक ऋण देने वाली संस्थाओं के रूप में कार्य करती हैं बल्कि विकास बैंकों के रूप में भी कार्य करती हैं। ये परियोजनाएं बनाती हैं, तकनीकी आर्थिक सर्वेक्षण करती हैं, उद्यमकर्ताओं को प्रशिक्षण व परामर्श प्रदान करती है और औद्योगिक इकाइयों के प्रबंध में सुधार करती हैं।

11.4 विकास बैंकों का उद्‌गम

(क) अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण *(International Prespective)* **:** यद्यपि 'विकास बैंक' शब्द का पहली बार प्रयोग दूसरे विश्व युद्ध के बाद किया गया लेकिन कुछ देशों में 19वीं शताब्दी के शुरू में ऐसी संस्थाएं थीं। पहला विकास बैंक व्यापारिक और औद्योगिक संस्थाओं को वित्त प्रदान करने के लिये बेलजीयम में स्थापित किया गया। इसका नाम सोसाइटे जनरेल डी बेल्जियम (*Societc Generale de Belgique*) था। लेकिन इसके कार्यों से अधिक दिलचस्पी पैदा नहीं हुई। 1852 में फ्रेंच क्रेडिट मोबिलाइजर (*French Credit Mobiliser*) स्थापित किया गया। बाद में यही जर्मनी, ऑस्ट्रिया, बेलजीयम, नीदरलैंड, इटली, स्वीटजरलैंड और स्पेन में ऐसे निवेश बैंकों का एक मॉडल बन गया ।

मंदी के बाद की अवधि विकास बैंकों के उद्‌गम का दूसरा चरण है । इस अवधि में लघु उद्योग के लिये वित्त प्रबन्ध करने की जरूरत को स्वीकार किया गया । तदनुसार, बहुत से देशों में विशेष वित्तीय संस्थाएं बनायी गयीं ।

(ख) राष्ट्रीय दृष्टिकोण *(National/Indian Prespective)* **:** भारत में विकास बैंकों की पहल एवं उसके विकास को निमंलिखित बिन्दिओं/चरणो में

विभाजित कर अच्छे से समझा जा सकता है, वे बिंदु/चरण, समयकाल के अनुसार इस प्रकार है –

चरण I : संस्थागत युग (*Institutionalisation Era*) – 1948 - 1955

चरण II : विस्तार (*Expansion*) – 1955 - 1964

चरण III : समेकन और नवाचार (*Consolidation and Innovation*) – 1964 - 1976

चरण IV : स्थिरता और विकास (*Stability and Growth*) – 1976 - 1984

चरण V : विविधीकरण और परिवर्तन (*Diversification and Change*)– 1984 - 1992

चरण VI : पुनरावृत्ति (*Reorientation*) – 1992 - 1998

चरण VII : सार्वभौमिक बैंकिंग (*Universal Banking*) – 1998 *onwards*

चरण I : संस्थागत युग (*Institutionalisation Era*) – 1948 - 1955

भारत में विकास वित्त संस्थाओं का ढांचा खड़ा करने की दिशा में पहला कदम 1948 में उठाया गया जन भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFCI) की स्थापना की गयी । इस निगम की स्थापना निगम क्षेत्र की इकाइयों और औद्योगिक सहकारी समिति को मध्यावधि व दीर्घावधि साख प्रदान करने के लिये की गयी । इसके समानान्तर राज्य स्तर पर 1951 में राज्य वित्त निगमों (SFCs) की स्थापना की गयी ताकि ये अपने–अपने राज्यों में मध्यम और लघु आकार की औद्योगिक संस्थाओं को दीर्घावधि ऋणों का लाभ दे सकें।

चरण II: विस्तार (*Expansion*) – 1955 - 1964

1955 में भारत सरकार, विश्व बैंक, कामनवेल्थ विकास वित्त निगम और अन्य विदेशी संस्थाओं के समर्थन से खास तौर से निजी क्षेत्र को औद्योगिक परियोजनाओं के विदेशी विनिमय भाग को वित्त प्रबंध करने के लिये एक संयुक्त पूंजी कम्पनी के रूप में भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम (ICICI) की स्थापना की गयी।

1958 में, एक और विकास संस्थान की स्थापना आरबीआई, एलआईसी और वाणिज्यिक बैंकों द्वारा की गयी थी, उद्योग पुनर्वित्त निगम (Refinance Corporation for Industry Ltd)। इसका प्राथमिक उद्देश्य वाणिज्यिक बैंकों (और बाद में) को पुनर्वित्त प्रदान करना था। हालांकि, 1964 में, इसे आईडीबीआई के साथ विलय कर दिया गया था।

राज्य औद्योगिक विकास निगमों (SIDCs), जो कि राज्य स्तर की संस्थाएं हैं, की स्थापना 1960 में की गयी। इनका मुख्य उद्देश्य मध्य स्तर की औद्योगिक इकाइयों को बढ़ावा देना था । लघु स्तर की इकाइयों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये 1960 के दशक में राज्य लघु औद्योगिक विकास निगमों की भी स्थापना की गयी।

चरण III : समेकन और नवाचार (*Consolidation and Innovation*) – 1964 - 1976

राज्य स्तर और राष्ट्रीय स्तर के सभी विकास बैंकों के कार्यों को समन्वित करने के लिये भारत सरकार ने 1964 में एक शिखर संस्था के रूप में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) को स्थापित किया। शेयरों में सामुदायिक बचत को संगठित और चैनलबद्ध करने के लिए फरवरी 1964 मे यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया (यूटीआई) की स्थापना हुई थी।

चरण IV : स्थिरता और विकास (*Stability and Growth*) – 1976 - 1984

इस चरण में अधिकांश वित्तीय संस्थानों का ध्यान एवं उद्देश्य अपने परिचालन की गुणवत्ता पर रहा, जैसे, तेजी से प्रक्रियाओं को आगे बढ़ाना, वित्त का अनुमोदन और वितरण को सरल बनाना, उधार नीतियों के उदारीकरण के लिए आधुनिकीकरण और तकनीकी उन्नयन किया जाना, पिछड़े क्षेत्रों बैंकिंग परियोजनाओं को प्रचलित किया जाना इत्यादि

चरण V : विविधीकरण और परिवर्तन (*Diversification and Change*) – 1984 - 1992

पांचवें चरण में प्रमुख विकास में निर्माण शामिल है – नए संस्थानों की स्थापना, परिचालन नीतियों में परिवर्तन और और वित्तीय संस्थानों के संचालन में विविधीकरण।

तत्कालीन संस्थागत बुनियादी ढांचे को मजबूत करने के लिए, छह नए संस्थान बनाये गए। और 1992 तक देश को एक अच्छी तरह से एकीकृत हो गया था जिसके अंतर्गत 59 विकास वित्त संस्थान, 6 अखिल भारतीय, 4 विशेष वित्तीय संस्थान, 3 निवेश संस्थान, 18 SFCs और 28 SIDCs स्थापित किये गए।

चरण VI : पुनरावृत्ति (*Reorientation*) – 1992 - 1998

1990 में भारत सरकार ने केवल लघु इकाइयों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये एक शिखर बैंक के रूप में भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) को स्थापित किया। इस प्रकार भारत में राज्य स्तर पर और राष्ट्रीय स्तर पर बहुत से विकास बैंक स्थापित किये गये।

इस चरण में गतिविधियों में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई, पूंजी बाजार नए वित्तीय नियामक संस्थान, जैसे SEBI रेटिंग एजेंसियों आदि का निर्माण हुआ।

चरण VII : सार्वभौमिक बैंकिंग (*Universal Banking*) – 1998 *onwards*

आइये, अब भारत में राष्ट्रीय स्तर के विभिन्न विकास बैंकों के कार्य व उनकी कार्य प्रणाली का अध्ययन करे। राज्य स्तर के विकास बैंकों का अध्ययन इकाई 12 में किया जाएगा ।

बोध प्रश्न 'क'

1. निम्नलिखित कथनों में से कौन सही है और कौन गलत :
   - **(i)** विकास बैंक औद्योगिक संवृद्धि को तीव्र करने में सहायता करते हैं।
   - **(ii)** विकास बैंक उद्योग को मध्यावधि और अल्पावधि वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं।
   - **(iii)** वे औद्योगिक उपक्रम जो विकास बैंकों के बजाय अन्य स्रोतों से ऋण जुटाते है, इन विकास बैंकों से ऋणों की गारण्टी की सुविधा प्राप्त कर सकते हैं।
   - **(iv)** विकास बैंक औद्योगिक इकाइयों के शेयरों और ऋणपत्रों के लिये प्रत्यक्ष रूप से अभिदान करते हैं।
   - **(v)** भारतीय औद्योगिक विकास बैंक भारत का पहला विकास बैंक है।
2. रिक्त स्थानों को भरिये :
   - **(i)** सोसाइटे जनरेल डी बेलजीक्यू विश्व में .... विकास बैंक था।
   - **(ii)** विकास बैंक ...... से पूंजीगत वस्तुएं खरीदने के लिये .... भुगतानों के लिये गारण्टी देता है।
   - **(iii)** विकास बैंक उद्योग के विकास के लिये तीन मूल संघटक प्रदान करते हैं । ये .....और . .... हैं।

11.5 भारतीय औद्योगिक वित्त निगम :

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम एक सार्वजनिक क्षेत्र की एक गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनी हैं। भारतीय औद्योगिक वित्त निगम भारत में स्थापित पहला विकास बैंक है। यह जुलाई, 1948 में संसद के एक विशेष अधिनियम के द्वारा बड़े मध्यम स्तर के उपक्रमों को दीर्घावधि वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिये स्थापित किया गया था। आईएफसीआई 7 सहायक कम्पनियों और एक सहयोगी कम्पनी का प्रबन्धन करती है।

(क) उद्देश्य : यह निगम पूरे देश में विविध उद्योगों की वृद्धि के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती हैं। इस निगम को बनाने का मूल उद्देश्य औद्योगिक संस्थाओं को, विशेषतया उन क्षेत्रों में जहां सामान्य बैंकिंग सुविधाएं अपर्याप्त है या जहां पूंजी निर्गमन विधि अव्यवहार्य हैं, मध्यावधि और दीर्घावधि वित्त सुविधाएं आसानी से उपलब्ध कराना है। वित्तीय क्रियाकलापों में विभिन्न प्रकार की परियोजनाएं जैसे हवाई अड्डे, सड़कें, टेलीकॉम, पावर, अचल सम्पदा, विनिर्माण, सेवाएं क्षेत्र तथा ऐसी अन्य सहबद्ध परियोजनाएं शामिल हैं । यह उन कम्पनियों या सहकारी समितियों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है, जो देश में पंजीकृत हैं और जो विनिर्माण, खनन, पोत–परिवहन, होटल आदि से सम्बन्धित हैं। यह लघु उद्योगों और अपंजीकृ तं कम्पनियों को वित्त प्रदान नहीं करता। निम्नलिखित निगमित कार्यनीति निर्धारित की गयी हैं जो इस प्रकार से है –

1. उद्योग की विभिन्न वित्तीय आवश्यकताओं के लिए समाधान प्रदान करना ।
2. देश के आर्थिक विकास में प्रतिस्पर्द्धात्मक, सक्षम तथा संवेदनशीन बने रहना ।
3. ग्राहक केन्द्रित समाधान डिजाइन करना ।
4. आईएफसीआई की प्रतिष्ठा और छवि को बढ़ाना

अतः निगम के मुख्य उदेश्यों में उपरोक्त बिन्दुओं को महत्व दिया जाता है

(ख) वित्तीय विशिष्टताएं : Earnings/आय **Rs. 2874.24 Cr.**

Profit/Loss After Tax शुद्ध लाभ कर उपरांत **458.49 Cr.**

निगम की कुछ वित्तीय विशिष्टताएं – Year 2017-18 (अंकेक्षित आंकड़े)

Liabilities (दायित्वा)	**Amount (in Cr.)**
Share Capital (शेयर पूंजी)	1,925.88
Reserves & Surplus (अधिशेष)	4,804.44
Non-current Liabilities (गेर–चालू दायित्वा)	20,170.04
Current Liabilities (चालू दायित्वा)	4,774.08
Total	**31,674.44**
Assets (सम्पति)	**Amount (in Cr.)**
Fixed Assets (स्थाई सम्पति)	995.48
Deferred Tax Assets	985.96
Non-current Assets (गेर–चालू सम्पति)	23,803.99
Current Assets (चालू सम्पति)	5,889.01
Total	31,674.44

Amount (in Cr.)

(ग) कार्य : भारतीय औद्योगिक वित्त निगम के महत्वपूर्ण कार्य निम्नलिखित हैं

1. औद्योगिक प्रतिष्ठानों को ऋण व अग्रिम देना और उनके ऐसे ऋणपत्रों में अभिदान करना जो 25 वर्ष के भीतर शोध्य हों ।
2. औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा बाजार से या अनुसूचित बैंकों और सहकारी बैंकों से जुटाए गये ऋणों के लिये गारण्टी देना।
3. औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा शेयरों, ऋणपत्रों और बॉडों के निर्गमन का अभिगोपन करना । लेकिन इसे इन प्रतिभूतियों को 7 वर्षों के अन्दर बेचना होता है।
4. औद्योगिक प्रतिष्ठानों को ऋण स्वीकृत करना ।

5. औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा विदेश के किसी बैंक या संस्था से जुटाई गई विदेशी मुद्रा में ऋण की गारण्टी देना । लेकिन इसके लिये केन्द्रीय सरकार से पूर्व अनुमति लेनी होती है।

6. भारत में औद्योगिक प्रतिष्ठानों को केन्द्रीय सरकार और विश्व बैंक द्वारा स्वीकृत ऋणों के बारे में इनके एजेन्ट के रूप में कार्य करना।

7. विदेशी निर्माताओं से पूंजीगत वस्तुओं के उधार क्रय की गारण्टी देना । केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन पर विदेशी संस्थाओं से जुटाई गई विदेशी मुद्रा में ऋण की गारण्टी देना।

8. औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा निर्गमित शेयरों के लिये प्रत्यक्ष रूप से अभिदान करना ।

9. सुलभ ऋण योजना के अन्तर्गत कुछ चुने हुएं उद्योगों जैसे मीमेंट, कपड़ा, जूट, इंजीनियरिंग आदि को उनकी मशीनों के आधुनिकीकरण, प्रतिस्थापन और नवीनीकरण के लिये सहायता प्रदान करना।

10. यह निगम बहुत से प्रवर्तन कार्य करता रहा है। इसके लिये आवश्यक वित्त सरकार से प्राप्त हितकारी रिजर्व कोष (*Benevolent Reserve Fund*) और विभेदक ब्याज कोशों के आवंटन (*Allocation of Interest Differential Funds*) से प्रयोग किया जाता है। निगम पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर जोर देता रहा और लघु व मध्यम औद्योगिक उद्यमकर्ताओं का विकास और उनकी सहायता करता रहा है । यह उनको इन इकाइयों की स्थापना और प्रबंध के लिये आवश्यक मार्गदर्शन भी प्रदान करता रहा है।

11.6 भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम :

भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम भारत में स्थापित की जाने वाली अखिल भारतीय स्तर की दूसरी वित्तीय संस्था है। यह जनवरी, 1955 में स्थापित की गयी। यह भारत में अन्य विकास बैंकों से भिन्न निजी क्षेत्रक का निगम है। इस निगम की स्थापना में विश्व बैंक की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

(क) उद्देश्य : इस निगम के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. औद्योगिक प्रतिष्ठानों को उनके प्रवर्तन, विकास और आधुनिकीकरण के लिए वित्तीय साधन प्रदान करना।
2. निजी क्षेत्र की इकाईयों में विदेशी पूंजी के प्रवाह और सहभागिता को प्रोत्साहित करना।
3. औद्योगिक निवेश में निजी स्वामित्व को प्रोत्साहित करना और निवेश बाजार के क्षेत्र को बढ़ाना।

(ख) प्रबंध : इसका स्वामित्व और प्रबंध एक निदेशक मंडल के हाथ में है, जिसमें 12 निदेशक होते हैं। मंडल का अध्यक्ष व प्रबंध निदेशक भारत सरकार द्वारा भारतीय औद्योगिक विकास बैंक से परामर्श करने के बाद नियुक्त किया जाता है।

(ग) वित्तीय विशिष्टताएं : आईसीआईसीआई बैंक 31 मार्च 2010 को 3,634.00 अरब रुपये की कुल आस्तियों तथा 40.25 अरब रुपये के कर–पश्चात् लाभ वाला भारत का दूसरा सबसे बड़ा बैंक है। बैंक के पास भारत में 2883 शाखाओं तथा लगभग 10021 ए.टी.एम. का नेटवर्क है तथा 19 देशों में इसकी उपस्थिति है। आईसीआईसीआई बैंक कॉरपोरेट तथा रिटेल ग्राहकों को अनेक प्रकार के सेवा चैनलों तथा निवेश बैंकिंग, जीवन तथा साधारण बीमा, वेंचर कैपिटल तथा एसेट प्रबंधन के क्षेत्र में अपनी विशेषीकृत सहायक संस्थाओं के माध्यम से अनेकानेक बैंकिंग उत्पाद और वित्तीय सेवाएं देता है।

(घ) विभिन्न प्रकार की सहायता : भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम से निम्नलिखित प्रकार की सहायता उपलब्ध हैः–

1. यह ऐसे ऋण प्रदान करता है, जिन्हें 15 वर्ष में लौटाना होता है।
2. यह शेयर पूंजी में सहभागिता के द्वारा वित्त प्रदान करता है।
3. यह शेयरों और अन्य प्रतिभूतियों के नये निर्गमनों को प्रवर्तित करता है और उनका अभिगोपन करता है।
4. यह निवेश के शीघ्रातिशीघ्र आवर्तन द्वारा निवेश के लिए कोष उपलब्ध कराता है।
5. यह निजी निवेश स्रोतों से प्राप्त ऋणों की गारंटी देता है।
6. यह पूंजीगत उपकरणों के आयात के लिए विदेशी मुद्रा में ऋण प्रदान करता है।
7. यह उद्योग को प्रबंधकीय, तकनीकी और प्रशासनिक सेवाएं प्रदान करता है।
8. यह पिछड़े क्षेत्रों का विकास करने के लिए प्रवर्तन कार्य करता है।

<u>बोध प्रश्न ख</u>

1. रिक्त स्थानों को भरिये :

   (i) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम का निर्माण मुख्यतः . . . . .और . . . . .वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए किया गया था।

   (ii) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम . . . . सरकार और . . . . द्वारा स्वीकृत किये गये ऋणों के लिए एजेंट के रूप में कार्य करता है।

   (iii) भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम की अधिकृत पूंजी . . . . करोड़ रु. है।

2. बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :

   (i) भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम ही ऐसा निगम है, जिसे विदेशों से औद्योगिक प्रतिभूतियों के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त करने में विशेषज्ञता प्राप्त है।

(ii) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना में विश्व बैंक ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायो ।

(iii) भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम द्वारा अपनी स्थापना के शुरू के वर्षों में दो गयी वित्तीय सहायता मुख्यतः परम्परागत उद्योगों, जैसे कि चीनी, जूट आदि तक ही सीमित थी।

(iv) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम ने अपने रिजर्व कोष और विभेदक ब्याज कोशों से प्रवर्तन क्रियाओं के लिए वित्त प्रदान किया है।

(v) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम मशीनों के आधुनिकीकरण, प्रतिस्थापन और नवीनीकरण के लिए सुलभ ऋण प्रदान करता रहा है।

11.7 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक :

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आईडीबीआई) का गठन भारतीय औद्योगिक विकास बैंक अधिनियम 1964 के तहत एक वित्तीय संस्था के रूप में हुआ था और यह भारत सरकार द्वारा जारी 22 जून 1964 की अधिसूचना के द्वारा 01 जुलाई 1964 से अस्तित्व में आया। इसे कंपनी अधिनियम,1956 की धारा 4 ए के प्रावधानों के अंतर्गत एक सार्वजनिक वित्तीय संस्था का दर्ज़ा प्राप्त हुआ। इस पर भारतीय रिजर्व बैंक का पूर्ण स्वामित्व था और यह उसका सहायक बैंक था। 16 फरवरी, 1976 से इसे भारतीय रिजर्व बैंक से अलग कर दिया गया और एक स्वायत्त निगम बना दिया गया। ऐसा इसकी एक शिखर वित्तीय संस्था के रूप में भूमिका को विस्तृत करने के लिए किया गया, ताकि देश की सभी वित्तीय संस्थाओं के बीच प्रभावी समन्वय हो सके। सन् 2004 तक यानी, 40 वर्षों तक इसने वित्तीय संस्था के रूप में कार्य किया और 2004 में इसका रूपांतरण एक बैंक के रूप में हो गया।

(क) उद्देश्य : यूनिवर्सल बैंक के रूप में आईडीबीआई बैंक ने कोर बैंकिंग व परियोजना वित्त क्षेत्र के अलावा पूंजी बाजार, निवेश बैंकिंग और म्यूचुअल फंड कारोबार जैसे संबद्ध वित्तीय क्षेत्र के कारोबार में अपनी उपस्थिति दर्ज की है। अपनी इस विकास यात्रा में आईडीबीआई बैंक अपने सभी अंशधारकों के लिए धन व मूल्य सृजित करने के अलावा एक पसंदीदा बैंक' और अत्यधिक मूल्यवान वित्तीय महासंगठन' के रूप में उभरने के लिए मजबूती से काम करने हेतु प्रतिबद्ध है। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना का मुख्य उद्देश्य अधिकतम औद्योगिक संवृद्धि प्राप्त करने के लिए समन्वित प्रयत्न करना था। इस बैंक की सभी क्रियाओं को मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है समन्वय, वित्त प्रबंध और प्रवर्तन। संक्षेप में इसके उद्देश्य निम्नलिखित है :

1. उद्योग को सावधि वित्त प्रदान करने के लिए एक शिखर संस्था के रूप में कार्य करना ।

2. वित्त प्रबंध, प्रवर्तन और उद्योगों के विकास में कार्यरत संस्थाओं की कार्य–प्रणाली को समन्वित करना और इन संस्थाओं के विकास में सहायता करना।

3. उद्योग को सावधिक वित्त प्रदान करना ।

4. देश के औद्योगिक ढांचे में कमी को पूरा करने के लिए उद्योगों की योजना बनाना तथा उनका प्रवर्तन और विकास करना।

5. उद्योगों के प्रवर्तन और विस्तार के लिए तकनीकी और प्रशासनिक सहायता प्रदान करना।

6. उद्योग के विकास से संबंधित तकनीकी व आर्थिक अध्ययन करना और बाजार और निवेश की अनुसंधान व सर्वेक्षण करना।

7. राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुरूप परियोजनाओं के वित्त प्रबंध के लिए अन्तिम ऋणदाता के रूप में कार्य करना।

(ख) कार्य : भारतीय विकास बैंक के कार्य निम्नलिखित हैं :

1. **प्रत्यक्ष वित्तीयन :** यह औद्योगिक संस्थानों को दीर्घावधि ऋण व अग्रिम देकर प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

2. **ऋणों की गारंटी :** यह औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा खुले बाजार में या बैंकों या अन्य वित्तीय संस्थानों से जुटाए गए ऋणों की गारंटी देता है।

3. बिलों की स्वीकृति और कटौती रू यह औद्योगिक प्रतिष्ठानों के विनिमय पत्रों, वचन–पत्रों, हुंडियों आदि को स्वीकार करता है तथा उनकी कटौती और पुनर्कटौती करता है।

4. **प्रत्यक्ष अभिदान और अभिगोपन :** यह औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा निर्गमित शेयरों, बाण्डों और ऋणपत्रों के लिए अभिदान करता है और ऐसे निर्गमनों का अभिगोपन भी करता है।

5. **पुनर्वित्तीयन :** यह अनुसूचित बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं को पुनर्वित्तीयन की सुविधाएं प्रदान करता है। इसके पुनर्वित्त में (1) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, राज्य वित्त निगमों या अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा 3 वर्ष से 25 वर्ष की अवधि के लिए दिये गये ऋण, (2) किसी औद्योगिक संस्थान को अनुसूचित या सहकारी बैंक द्वारा 3 से 10 वर्ष तक की अवधि के लिए दिये गये ऋण और (3) अनुसूचित बैंक या सहकारी बैंक या किसी अन्य वित्तीय संस्था द्वारा 6 माह से 10 वर्ष की अवधि के लिए दिये गए निर्यात ऋण शामिल होते हैं।

6. **प्रवर्तन क्रियाएं :** यह उद्योग के प्रवर्तन, प्रबंध और विस्तार के लिए तकनीकी और प्रबंधकीय सहायता प्रदान करता है। इसे देश के औद्योगिक ढांचे में कमियों को पूरा करने के लिए उद्योगों के नियोजन, प्रवर्तन और विकास की जिम्मेवारी भी सौंपी गयी है।

7. अन्य कार्य : यह विपणन और निवेश के क्षेत्रों में अनुसंधान और सर्वेक्षण भी करता है । यह अपने कार्यों को करने के लिए सहायक संस्थाओं का निर्माण कर सकता है। यह केन्द्रीय सरकार द्वारा दिये गये किसी भी कार्य को करता है।

(ग) राष्ट्रीय विकास में इस बैंक की भूमिका : शिखर बैंक के रूप में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक राष्ट्रीय निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। निम्नलिखित क्षेत्रों में इसका योगदान विशेषतः सराहनीय रहा :

1. **अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना :** इसने रोजगार के अवसरों को बढ़ाने में काफी योगदान किया है। इसके द्वारा उद्यमों को दी गयी सहायता के फलस्वरूप अब तक लगभग 84.7 लाख नौकरियां उपलब्ध करायी गयीं।

2. **कमजोर इकाइयों को सहायता :** यह उन औद्योगिक प्रतिष्ठानों के लिए विशेष रूप से सहायक है, जिनके लिए किसी न किसी कारण से सामान्य स्रोतों से वित्त जुटाना कठिन होता है ।

3. **लघु इकाइयों का विकास :** 1990 में भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना से पहले इस बैंक ने लघु क्षेत्रक के विकास में विशेष दिलचस्पी ली। इसने लघु क्षेत्रक की समस्याओं का हल करने के लिए इस शिखर संस्था की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

4. **नये उद्यमकर्ताओं को सहायता :** इसने नये उद्यमकर्ताओं को उदार शर्तों पर वित्त प्रदान करने के अलावा उनकी और कई तरह से सहायता की है, जैसे कि प्रशिक्षण सुविधाएं प्रदान की हैं और बहुत तरह की सेवाएं उन्हें प्रदान की है।

5. **तकनीकी परामर्श संगठनों का प्रवर्तक :** बैंक ने देश के विभिन्न भागों में 8 तकनीकी परामर्श संगठनों को प्रवर्तित किया। ये संगठन परियोजना बनाने, बाजार सर्वेक्षणों और विविध रिपोर्टों आदि में नये व छोटे उद्यमकर्ताओं की जरूरतों को पूरा करते हैं। ये तकनीकी और प्रबंधकीय सहायता भी प्रदान करते हैं। ये नये उद्यमकर्ताओं की पहचान के लिए भी प्रयत्नशील हैं और उन्हें प्रशिक्षण सुविधाएं प्रदान करते हैं।

6. **पिछड़े क्षेत्रों का विकास :** बैंक ने अपने कोशों का एक बड़ा भाग पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित उद्योगों में लगाया है। यह देश के आर्थिक विकास में क्षेत्रीय असंतुलन को ठीक करने में सक्रिय रहा है।

7. **सुलभ ऋण योजना :** बैंक ने कुछ चुने हुए उद्योगों जैसे कपड़ा, जूट, सीमेंट, चीनी, इंजीनियरिंग की औद्योगिक इकाइयों को सुलभ ऋण प्रदान किया। सुलभ ऋण योजना के अन्तर्गत भारतीय औद्योगिक विकास बैंक इन उद्योगों की औद्योगिक इकाइयों की मशीनों के आधुनिकीकरण, प्रतिस्थापन और नवीनीकरण, जो बहुत उपेक्षित रहे हैं, के लिए ऋण स्वीकृत करता है।

8. **सावधि ऋण देने वाली संस्थाओं में समन्वय :** यह देश में सावधि ऋण देने वाली संस्थाओं के बीच सहयोग स्थापित करने में सफल हुआ है। औद्योगिक इकाइयों के वित्त के लिए प्रस्तावों पर अब संयुक्त रूप से विचार किया जाता है और वित्त मी संयुक्त रूप से प्रदान किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप क्रियाओं का परस्पर व्यापन नहीं होता, जोखिमों में विविधता आई है और वित्त प्रबंध राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुरूप है।

(घ) आलोचना : यदि इसकी क्रियाओं को ध्यान से देखें तो कुछ कमियां नजर आयेंगी :

1. दिये गये ऋणों में कमी
2. पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर अपर्याप्त ध्यान
3. शहरों की ओर झुकाव
4. प्रार्थना पत्रों के निपटारे में देरी
5. बाहर की एजेंसियों के साथ कोई संबंध नहीं

11.8 अन्य विकास बैंकिंग संस्थाएं

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम तथा भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर पर कुछ अन्य बैंकिंग संस्थाएं भी हैं। भारतीय औद्योगिक पुनर्निमाण बैंक और भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक ऐसी ही संस्थाएं हैं। आइए, अब इन पर विस्तार से विचार करें।

11.8.1 भारतीय औद्योगिक पुनर्निमाण बैंक

भारत सरकार ने भारतीय कंपनी अधिनियम के तहत मुख्य रूप से बीमार इकाइयों की विशेष समस्याओं की देखभाल करने के लिए भारत के औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम (आईआरसीआई) की स्थापना की।

इसकी स्थापना का उदेश्य उद्योगों का आर्थिक पुनर्निर्माण करना है और यदि आवश्यक हो, तो उनके त्वरित पुनर्निर्माण और पुनर्वास के लिए सहायता प्रदान करना भी इसके उदेश्यों के अंतर्गत आता है। इकाइयों का प्रबंधन और परिवहन, विपणन आदि जैसे बुनियादी ढांचे की सुविधाएं विकसित करना सकल रूप से निगम के कार्यों में आता है।

भारतीय औद्योगिक पुनर्निमाण बैंक की स्थापना एक सांविधिक निगम के रूप में 20 मार्च, 1985 को की गयी। इस बैंक ने भारतीय औद्योगिक पुनर्निमाण निगम के कार्यों को अपने हाथ में ले लिया। इसका मुख्य उद्देश्य अस्वस्थ उद्योगों के पुनरुत्थान के लिए एक प्रमुख साख और पुनर्निमाण एजेंसी के रूप में कार्य करना था। इसका दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य ऐसी इकाइयों के पुनरुत्थान के लिए काम करने वाली विभिन्न एजेंसियों में समन्वय स्थापित करना था। इसका प्रबंध एक निदेशक मंडल के हाथ में होता है, जिसमें अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक के अतिरिक्त 12 निदेशक होते हैं।

ये सभी भारत सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। इसकी अधिकृत पूंजी 200 करोड़ रु. थी और जून 1988 तक इसकी प्रदत्त पूंजी 98 करोड़ रु. थी। इसे केन्द्रीय सरकार से प्रतिवर्ष 80 करोड़ रु. बिना ब्याज के प्राप्त करने का विशेषाधिकार है। यह भारत सरकार द्वारा गारंटित विदेशी ऋण भी जुटा सकता है।

(क) कार्य : इसके कार्य निम्नलिखित है : यह सहायता की गयी अस्वस्थ औद्योगिक इकाइयों का प्रबंध अपने हाथ में ले सकता है, उन्हें पट्टे पर दे सकता है, उन्हें चालू संस्थानों के रूप में बेच सकता है या उनके देयताओं को कम करके उनके पुनरुत्थान के लिए योजनाएं बना सकता है।

1. यह ऋण व अग्रिम प्रदान करके और शेयरों व ऋणपत्रों में अभिदान व उनका अभिगोपन करके औद्योगिक विकास में सहायता कर सकता है।
2. इसके कार्य क्षेत्र में आधारिक संरचना सुविधाएं, परामर्श, प्रबंधकीय सेवाएं आदि प्रदान करना भी आता है।

(ख) आलोचनाएं : इसके द्वारा किये गये उपयोगी कार्यों के बावजूद इसकी निम्नलिखित आलोचनाएं की गयी :

1. इस पर यह दोष लगाया गया कि इसने कुछ चुने हुए उद्योगों, जैसे इंजीनियरिंग और कपड़ा उद्योग की ही सहायता की। इसके द्वारा दी गयी सहायता का लगभग दो–तिहाई भाग इन उद्योगों को ही मिला।
2. ऋणों की स्वीकृतियों और ऋण देने में बहुत बड़ा अन्तर रहा । स्वीकृत ऋणों में से औसतन 55% ही दिये गये।
3. इसे जितने आवेदन–पत्र मिलते हैं, उनमें से बहुत कम पर विचार किया जाता है। इस प्रकार बहुत से आवेदन–पत्र अनिर्णीत पड़े हैं।

11.8.2 भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिडबी)

इसकी स्थापना भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक अधिनियम, 1990 के अन्तर्गत भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के स्वामित्व वाले एक सहायक बैंक के रूप में की गयी। यह लघु उद्योगों के प्रवर्तन, वित्त प्रबंध और विकास के लिये एक प्रमुख वित्तीय संस्था है। इससे ऐसे कामों में लगी मौजूदा संस्थाओं के कार्यों को समन्वित करने की भी अपेक्षा की जाती है। इसने अपना कार्य 2 अप्रैल, 1990 से शुरू किया और भारतीय औद्योगिक विकास बैंक से लघु उद्योग विकास कोष और राष्ट्रीय ईक्विटी कोष का संचालन अपने हाथ में ले लिया है।

11.9 भारत में विकास बैंक का मूल्यांकन

हाल के वर्षों में राष्ट्रीय स्तर की वित्तीय संस्थाओं जैसे भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम, भारतीय जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम और यूनिट ट्रस्ट ने अपने कार्यों में काफी प्रगति की है। ये वित्त को उद्योगों और सम्बन्धित क्षेत्रों में प्रवाहित करने में प्रेरणा के प्रमुख स्रोत रहे हैं। नयी और नव प्रवर्तन योजनाएं भी बनायी गयीं ।

सभी वित्तीय संस्थाओं द्वारा दी गयी स्वीकृतियों और दिये गये ऋणों के बारे में उपलब्ध आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि विकास बैंकों द्वारा दी गयी ऋणों की स्वीकृतियों और भुगतानों में लगातार वृद्धि हुई है। 1948 से 1964 तक की अवधि में इनके द्वारा कुल स्वीकृत सहायता 458 करोड़ रु. थी। यह 1964–65 में 118 करोड़ रु. थी और 1969–70 में बढ़कर 177 करोड़ रु. हो गयी । 1980 के दशक

में स्वीकृतियों व भुगतानों में प्रभावशाली वृद्धि हुई । 1988–89 में स्वीकृत ऋण 13,722 करोड़ रु. तक पहुंच गये । मार्च, 1989 तक कुल संचयी स्वीकृतियां 59,104 करोड़ रु. थी । ऋणों के भुगतान के बारे में भी यही प्रवृत्ति नजर आती है। 1964–65 में दिये गये ऋणों की राशि 91 करोड़ रु. थी, जो 1988–89 में बढ़कर 8,375 करोड़ रू. हो गयी । मार्च, 1989 तक इनका संचयी योग 42,112 करोड़ रु. था। इसी प्रकार 2010 के वित्तीय वर्ष में इनका संचयी योग 45,112 करोड़ वित्तीय वर्ष 2015 में 50,110 करोड़ तथा वित्तीय वर्ष 2016 में 51,225 करोड़ रु. था।

(ख) आलोचनात्मक मूल्यांकन : अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं के निम्नलिखित दोष हैं :

1. **कार्य विधिक foyac** (*Delay)* : आवेदन–पत्र देने से लेकर ऋण के भुगतान करने तक की जाने वाली कार्यविधि जटिल होने से अनावश्यक देरी होती है । जब तक ऋण प्राप्त होता है, तब तक परियोजना की लागत बढ़ जाती है। इससे ऋण प्राप्त करने वाली इकाइयों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2. **शहरी और विशिष्ट वर्गों वाला व्यवहार** (*Baised Treatment)* : क्योंकि सभी विकास बैंकों के सभी कार्यालय (मुख्य कार्यालय, क्षेत्रीय कार्यालय और शाखा कार्यालय) महानगरों और राज्यों की राजधानियों में स्थित हैं, इसलिये इनके कर्मचारियों की ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों तक कोई पहुंच नहीं होती। इन्हें इन क्षेत्रों की समस्याओं को समझने का अवसर ही नहीं मिलता । दूसरी ओर उनका व्यवहार शहरी हो जाता है, जिससे इन बैंकों की स्थापना का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है।

3. **विकसित राज्यों की ओर झुकाव** (*Inclination towards the developed ones*): लगभग सभी विकास बैंकों ने असम, उड़ीसा, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा, सिक्किम और नागालैंड जैसे पिछड़े राज्यों को सहायता देने की बजाय महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु और पश्चिमी बंगाल जैसे विकसित राज्यों को सहायता दी। शायद इसका कारण इन राज्यों में आधारिक संरचनात्मक सुविधाओं की कमी है। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिये कि जब तक औद्योगिक इकाइयों को वित्तीय सहायता नहीं दी जाएगी, आधारिक संरचनात्मक सुविधाएं विकसित करना कठिन होगा।

4. **ऋणों की विलम्बित अदायगी** (*Distortive repayment)* : विकास बैंकों द्वारा दिये गये ऋणों की अदायगी की विलम्वित राशि बढ़ती जा रही है और एक भायनक स्थिति में पहुंच गयी है। बहुत से कानूनी उपाय करने पर भी ऋणों के एक तिहाई भाग की अदायगी बाकी है।

5. **कोशों की कमी** (*Scarcity of funding)* : विकास बैंकों के पास कोशों की कमी है। इनके दायित्व बहुत है और साधन सीमित हैं। इसके अतिरिक्त सरकारें भी सहायता देने में असमर्थ हैं। बढ़ती हुई कीमतों और औद्योगिक क्रियाओं के कारण इनके सीमित साधन बढ़ती हुई मांग को पूरा नहीं कर सके।

6. **समन्वय** (*Lack of uniformity)* : भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के प्रयत्नों के बावजूद इन संस्थाओं के कार्यों में बहुघा समन्वय नहीं हो पाता । इसके फलस्वरूप कार्य में द्विगुणन होता है।

बोध प्रश्न ग

1. बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलतः

   (i) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक भारत में सवधि वित्त की एक शिखर संस्था है।

   (ii) मार्च 1989 को भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की प्रदत्त पूंजी 1,000 करोड़ रु. थी।

   (iii) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक का निदेशक मंडल वित्तीय सहायता की स्वीकृति के प्रस्तावों पर विचार करता है।

   (iv) देश के औद्योगिक ढांचे में कमियों को पूरा करने के लिये भारतीय औद्योगिक विकास बैंक को उद्योगों के नियोजन, प्रवर्तन और विकास करने की जिम्मेदारी भी सौंपी गयी है।

   (v) आठ तकनीकी परामर्श संगठन भारतीय औद्योगिक विकास बैंक द्वारा प्रवर्तित किये गये हैं।

   (vi) लघु उद्योगों को बढ़ावा देने के लिये भारतीय औद्योगिक विकास बैंक एक प्रमुख एजेन्सी है।

   (vii) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक द्वारा स्वीकृत ऋणों के प्रतिशत के रूप में दिये गये ऋण घटे हैं।

   (viii) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की क्रियाएं नये उद्यमकर्ताओं के लिये बाधक सिद्ध हुई हैं।

   (ix) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक निवेश के क्षेत्र में सर्वेक्षण भी करता है।

11.10 सारांश

विकास बैंक विशेष प्रकार की संस्थाएं हैं जो वित्त निगम और विकास निगम का संयोजन हैं। ये विकास बैंक उद्योग को तीन मूल संघटक प्रदान करने के लिये स्थापित किये गये हैं। ये संघटक 1) पूंजी, 2) ज्ञान, और 3) उद्यम हैं। यद्यपि विकास बैंकिंग की शुरूआत तो 19वीं शताब्दी के शुरू में ही हो गयी थी लेकिन यह आधुनिक रूप में केवल दूसरे विश्व युद्ध के बाद ही आई । भारत में स्थापित किया गया पहला विकास बैंक भारतीय औद्योगिक वित्त निगम था । यह 1948 में स्थापित किया गया। इसके बाद राज्य वित्त निगम स्थापित किये गये। बाद में भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक और राज्य औद्योगिक विकास निगम स्थापित किये गये।

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक इकाइयों को मध्यावधि और दीर्घावधि साख प्रदान करना है। इसके अतिरिक्त यह ऋणों की गारण्टी देता है। ये शेयरों, ऋण पत्रों और बांडों का अभिगोपन करता है और उद्योग द्वारा निर्गमित शेयरों में प्रत्यक्ष रूप से अभिदान करता है। अपनी स्थापना के 42 वर्षों में इसने लगभग 6,600 करोड़ रु. के ऋण स्वीकृत किया और इसमें से 1,005 करोड़ रु. की स्वीकृतियां केवल 1988–89 में दो । यद्यपि इसने अच्छा कार्य

किया लेकिन इसकी बड़े प्रतिष्ठानो को और विकसित राज्यों में पिछड़े क्षेत्रों को सहायता प्रदान करने के लिये आलोचना की गयी है।

भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम की स्थापना 1955 में निजी स्वामित्व वाले निगम के रूप में की गयी । एक विकास बैंक के सामान्य उद्देश्यों के अलावा इसके मुख्य उद्देश्य हैं निजी क्षेत्र में विदेशी पूंजी की सहभागिता को प्रोत्साहित करना और उद्योग में निजी निवेश को प्रोत्साहित करना । यह ऋण, अभिगोपन, गारण्टी, और पूंजी में सहभागिता की सुविधाएं प्रदान करता है। इसका मुख्य लाभ गैर–परम्परागत उद्योगों को मिला। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना पूर्णतया भारतीय रिजर्व बैंक के स्वामित्व में एक सहायक बैंक के रूप में 1964 में की गयी । लेकिन 1976 में इसे एक स्वायत्त संस्था बना दिया गया और इसे एक शिखर वित्तीय संस्था की भूमिका निभाने को कहा गया । यह सावधि वित्त तथा तकनीकी व प्रशासनिक सहायता प्रदान करता है और उन संस्थाओं की कार्यप्रणाली में समन्वय करता है जो उद्योग के लिये वित्त प्रबंध और उनके प्रवर्तन में कार्यरत हैं। यह अनुसूचित बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं को पुनर्वित्त सुविधाएं भी प्रदान करता है। इसके द्वारा स्वीकृत दी गयी वित्तीय सहायता के आधार पर इसका कार्य बहुत अच्छा रहा। लेकिन इस वित्तीय सहायता का बड़ा भाग महाराष्ट्र, गुजरात और तमिलनाडु आदि जैसे विकसित राज्यों को मिला । कुल सहायता का लगभग तीन चौथाई भाग निजी क्षेत्रक को मिला। तथापि, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक ने कमजोर औद्योगिक इकाइयों की सहायता करके, लघु इकाइयों का विकास करके और पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिथे कोष प्रदान करके काफी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

भारतीय औद्योगिक पुनर्निमाण बैंक की स्थापना भारत में अस्वस्थ उद्योगों के पुनरुत्थान में सहायता करने के लिये की गयी । इसने अस्वस्थ इकाइयों के पुनरुत्थान में काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी, लेकिन केवल कुछ चुने हुए उद्योगों को सहायता देने, इसकी कार्यप्रणाली तथा इसकी स्वीकृतियों और दिये गये ऋणों में बहुत अन्तर के आधार पर इसकी आलोचना की जाती है। भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना लघु उद्योगों के प्रवर्तन, वित्त प्रबन्ध और विकास के लिये 1990 में की गयी।

11.11 महत्वपूर्ण शब्दावली

- **अधिकृत पूंजी** (AuthorisedCapital): शेयर पूंजी की वह राशि जिसे कम्पनी की अंतर्नियमावली और सीमानियम में देना कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत आवश्यक होता है।
- **विकास बैंक** (Development Bank): एक वित्तीय एजेन्सी जो औद्योगिक संस्थाओं को ऋणों के रूप में मध्यावधि और दीर्धावधि आर्थिक सहायता प्रदान करती है।
- **प्रदत्त पूंजी** (Paid up Capital): कम्पनी की निर्गमित पूंजी का वह भाग जो शेयरधारकों ने दे दिया है।

11.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1. i) सही ii) गलत iii) सही iv) सही v) गलत

2. i)सबसे पहला ii) विदेशों, आस्थगित

iii) पूंजी. ज्ञान और उद्यम

ख 1. i) मध्यावधि, दीर्घावधि ii) केन्द्रीय, विश्व बैंक iii) 200

2. i) सही ii) गलत iii) गलत iv) सही v) सही

ग 1. i) सही ii) गलत iii) गलत iv) सही v) सही

vi) गलत vii) सही viii) गलत ix) सही

11.13 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 सांवधि ऋण देना क्या होता है? सावधि वित्त की समस्या के हल के लिये भारत में हाल ही में स्थापित विशेष संस्थाओं की भूमिका का विवेचन कीजिये।

प्रश्न–2 एक शिखर संस्था के रूप में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की भूमिका का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिये।

प्रश्न–3 भारतीय औद्योगिक वित्त और निवेश निगम के उद्देश्यों और उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिये।

प्रश्न–4 क्या भारत में बहुत सी विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं की स्थापना से भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की कोई भूमिका नहीं रही? विवेचन कीजिये।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)
- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकषन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)
- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीष कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, SBPD पब्लिकेशन 2016)
- प्रो0 षिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेशन 2017)
- एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
- के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
- शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016)
- एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

इकाई—12 सावधिक ऋण देने वाली संस्थाएं

इकाई की रुपरेखा

12.0 उद्‌देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 राज्य स्तर पर सावधिक ऋण देने वाली संस्थाओं की आवश्यकता

12.3 राज्य वित्त निगमें

12.4 राज्य औद्योगिक विकासस निगमें

12.5 तकनीकी परामर्श संगठन

12.6 सारांश

12.7 उपयोगी शब्दावली

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

12.0 उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्यनोपरान्त आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- राज्य स्तर पर विकास बैंकों की आवश्यकता को विश्लेशित कर सकेंगे,
- राज्य स्तर पर सवाधिक ऋण देने वाली संस्थाओं के उद्देश्यों, साधनों व कार्यो का विस्तार से वर्णन कर सकेगें, तथा
- राज्य स्तर पर सावधिक ऋण देने वाली संस्थाओं के कार्यो का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर सकेगें।

12.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपको अखिल भारतीय स्तर की सावधिक ऋण देने वाली वित्तीय संस्थाओं के बारें में विस्तार से जानकारी प्रदान की गयी थी। आपने उनके उद्देश्यों, प्रबंध, कार्यो और कार्य प्रणाली का सुव्यवस्थित अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप भारत के विभिन्न राज्य स्तरीय विकास बैकों से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

12.2 राज्य स्तर पर सावधिक ऋण देने वाली संस्थाओं की आवश्यकता

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFCI) की अखिल भारतीय स्तर पर स्थापना 1948 में की गयी थी। इसकी स्थापना केवल बड़े उद्योगो को वित्त प्रदान

करने के लिये ही की गयी थी। मध्यम और लघु उद्योगों की वित्तीय आवश्यकताएं इसके द्वारा पूरी नहीं की जानी थी। इसलिये, सरकार ने क्षेत्रीय स्तर पर ऐसे विकास बैंक शुरु करने की आवश्कता को महत्व दिया जो लघु उद्योग को सहीं प्रकार से सहायता प्रदान कर सके। परिणाम स्वरुप, सभी राज्यों में राज्य वित्त निगम (SFCs) और राज्य औद्योगिक विकास निगम (SIDCs) स्थापित करने की योजना प्रारम्भ की गई। राज्य स्तर पर विकास बैंको की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों को वरीयता प्रदान करते हुए की गईः–

(1) राज्य में लघु औद्योगिक इकाईयों को वित्तीय सहायता प्रदान करना,

(2) औद्योगिक बस्तियों की स्थापना और उनका सुव्यस्थित प्रबंध सुनिश्चित करना,

(3) आधारिक संरचनात्मक सुविधाओं जैसे सड़के, बिजली, जल–निकास और जल आपूर्ति के प्रावधान के द्वारा राज्यों के अल्पविकसित क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करना,

(4) मध्यम और ऊंचे स्तर के तकनीश्यिनों कों प्रशिक्षण प्रदान करने के लिये संस्थाएं स्थापित करना तथा उनके क्रियान्वयन पर निगरानी रखना,

(5) विकासात्मक बैंकिंग क्रियाओं का विकेन्द्रीकरण करना और उन्हें राज्य के अर्द्ध–शहरी क्षत्रों तक आवश्यकतानुसार विकसित करना,

(6) ऋण लेने वालों और ग्राहक–गणों को बेहतर पहुंच एवं सेवायें प्रदान करना,

(7) स्थानीय स्थितियों और समस्याओं की पूरी जानकारी प्राप्त कर उसी के अनुरुप योजना निर्धारित करना, तथा

(8) भाषा और सम्पर्क की समस्या को दूर कर जनसम्पर्क सुगम बनाना।

आइये राज्य स्तर की दो सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रभावी सावधिक ऋण देने वाली संस्थाओं यथा राज्य वित्त निगम और राज्य औद्योगिक विकास निगम और इनके साथ–साथ तकनीकी परामर्श संगठनों के कार्यों, इनके द्वारा प्रदान की जाने वाली विभिन्न प्रकार की सहायता और कार्य प्रणलियों को विश्लेषित करते हुए विस्तार से अध्ययन करें।

12.3 राज्य वित्त निगमें

राज्य वित्त निगम अधिनियम,1951 में लागू किया गया जिससे सभी राज्य सरकरें (जम्मू व कश्मीर कों छोंडकर) क्षेत्रीय विकास बैंकों के रूप में राज्य वित्त निगमों की स्थापना कर सकें। इन निगमों को अपने– अपने राज्य में लघु व मध्यम औद्योगिक इकाइयों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करना था। पहला राज्य वित्त निगम पंजाब में 1953 में स्थापित किया गया। इसके बाद आध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र और उड़ीसा ने। आजकल देश में विभिन्न राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों में 24 राज्य वित्त निगम कार्य कर रहे है।

(क) वित्तीय साधन : राज्य वित्त निगम की पूंजी की संरचना सम्बद्ध राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है। इनकी न्यूनतम पूंजी 50 लाख रू. है और अधिकतम 5 करोड. रू0.। इन्हें शेयर पूंजी के निर्गमन और राज्य सरकरों द्वारा

गारण्टी दिये गये बांडों व ऋणपत्रों के निर्गमन द्वारा कोश जुटानें का भी अधिकार प्राप्त है। ये जनता से मध्यावधि व दीर्घावधि जमांए भी स्वीकार कर सकते हैं। इन सबके अलावा ये अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण भी ले सकतें हैं।

(ख) प्रबंध : प्रत्येक राज्य वित्त निगम का प्रबंध 12 सदस्यों के एक निदेशक मंडल द्वारा किया जाता है। सम्बद्ध राज्य सरकार इसका अध्यक्ष और प्रबंध संचालक नियुक्ति करती हैं और 3 निदेशक मनोनीत करती है। भारतीय औद्योगिक वित्त निगम और भारतीय औद्योगिक विकास बैंक एक–एक निदेशक मनोनीत करते है। तीन निदेशक वित्तीय संस्थाओं द्वारा चुने जाते हैं। एक–एक निदेशक अनुसूचित बैंकों, सरकारी बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं से होते हैं। एक निदेशक गैर–संस्थगत शेयर होल्डरों द्वारा चुना जाता हैं।

(ग) सहायता के प्रकार : राज्य वित्त निगम निम्नलिखित प्रकार की सहायता प्रदान करते हैं।

1. उद्योगों को आधारभूत संरचना यथा– भूमि, भवन व मशीन के क्रय के लिये दीर्घकालीन ऋण देना,
2. भारत में आपूर्तिकत्ताओं से आस्थिगत भुगतान पर मशीन खरीदने के लिये उद्यमकर्ता की ओर से भुगतान की गांरटी देना,
3. औद्योगिक संस्थाओं के शेयरों, बाण्डों और ऋणपत्रों के निर्गमन का अभिगोपन करना,
4. औद्योगिक संस्थाओं द्वारा 20 वर्ष की अवधि तक के लिये जुटाये गये ऋणों की गारंटी देना,
5. स्थायी परिसम्पतियां प्राप्त करने के लिये उद्योंगों द्वारा व्यापारिक बैंको या सहकारी बैंकों से जुटाए गये ऋणों की गारण्टी देना,
6. औद्योगिक इकाइयों के ऋणपत्रों में अभिदान करना,
7. विश्व बैंक साख के अन्तर्गत उद्योंगों के लिये विदेशी विनिमय ऋणों का प्रावधान करना,
8. 5 लाख रू. तक की विशेष पूँजीगत सहायता देना,
9. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम और भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेष निगम जैसी केन्द्रीय वित्तीय संस्थाओं के सहयोग से उद्योगों को ऋण देना और राज्य औद्योगिक विकास निगमों तथा व्यापारिक बैंकों के साथ परियोजनाओं का संयुक्त वित्त प्रबन्ध करना,
10. राज्य या केन्द्रीय सरकार के या केन्द्रीय सरकार द्वारा इस बारे में घोशित किसी अन्य वित्तीय संस्था के एजेन्ट के रूप में कार्य करना।

(घ) पात्रता : वित्तीय सहायता प्राप्त करने हेतु निम्नलिखित योग्यताओं का निर्धारण किया गया है। किसी भी प्रकार के स्वामित्व वाली औद्योगिक संस्थाएं जैसे कि एकल स्वामित्व वाली संस्था, संयुक्त हिन्दु परिवार, पंजीकृत सहकारी समिति,

निजी या सार्वजिक सीमित कम्पनी, जो निम्नलिखित क्रियाओं में से किसी एक या एक से अधिक में कार्यरत होना चाहती हैं, वे वित्तीय सहायता प्राप्त करने योग्य होती हैं:

1. वस्तुओं का विनिर्माण,
2. वस्तुओं का परिरक्षण,
3. वस्तुओं का प्रक्रमण,
4. खनन,
5. होटल उद्योग,
6. औद्योगिक बस्ती का विकास,
7. बिजली या शक्ति के किसी अन्य रुप का उत्पादन व वितरण,
8. परिवहन उद्योग,
9. मशीन या शक्ति की सहायता से किसी वस्तु का समनुक्रमण, मरम्मत या पैंकिंग,
10. मछली पकड़ना या मछली पकड़ने के लिये तटीय सुविधाएं प्रदान करना या उसका अनुरक्षण, तथा
11. औद्योगिक संवृद्धि के प्रवर्तन के लिये विशेष या तकनीकी ज्ञान या अन्य सेवाएं प्रदान करना।

(च) राज्य वित्त निगमों द्वारा किये गये कार्य : 1950 और 1960 के दषकों में राज्य वित्त निगमों ने साधारण स्तर पर कार्य किया । लेकिन 1970 के दषक में इनकी क्रियाओं में तीव्र वृद्धि हुई। इसका कारण यह था कि इस अवधि में सरकार ने लघु उद्योगों, नये उद्यमकत्ताओं और पिछड़े क्षेत्रों के विकास को बढ़ावा देने पर जोर दिया। मार्च 2016 तक इनकी संचयी स्वीकृतियां और भुगतान क्रमशः 8,651 करोड़ रु. और 6,356 करोड़ रु. थे। वर्ष 2016–17 में ही इनकी स्वीकृतियां व भुगतान क्रमशः 1,405 करोड़ रु. और 1,053 करोड़ रु. थे।

राज्य वित्त निगम अपने–अपने राज्यों में लघु व मध्यम पैमाने के प्रतिष्ठानों के वित्त प्रबंध में महत्वपूर्ण कार्य कर रहें हैं। लेकिन इनकी निम्नलिखत कारणों से आलोचना की जाती है:

1. प्राप्य राशि की वसूली : प्राप्य राशि की वसूली संतोषजनक नहीं है। उदाहरण के लिए 2000–2001 में इनकी बकाया राशि 215 करोड़ रु0 थी जो 2016–17 तक तीन गुनी यानि 623 करोड़ रु. हो गयी। बहुत से राज्य वित्त निगमों की पुरानी बकाया राशि उनके द्वारा दिये जा रहे ऋणों की राशि से अधिक है। दूसरी व्याकुल करने वाली प्रवृत्ति यह है कि अतिदेय राशि और बकाया ऋणों का अनुपात बढ़ता जा रहा है, जैसा कि तालिका 12.1 में नजर आता है। बढ़ती हुई बकाया राशि का राज्य वित्त निगमों के साधनों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

तालिका 12.1
अतिदेय राशि बकाया ऋणों के प्रतिशत के रुप में

वर्ष	प्रतिशत
2009–10	25
2010–11	26
2011–12	26
2012–13	27
2013–14	29

2. बहुत छोटे उद्योगो को सहायता : राज्य वित्त निगमों द्वारा लघु उद्योगों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता घटती जा रही है। यह प्रवृत्ति तालिका 12.2 से स्पष्ट हो जाती है। 50,000 रु. तक की सहायता प्राप्त करने वाली इकाईयों का हिस्सा, संख्या और राशि दोनो ही दृष्टि से घट रहा है। इसके विपरीत 10 लाख रु. से अधिक सहायता की स्वीकृति प्राप्त करने के वाली इकाईयों का हिस्सा, संख्या और राशि दोनो ही दृष्टि से निरंतर बढ़ रहा है। इसके अतिरिक्त 2015–2016 के दौरान जिन इकाईयों को 10 लाख रु. से अधिक ऋण स्वीकृति किये गये उनके 6.2 प्रतिशत को राज्य वित्त निगमों द्वारा दी गयी कुल सहायता का लगभग 50 प्रतिशत भाग मिला। इसके मुकाबले लघु इकाईयों को कुल इकाईयों का 42 प्रतिशत राज्य वित्त निगमों द्वारा दी गयी कुल स्वीकृतियों का केवल 3.5 प्रतिशत मिला।

तालिका 12.2
सहायता के आकार के अनुसार वर्गीकरण
(करोड़ रुपये में)

वर्ष	50,000 रु. तक की सहायता		10 लाख रु. से ऊपर की सहायता	
	ईकाइयों की संख्या	राशि	ईकाइयों की संख्या	राशि
2011–12	19,603 (67.8)	28.82 (7.8)	787 (2.7)	142.95 (38.6)
2012–13	19,158 (59.8)	28.42 (5.6)	1,158 (3.6)	281.07 (43.4)
2013–14	17,382 (51.0)	27.99 (4.6)	1,366 (4.1)	256.63 (42.0)
2014–15	14,930 (48.1)	28.46 (4.4)	1,528 (4.9)	295.70 (16.0)
2015–16	13,087 (41.5)	26-89 (3.5)	1,955 (6.2)	385.13 (49.4)

3. अपर्याप्त साधन : बहुत से राज्य वित्त निगमों के पास वित्तीय सहायता की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिय पर्याप्त साधन नहीं है। पिछले कुछ वर्षो में राज्य सरकारों का ध्यान कल्याणकारी कार्यक्रमों पर अधिक केन्द्रित रहा है। अतः राज्य वित्त निगमों के लिये अपने उद्देष्यों को पूरा करने के लिये कोशों की व्यवस्था करना बहुत कठिन लग रहा है।

4. बढ़ती हुई अस्वस्थता : जिन इकाईयों की सहायता की गयी उनमें से बहुत सी इकाईयां अस्वस्थ हो रही है जिससे ऋणों का भार बढ़ रहा है।

5. बहुत अधिक औपचारिकताएं : राज्य वित्त निगम ऋण के लिये आवेदन पत्रों पर विचार करने की और उनकी छानबीन करने की प्रक्रिया को ही अपना रहे हैं। परिणाम स्वरुप, किसी ऋण के लिये जब तक स्वीकृति दी जाती है और उसका भुगतान किया जाता है तब तक व्यावसायिक स्थिति में इतने परिवर्तन हो सकते हैं कि परियोजना आकर्षक ही न रहे।

बोध प्रश्न (क)

1. राज्य स्तर पर सावधिक ऋण देने वाली संस्थाओं की आवश्यकता किन कार्यो के लिए महसूस की गई?

   ....
   ....
   ....
   ....

2. बताइये कि निम्नलिखित कथन सही है या गलत :

   (i) राज्य वित्त निगमों के निदेशक मंडल के सभी निदेशक सम्बद्ध राज्य सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं।

   (ii) राज्य वित्त निगम बड़े उद्योगों को ऋण देते हैं।

   (iii) राज्य वित्त निगम ऋणों की वसूली कुषलतापूर्वक नहीं कर पाये हैं।

   (iv) लगभग सभी राज्य वित्त निगमों के पास अतिरिक्त कोष हैं।

   (v) राज्य वित्त निगम औद्योगिक इकाईयों की ओर से भुगतान की गारंटी देने की सुविधा प्रदान करते हैं।

12.4 राज्य औद्योगिक विकास निगमें

1960 से बहुत से राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेषों ने अपने–अपने राज्यों में औद्योगिक विकास को तेज करने के लिये राज्य औद्योगिक निगम (SIDC) शुरु किये। कुछ राज्यों में इन्हें राज्य औद्योगिक निवेष निगम (State Industrial Investment Corporation) भी कहते हैं। सबसे पहले आंध्र प्रदेष और बिहार ने 1960 में इनकी स्थापना की, इसके बाद 1961 में केरल और उत्तर प्रदेष और 1962 में महाराष्ट्र, गुजरात और उड़ीसा ने। वर्तमान में 26 राज्य औद्योगिक विकास निगम हैं जो पूरे देष में फैले हुए हैं।

(क) वित्तीय साधन : प्रदत्त पूंजी और राज्य सरकारों से ऋणों के अतिरिक्त राज्य औद्योगिक विकास निगम बांडो और ऋणपत्रों के द्वारा सहायता प्राप्त करता है। 2016–17 में राज्य औद्योगिक विकास निगमों द्वारा एकत्र किये गये 1,113 करोड़ रु. के कुल साधनों में विभिन्न स्रोतों का योगदान इस प्रकार था :

(1)	प्रदत्त पूंजी में वृद्धि	10.1 प्रतिशत
(2)	बांडो के द्वारा ऋण	2.8 प्रतिशत
(3)	ऋणियों द्वारा अदायगी	14.8 प्रतिशत
(4)	संस्थागत ऋण	33.5 प्रतिशत
(5)	अन्य	38.8 प्रतिशत

(ख) प्रबंध : राज्य औद्योगिक विकास निगम अपनी–अपनी राज्य सरकारों के मार्ग दर्षन के अन्तर्गत कार्य करते हैं। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के एक मनोनीत सदस्य को छोड़कर निदेश मंडल के अन्य सभी सदस्य राज्य सरकारों द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। ये मंडल जब भी और जैसे भी आवश्यक समझते है विशेशसमितियां बनाते हैं। ये समितियां मंडल को व्यापार से सम्बन्धित विभिन्न मामलों पर सलाह देती हैं। प्रबंध निदेशक राज्य औद्यौगिक विकास निगम का प्रमुख प्रषासक होता है। वह दिन–प्रतिदिन की व्यवस्था की देखभाल करता है।

(ग) कार्य : राज्य औद्योगिक विकास निगम के कार्य निम्नलिखित हैं:

1. औद्योगिक क्रियाओं को बढ़ावा देना, जैसे कि परियोजना की पहचान, व्यवहार्यता रिपोर्ट तैयार करना, उद्यमकर्ताओं का पता लगाना और परियोजना के कार्यान्वयन में उनकी सहायता करना।
2. संयुक्त क्षेत्र में या पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक इकाईयों के रुप में मध्यम व बड़ी औद्योगिक परियोजनाओं की स्थापना करना।
3. आधारिक संरचनात्मक सुविधाएं और बाजार समाचार सेवाएं प्रदान करना।
4. सावधिक ऋण/पूरक ऋण के द्वारा वित्तीय सहायता देना और ईक्विटी व पूर्वाधिकार शेयरों का अभिगोपन या अभिदान करना।
5. अनुदान, प्रोत्साहन आदि देने के बारे में राज्य व केन्द्रीय सरकारों के एजेन्ट के रुप में कार्य करना।

(घ) राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा किये गये कार्य : राज्य औद्योगिक विकास निगमों द्वारा दी गयी स्वीकृतियां और भुगतान तालिका 12.3 में दिये गये हैं। जैसा कि इस तालिका से स्पष्ट है मार्च 2016 तक इनकी संचयी स्वीकृतियां और भुगतान क्रमशः 4,356 करोड़ रु. और 3,136 करोड़ रु. थे। वर्ष 2015–16 के दौरान स्वीकृतियां और भुगतान क्रमशः 742 करोड़ रु. और 531 करोड़ रु. थे। हाल के वर्षो में राज्य औद्योगिक विकास निगमों के कार्यो में तेजी से विस्तार हुआ है और यह तथ्य इस बात से प्रकट होता है कि 2012 से 2016 तक की चार वर्ष की अवधि में इनके द्वारा दी गयी कुल सहायता इनकी स्थापना से 2012 तक की अवधि में दी गयी सहायता से अधिक थी।

तालिका 12.3

राज्य औद्योगिक विकास निगमों द्वारा स्वीकृत और भुगतान की गई सहायता

वर्ष	स्वीकृतियां		भुगतान	
	राशि (करोड़ रु. में)	संवृद्धि दर (%)	राशि (करोड़ रु. में)	संवृद्धि दर (%)
2001-02	33.5	20.1	26.7	29.6
2002-03	37.5	11.9	26.4	(-)1.1
2003-04	71.8	91.5	35.0	32.6
2004-05	87.9	22.4	44.8	28.0
2005-06	98.3	11.8	60.1	34.2
2006-07	157.7	60.4	85.3	41.9
2007-08	216.4	37.2	124.6	46.1
2008-09	299.6	38.4	191.1	53.4
2009-10	296.6	(-)1.0	208.0	8.8
2010-11	364.6	22.9	236.5	13.7
2011-12	477.9	31.1	297.6	25.8
2012-13	527.0	10.3	364.0	22.3
2013-14	570.3	8.2	425.1	16.8
2014-15	619.4	8.6	449.1	5.6
2015-16	742.3	19.8	530.7	18.2
मार्च, 2016 तक संचयी	4356.4	------	3135.8	-----

राज्य औद्योगिक विकास निगम उद्योग के संरचनात्मक रुपान्तरण से बहुत सहयोग दे रहें हैं। वास्तव में इनके द्वारा दी गयी कुल स्वीकृतियों में 60 प्रतिशत और गैर–परम्परागत उद्योगों जैसे रेसायन, मूल धातू और धातू की वस्तुएं, मषीन आदि के लिये थीं। इनके द्वारा पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास को तेज करने के लिये दी जाने वाली सहायता बहुत बढ़ रही है। उदाहरण के लिए मार्च 2016 तक इनकी संयची स्वीकृतियों का 62.9 प्रतिशत पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक इकाईयों के

लिये था। तालिका 12.4 में देखिये जिसमें राज्य औद्योगिक विकास निगमों द्वारा पिछड़े क्षेत्रों को स्वीकृत सहायता का ब्योरा दिया गया है।

तालिका 12.4

राज्य औद्योगिक विकास निगमों द्वारा पिछड़े को स्वीकृत सहायता

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	पिछड़े हुए क्षेत्र	जो क्षेत्र पिछड़े हुए नहीं हैं	कुल
2013–14	362.0 (63.5)	208.3 (36.5)	570.3 (100.0)
2014–15	411.2 (66.4)	208.2 (33.6)	619.4 (100.0)
2015–16	438.9 (59.1)	303.4 (40.9)	742.3 (100.0)
मार्च, 2016 तक संचयी	2,741.4 (62.9)	1,615.0 (37.1)	4,356.4 (100.0)

प्रारंभिक पूंजी के लिये सहायता राज्य औद्योगिक विकास निगम भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की ओर से प्रारंभिक पूंजी योजना चलाकर उद्यम आधार को विस्तृत करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। इस योजना के अन्तर्गत उन नये उद्यमकर्ताओं को जिनके पास आवश्यक कौशल तो है लेकिन पर्याप्त साधन नहीं है, ईक्विटी की तरह की सहायता प्रदान की जाती है। लेकिन राज्य औद्योगिक विकास निगमों की निम्नलिखित समस्याएं व कमियाँ हैं–

1. इनमें से बहुतों को कोशों की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। कोशोंकी वर्तमान उपलब्धता औद्योगिक इकाईयों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के लिये पर्याप्त नहीं है।
2. लगभग सभी राज्य औद्योगिक विकास निगमों के लिए उपरिव्यय एक बड़ी समस्या बन रही है।
3. इनकी क्रियाओं में राजनीतिक हस्तक्षेप भी बढ़ रहा है।

12.5 तकनीकी परामर्श संगठन

वित्त की उपलब्धता के अतिरिक्त तकनीकी परामर्श सेवाओं की भी देष के औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बड़े उद्योग तो अलग से तकनीकी परामर्श विभाग रखने में समर्थ होते हैं या वे अच्छे परामर्श संगठनों से सहायता ले सकते हैं और इस पर काफी पैसा खर्च कर सकते हैं।

लेकिन पूर्णतया व्यावसायिक आधार पर कार्य करने वाली निजी परामर्श इकाईयों की सेवा प्राप्त करने की लागत लघु इकाईयों की सामर्थ्य से बाहर होती है। ऐसी स्थिति के कारण ही 1970 के दषक के शुरु के वर्षो में तकनीकी परामर्श संगठनों की स्थापना की गयी। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक प्रतिशत भारतीय औद्योगिक वित्त निगम और भारतीय औद्योगिक साख और निवेष निगम ने राज्य

स्तर की वित्तीय विकास संस्थाओं और व्यापारिक बैंकों के सहयोग से तकनीकी परामर्श संगठनों का एक जाल सा बिछा दिया। आजकल देष में 27 तकनीकी परामर्श संगठन हैं और इनमें से कुछ एक से अधिक राज्यों में कार्य करते हैं।

तकनीकी परामर्श संगठन एक ही स्थान पर परियोजना के जितने भी चरण हैं उन सभी के लिये परामर्श सेवायें प्रदान करने के लिये स्थापित किये गये हैं। ये संगठन राज्य सरकारों, राज्य स्तर की विकासात्मक वित्तीय संस्थाओं और बैंकों को भी तकनीकी परामर्श सेवाएं प्रदान करते हैं। तकनीकी परामर्श संगठनों का मुख्य कार्य क्षेत्रीय परियोजना रिर्पोटें तैयार करना और व्यावहार्यता का अध्ययन है। पिछले वर्षों में इस क्षेत्र में अनुभव प्राप्त कर लेने के बाद इन संगठनों ने अपने कार्य क्षेत्र को संभाव्य उद्यमकर्ताओं का पता लगाने और उनके प्रषिक्षण, परियोजना के कार्यान्वयन, पुनः स्थापन, प्रबंध परामर्श, सरंक्षण आदि बहुत से कार्यो तक विस्तृत कर दिया है। वर्ष 2015–16 के दौरान तकनीकी परामर्श संगठनों ने कुल 3,550 नियत कार्य पूरे किये, जबकि इससे पिछले वर्ष में इनकी संख्या 3,082 थी। इन नियत कार्यो में निम्नलिखित थेः

- 2,983 व्यावहार्यता अध्ययन / परियोजना रिपोर्टें / रुपरेखाएं
- 31 परियोजना मूल्यांकन
- 170 औद्योगिक संभाव्यता / बाजार / क्षेत्रीय विकास और अन्य का सर्वेक्षण
- 9 कार्यात्मक औद्योगिक कप्लेक्स / टर्न की कार्य
- 219 आधुनिकीकरण, पुनः स्थापन / नैदानिक अध्ययन
- 138 अन्य नियत कार्य / विशेष अध्ययन

तकनीकी परामर्श संगठनों ने तकनीकी व्यवहार्यता रिर्पोटें भी तैयार की जिनमें 503 करोड़ रु0 का निवेश होना था और 31,438 व्यक्तियों को रोजगार मिलने की संभावना थी। इसके अतिरिक्त इन्होंनें उद्यमकर्ताओं के लिये 178 विकासात्मक कार्यक्रम किये, जहाँ 3,316 उद्यमकर्ताओं को प्रशिक्षण दिया गया। तकनीकी परामर्श संगठनों ने उद्यमकर्ताओं के लिये 54 जानकारी कैम्प लगाये और शिक्षित बेरोजगार युवकों के लिये स्वनियोजन योजना के अन्तर्गत 12 प्रशिक्षण कार्यक्रम किये।

बोध प्रश्न (ख)

1. राज्य औद्योगिक विकास निगमों के मुख्य कार्य क्या हैं?

   ....
   ....
   ....
   ....

2. रिक्त स्थानों को भरियेः

   (i) ....और.............................. राज्य औद्योगिक विकास निगमों की स्थापना करने वाले पहचान राज्य थे।

   (ii) राज्य औद्योगिक विकास निगम अपने–अपने .... के मार्ग दर्शन सहायता प्रदान की जाती है।

(iii) ....योजना के अन्तर्गत नयी पीढ़ी के योग्य उद्यमकर्ताओं को ईक्विटी तरह की सहायता प्रदान की जाता है।

3. बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलतः

(i) राज्य औद्योगिक विकास निगम उद्यम आधार को विस्तृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

(ii) राज्य सरकार के मनोनीत निदेशक को छोड़कर राज्य औद्योगिक विकास निगमों के निदेशक मंडल के अन्य सभी सदस्य भारतीय औद्योगिक विकास बैंक से आते हैं।

(iii) राज्य औद्योगिक विकास निगम उद्योग के संरचनात्मक रुपांतरण में महत्वपूर्ण योगदान दे रहें हैं।

(iv) तकनीकी परामर्श संगठन केवल राज्य स्तर की विकासात्मक वित्तीय संस्थाओं को ही तकनीकी परामर्श प्रदान करते हैं।

12.6 सारांश

छोटे पैमाने के उद्योगों की आधारिक संरचनात्मक सुविधाएं, प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए राज्य स्तर में सावधिक ऋण प्रदान करने वाली संस्थाओं की आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त ये राज्य में पिछड़े क्षेत्रों के विकास से भी सहायता करती है।

राज्य वित्त निगम लघु और मध्यम औद्योगिक इकाईयों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए 28 राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में स्थापित किये गये। प्रत्येक राज्य वित्त निगम का प्रबंध एक निदेशक मंडल करता है जिसमें 12 सदस्य होते हैं। यह उद्योगों को भूमि भवन व मशीन खरीदने के लिए ऋण देता है। यह उद्यमकर्ताओं की ओर से भुगतान की गारण्टी भी देता है और प्रत्यक्ष रुप से विदेषी विनिमय ऋण प्रदान करता है तथा औद्योगिक इकाईयों के ऋण पत्रों में अभिदान करता है। राज्य वित्त निगम अपने–अपने राज्यों में लघु व मध्यम उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। लेकिन ऋण की वसूली संतोषजनक नहीं है और लघु उद्योगों को वित्तीय सहायता कम होती जा रही है। राज्य वित्त निगम साधनों की अपर्याप्ता और अनावश्यक औपचारिकताओं से पीड़ित हैं।

राज्य औद्योगिक विकास निगम/राज्य औद्योगिक निवेष निगम भारत में विभिन्न राज्यों में मध्यम व बड़ी औद्योगिक योजनाओं को वित्तीय और आधारिक संरचना संबंधी सुविधाएं प्रदान करके उनका प्रर्वतन करने के लिए स्थापित किये गये हैं। हाल के वर्षो में राज्य औद्योगिक विकास निगमों/राज्य औद्योगिक निवेश निगमों की क्रियाओं में काफी विस्तार हुआ है, खास तौर से गैर–परम्परागत उद्योगों में पिछड़े क्षेत्रों के विकास में और प्रारम्भिक पूंजी की सहायता देने में। राज्य वित्त निगमों की भांति राज्य औद्योगिक विकास निगमों/राज्य औद्योगिक निवेश निगमों को भी कोशोंकी कमी और उपरिव्ययों की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। लघु इकाईयों की सहायता करने के लिये राज्य स्तर पर तकनीकी परामर्श संस्थाओं की स्थापना की गयी। आजकल भारत में 27 तकनीकी परामर्श संस्थाएं हैं और इन्होंने तकनीकी परामर्श प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

12.7 उपयोगी शब्दावली

- **सावधिक ऋण :** एक निर्दिष्ट अवधि (साधारणतया 3 से 10 वर्ष) के लिये दिया गया बैंक अग्रिम, जिसकी अदायगी ब्याज सहित प्रायः नियमित अन्तराल पर की जाती है।

- **प्रारम्भिक पूंजी की सहायता :** नयी पिढ़ी के उन योग्य उद्यमकर्ताओं को ईक्विटी की तरह सहायता जिनके पास आवश्यक कौशल तो है लेकिन पर्याप्त साधनों का अभाव है।

12.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 भारत में राज्य स्तर पर सावधिक ऋण देने वाली संस्थाओं की संरचना का वर्णन कीजिये।

प्रश्न–2 भारत में राज्यों में उद्योग के विकास में राज्य वित्त निगमों की भूमिका का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये।

प्रश्न–3 राज्य औद्योगिक वित्त निगमों/राज्य औद्योगिक निवेश निगमों के प्रबंध और कार्यो के बारें में संक्षेप में बताइये।

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1. लघु इकाईयों को वित्तीय सहायता; अल्प विकसित क्षेत्रों के विकास में सहायता; आधारिक संरचनात्मक और प्रशिक्षण संबंधी सुविधाएं प्रदान करना

2. i) गलत ii) सही iii) सही iv) गलत v) सही।

ख 1. औद्योगिक क्रियाओं को बढ़ावा देना; आधारिक संरचनात्मक और वित्तीय सुविधाएं प्रदान करना; औद्योगिक परियोजनाएं स्थापित करना; राज्य सरकारों की ओर से आर्थिक सहायता देना।

2. i) आंध्र प्रदेश और बिहार ii) राज्य सरकारों iii) प्रारंभिक पूंजी।

3. i) सही ii) गलत iii) गलत iv) गलत।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)

- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)

- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीश कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, SBPD पब्लिकेशन 2016)

* प्रो0 शिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेशन 2017)
* एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
* के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
* शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016)
* एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

****

इकाई–13 भारत में कृषि वित्त

इकाई की रुपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 कृषि वित्त का महत्त्व

13.3 भारत में कृषि साख के स्रोत

13.4 सरकार

13.5 सहकारी साख समितियाँ और सहकारी बैंक

13.5.1 प्राथमिक कृषि सहकारी साख समितियाँ

13.5.2 केन्द्रीय सहकारी बैंक

13.5.3 राज्य सहकारी बैंक

13.5.4 भू–विकास बैंक

13.6 व्यापारिक बैंक

13.6.1 कृषि वित्त के प्रकार

13.6.2 ग्रामीण साख के स्रोत के रूप में व्यापारिक बैंकों की सीमाएं

13.7 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

13.8 राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक

13.8.1 कार्य

13.8.2 निष्पादन

13.9 सारांश

13.10 उपयोगी शब्दावली

13.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

13.0. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- ❖ भारत में कृषि वित्त का महत्त्व बता सकें।
- ❖ भारत में कृषि वित्त के स्रोत पहचान सकें।

- ❖ कृषि वित्त में व्यापारिक बैंकों की भूमिका बता सकें ।
- ❖ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कार्यप्रणाली का वर्णन कर सकें।
- ❖ भारत में कृषि और ग्रामीण विकास को पुनर्वित्तीयन की सुविधाएं प्रदान करने में राष्ट्रीय कृषि एवं विकास बैंक की भूमिका का मूल्यांकन कर सकें।
- ❖ भारत में कृषि वित्त की चिरस्थायी समस्याएं बता सकें।

13.1. प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने उन विभिन्न वित्तीय संस्थाओं के बारे में पढ़ा था जो मुख्यतया औद्योगिक संस्थाओं को सहायता प्रदान करती हैं। इस इकाई में आप उन वित्तीय संस्थाओं का अध्ययन करेंगे जो विशेष रूप से कृषि और उससे सम्बन्धित क्षेत्र को वित्तीय सहायता प्रदान करती हैं।

13.2 कृषि वित्त का महत्त्व

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लगभग 75 प्रतिशत जनता कृषि पर निर्भर है तथा कृषि क्षेत्र की राष्ट्रीय आय में भागीदारी लगभग 17 से 18 प्रतिशत रहती है। एक बड़ा वर्ग भारतीय किसानो का आज भी प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित कृषि पद्धति को अपनाता है जिसका एक मूल कारण वित् की कमी को माना जाता है। कृषि में वृद्धि के लिए वित्त की उपलब्धि एक महत्त्वपूर्ण कारक है। सरकारी ऋण सुविधाओं की कमी या उन योजनाओं का क्रियान्वित रूप से फलित न होना भारतीय किसानो की निर्धनता का एक मुक्य करक बना हुआ है। परन्तु इस दिशा में हो रहे बदलाव भारितीय किसानो के लिए एक उम्मीद की किरण के रूप में देखा जाता है। इसके लिए सरकार ने समय. समय पर नीतियाँ बनायी हैं जिसके अंतर्गत कृषि क्षेत्रा को उपलब्ध वित्त न केवल कम दरों पर उपलब्ध होता है बल्कि उचित मात्रा में भी उपलब्ध हो रहा है। ग्रामीण कुशल वित्त व्यवस्था का होना एक महत्त्वपूर्ण पहलू है।

संस्थागत वित्त व्यवस्था, ग्रामीण भारत में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह किसानों को साहूकारों से मुक्त कराती है तथा शोषित होने से भी बचाती है। कृषि ऋणग्रस्तता को कम करने के लिये भारत सरकार और राज्य सरकारों ने ऋण देने के कार्य को नियमित करने का प्रयत्न किया है, भूमि का कृषि से गैर कृ षि वर्गों को हस्तांतरण रोका है और तकावी ऋणों के रूप में प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता प्रदान की है। दुर्भाग्यवश सरकार के इन प्रयत्नों के बावजूद कृषि क्षेत्र में लोगों की स्थिति लगातार खराब होती गयी और ऋणग्रस्तता बढ़ती गयी। संस्थागत साख प्रणाली शुरू होने से पहले किसानों के लिये साख का प्रमुख स्रोत गांव का महाजन होता था। बहुत से अनुचित तरीके अपनाने के अलावा महाजन ब्याज बहुत ऊंची दरों पर लिया करते थे।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विघटित होने पर ऋण व्यक्तिगत जमानत पर नहीं मिलते थे बल्कि भूमि की जमानत पर उपलब्ध थे। भारतीय संविदा अधिनियम

(*Indian Contract Act*) और सिविल प्रक्रिया संहिता (*Civil Procedure Code*) जैसे नये कानून भी महाजन के पक्ष में ही थे और इनके कारण वह ऊंची ब्याज दर लेने से समर्थ था तथा ऋणी की जमीन, पशु और उपकरण जब्त कर सकता था। परिणामस्वरूप किसान बरबाद हो गया था। सरकार ने स्थिति को गंभीरता को समझा और हाल ही के वर्षों में बहुत सी समितियां नियुक्त की जो ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करने के बारे में तरीके सुझाएं, जिससे कि वहां के अतिरेक कोशोंका संग्रह किया जा सके और किसानों को वित्तीय सहायता प्रदान की जा सके। इनकी सिफारिशों पर सहकारी बैंकों, व्यापारिक बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गयी। इसी क्रम में राष्ट्रीय कृषि व ग्रामीण विकास बैंक की भी स्थापना की गयी ।

उस अवधि के आधार पर जिसके लिये किसानों को वित्त चाहिये उनकी वित्तीय आवश्यकताओं को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

1. **अल्पकालीन या मौसमी ऋण** – सामान्यतया अल्पकालीन ऋण की अवधि एक फसल से दूसरी फसल तक या एक वर्ष की होती है। इस प्रकार के ऋण बीज, खाद, मजदूरी, औजार, जोत आदि के व्ययों का भुगतान करने के लिए प्राप्त किये जाते हैं, और कृषि फसल की बिक्री होते ही चुका दिये जाते हैं। लेकिन अल्पकालीन ऋण के भुगतान की अधिकतम अवधि 15 माह होती है।

2. **मध्यावधि ऋण** – इन ऋणों की अवधि दो से पाँच वर्ष तक मानी जाती है। किसान को पशु, महंगे उपकरण खरीदने के लिये और औसत अवधि के भू–सुधार करने के लिये मध्यकालीन ऋणों की आवश्यकता होती है।

3. **दीर्घकालीन ऋण** – इस प्रकार के ऋणों की अवधि पाँच वर्ष से बीस वर्ष तक की हो सकती है। इतनी लम्बी अवधि वाले ऋणों की आवश्यकता भूमि में स्थाई सुधार करने के लिए कुँआ खुदवाने, स्थाई नालियाँ बनवाने, जानवरों के लिए गौशाला का निर्माण करने, गोदाम बनवाने, नई भूमि खरीदने, पुराने ऋणों का भुगतान करने आदि के लिए होती है। इन कार्यों में पूँजी निवेश से कृषकों को अनेक वर्षों तक निरन्तर आय प्राप्त होती है।

13.3 भारत में कृषि साख के स्रोत

भारत में किसान अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दो प्रकार के स्रोत से ऋण प्राप्त करता है–

1. गैर संस्थागत स्रोत तथा
2. संस्थागत स्त्रोत

गैर संस्थागत स्रोत में साहूकार, व्यापारी एवं भू–स्वामी आदि को सम्मिलित किया जाता है। संस्थागत स्रोतों में सरकार, सहकारी समितियों तथा वाणिज्यिक बैंकों आदि को सम्मिलित किया जाता है।

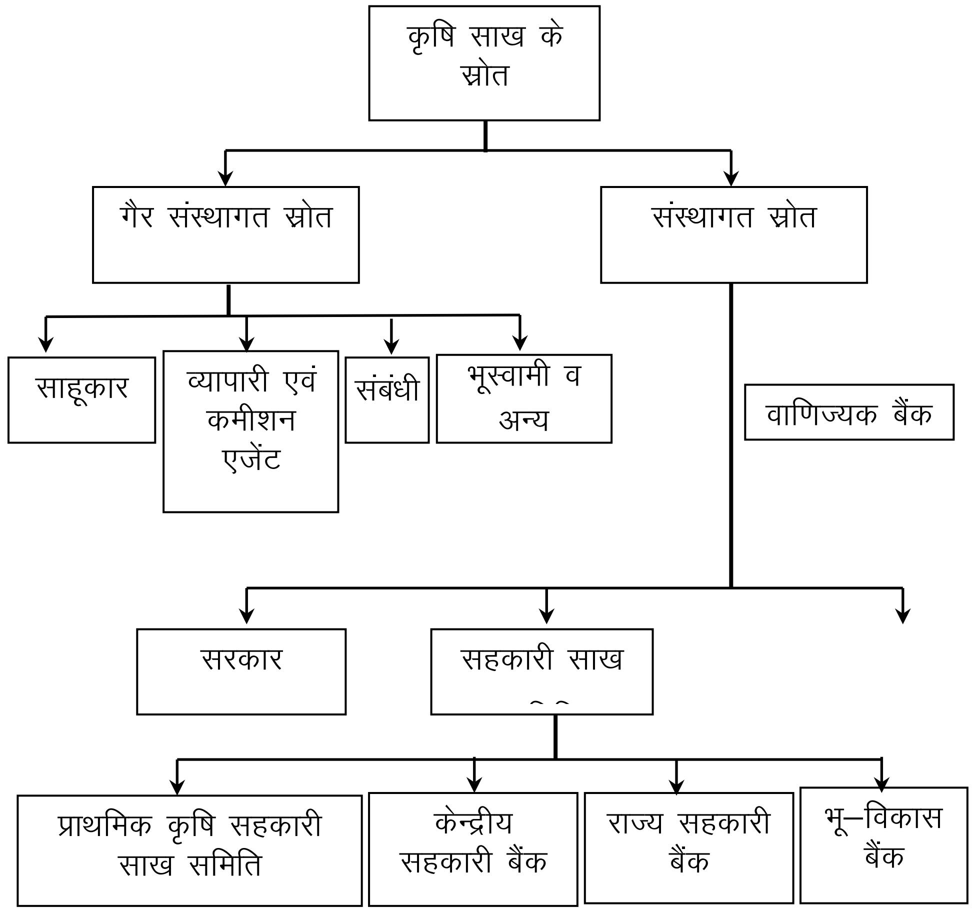

गैर–संस्थानात्मक स्रोत – कृषि वित्त के गैर संस्थागत स्रोत में साहूकार, देशी बैंकर्स व भू–स्वामियों को सम्मिलित किया जाता हैं। ये लोग गाँवों में किसानों की अधिकांश वित्त सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। ये व्यक्ति कृषकों को प्रायः अल्पकालीन ऋण देते हैं।

संस्थागत स्रोत – कृषि साख के संस्थागत स्रोतों में विभिन्न वित्तीय संस्थाओं, सहकारी समितियों व सरकार आदि को सम्मिलित किया जाता है। वर्तमान में लगभग 65 प्रतिशत ऋण संस्थागत स्रोतों द्वारा उपलब्ध कराए जाते हैं।

13.4 सरकार

कृषि साख की व्यवस्था राज्य तथा केन्द्रीय सरकार भी करती है। राज्य द्वारा कृषि भूमि सुधार ऋण अधिनियम, 1883 तथा कृषक ऋण अधिनियम 1884 के अन्तर्गत किसानों को तकावी (ऋण) दिये जाते हैं। तकावी ऋणों का प्रारम्भ अकाल अथवा बाढ़ आदि के उत्पन्न संकट (विपदा) की स्थिति में सहायता देने के लिए किया गया था, परन्तु धीरे–धीरे यह सरकार का नियमित कार्य बन गया। अब सरकार प्रतिवर्श सम्बन्धित विपदा से हुई हानि का आकलन विभिन्न राजस्व अधिकारियों से करवाकर हानि की क्षतिपूर्ति करती है।

13.5 सहकारी साख समितियां और सहकारी बैंक

कृषि साख को, कृषि में निवेश किये जाने वाले धन की राशि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो कृषि उत्पादकता में वृद्धि में सहायक होती है। उत्पादकता वृद्धि के लिए प्राप्त किया गया ऋण एवं उपभोग ऋण कृषकों की दक्षता में वृद्धि करने में सहायक होते हैं, किन्तु कृषकों पर ऋण का इतना अधिक भार रहा है कहा जाता है कि, भारतीय किसान ऋणी के रूप में जन्म लेता है, अपने जीवन पर ऋणी रहता है और ऋणी रह कर ही मर जाता है।

सहकारी समिति लोगों का ऐसा संघ है जो अपने पारस्परिक लाभ (सामाजिक, आर्थिक) के लिए स्वेच्छापूर्वक सहयोग करते हैं। प्रथम सहकारी अधिनियम – क्रेडिट कोपरेटिव सोसायटी एक्ट, 1904 केवल प्राथमिक कृषि साख सहकारी समितियों के संगठन के लिए था। सहकारिता आन्दोलन का उद्देश्य किसान को आर्थिक बुराइयों और नैतिक पतन से बचाना है और इसके साथ–साथ आपसी सहायता के महत्त्व पर जोर देना है। भारत में सहकारिता आन्दोलन की शुरुआत सहकारी साख समिति अधिनियम के पास होने के साथ हुई मानी जाती है। दिसम्बर 1954 में ग्रामीण साख सर्वेक्षण रिर्पोट का प्रकाशन देश में सहकारिता आन्दोलन की एक ऐतिहासिक घटना थी । रिपोर्ट में दी गयी विभिन्न सिफारशें भारत सरकार ने स्वीकार की और राज्य सरकारों को निर्देश दिये गये कि वे योजना अवधि में सहकारिता आंदोलन के विकास के लिये प्रस्ताव तैयार करें। दूसरी पंच वर्षीय योजना में तीन मूलभूत सिद्धातों के आधार पर एक समन्वित ग्रामीण साख दांचा स्थापित करने पर विचार किया गया। ये तीन सिद्धांत थे –

(i) विभिन्न स्तरों पर राज्य की सहभागिता

(ii) साख और आर्थिक क्रियाओं (विशेष रूप से विपणन और प्रक्रमण) में पूर्ण समन्वय, और

(iii) ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं के प्रति जागरूक प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा प्रशासन ।

भारत में मध्यावधि और अल्पावधि सहकारी साख संरचना तीन स्तरीय हैः

(1) गाँव के स्तर पर प्राथमिक कृषि सहकारी साख समितियाँ हैं,

(2) जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकरी बैंक हैं, और

(3) राज्य स्तर पर शिखर संस्था के रूप में राज्य सहकारी बैंक हैं। राज्य सहकारी बैंक जिला स्तर के संलग्न सहकारी बैंकों को कोष प्रदान करता है और ये बैंक ग्रामीण स्तर पर सहकारी साख समितियों को ऋण देते हैं।

सहकारी साख संरचना का दूसरा पक्ष दीर्घकालीन ऋण प्रदान करता है और यह दो स्तरीय प्रणाली हैः

(1) तालुका स्तर पर प्राथमिक भू विकास बैंक, और

(2) राज्य स्तर पर केन्द्रीय विकास बैंक। आइये अब इनका विस्तार से अध्ययन करें।

13.5.1 प्राथमिक कृषि सहकारी साख समितियाँ

प्राथमिक कृषि सहकारी साख समिति सहकारी ऋण संरचना में एक प्रमुख आधार का निर्माण करते हैं। इनकी स्थापना कृषि क्षेत्र की अल्पकालीन ऋणों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए की गई है। एक गांव अथवा क्षेत्र के कोई भी

कम–से–कम दस व्यक्ति मिलकर एक प्राथमिक साख समिति का निर्माण कर सकते हैं। ये समितियाँ प्राथमिक कृषि साख समितियाँ भी कहलाती हैं तथा सामान्यतया ये उत्पादक कार्यों के लिए अल्पकालीन (एक वर्ष के लिए) ऋण देती है, परन्तु विशेष परिस्थितियों में इनकी अवधि तीन वर्ष तक के लिए बढ़ाई जा सकती है। इसका कार्य क्षेत्र प्रायः एक गांव या गांवों का एक समूह होता है।

प्राथमिक कृषि साख समिति को देश के ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक व आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है। ये कृषि में प्रयोग की जाने वाली और उपभोग वस्तुएं सप्लाई करने के अलावा वित्त प्रदान करने के लिए लघु बैंक के रूप में भी कार्य करती हैं। ये किसानों के अनाज का परिरक्षण करने व स्टोर करने के लिये गोदामों की सुविधाएं भी प्रदान करती हैं । सहकारी वित्त प्रणाली के संघीय ढांचे के अन्तर्गत केन्द्रीय सहकारी बैंक और राज्य सहकारी बैंक जैसी ऊंचे स्तर की संस्थाओं द्वारा प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों को अनुदान व अभिदान के रूप में पर्याप्त सहायता देनी होती है।

13.5.2 केन्द्रीय सहकारी बैंक

केंद्रीय सहकारी बैंक राज्य में कृषि सहकारी ऋण प्रणाली की संरचना में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। इन्हें जिला सहकारी बैंक भी कहा जाता है, इनका कार्य क्षेत्र एक जिले तक ही सीमित रहता है। केन्द्रीय सहकारी बैंकों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–(1) सहकारी बैंकिंग संघ, तथा (2) मिश्रित केन्द्रीय सहकारी बैंक। सहकारी बैंकिंग संघ की सदस्यता सिर्फ सहकारी समितियों को ही प्राप्त होती हैं, जबकि मिश्रित सहकारी बैंकों के सदस्य सहकारी समितियाँ तथा व्यक्ति दोनों ही हो सकते हैं। भारत के आवश्यकतानुसार ऋण प्रदान करते हैं, जिससे कि ये समितियाँ कृषकों तथा सदस्यों को समुचित आर्थिक सहायता उपलब्ध करा सके। केन्द्रीय सहकारी बैंक साधारणतया जिला मुख्यालय में या जिलों के अन्य महत्त्वपूर्ण शहरों में स्थित होते हैं।

केन्द्रीय सहकारी बैंक को अपनी कार्यशील पूंजी के लिये कोष दो स्रोतों से प्राप्त होते हैं :

(1) अपनी पूंजी (जिसमें पूजी व कोष आते हैं) और

(2) उधार ली गयी पूंजी (जिसमें जमाएं व ऋण आते हैं) ।

केन्द्रीय सहकारी बैंक अपनी चालू पूंजी में राज्य सहकारी बैंक से ऋण लेकर वृद्धि करते हैं तथा सहकारी समितियों को ऋण देते हैं। इनके ऋण की अवधि भी एक वर्ष से तीन वर्ष तक की हो सकती है।

केन्द्रीय सहकारी बैंकों का कार्य प्राथमिक साख समितियों को वित्त प्रदान करना है। भारत में जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक सहकारी साख संरचना की श्रृंखला में एक कड़ी हैं। इस प्रकार अधिकांश केन्द्रीय बैंक, राज्य सहकारी बैंक तथा प्राथमिक ऋण समितियों के मध्य अन्तर्वर्ती का कार्य करते हैं। सहकारी साख कार्यक्रमों की प्रगति मुख्यतया इन बैंकों की शक्ति पर निर्भर करती हैं क्योंकि मौसमी कृषि कार्यों और कृषि उत्पाद के विपणन के वित्त प्रबंध के लिये भारतीय रिजर्व बैंक से उपलब्ध सभी कोष इन बैंकों को इनकी स्थिरता और सामर्थ्य के आधार पर दिये जाते हैं।

13.5.3 राज्य सहकारी बैंक

राज्य सहकारी बैंक सहकारी बैंकों के सबसे बड़े रूप हैं। इस बैंक को राज्य का शीर्ष सहकारी बैंक भी कहते हैं। राज्य सहकारी बैंक राज्य स्तर पर काम करते हैं। कुछ राज्य सहकारी बैंक बहु राज्यों में काम करते हैं। यह बैंक राज्य के केन्द्रीय सहकारी बैंकों को ऋण देता है, और उनके कार्यों का नियंत्रण भी करता है। मेकलन समिति ने इन बैंकों की स्थापना पर जोर दिया। इस समिति ने एक ऐसे प्रान्तीय सहकारी बैंक के निर्माण की सिफारिश की जो शहरी वर्गों से जमाएं प्राप्त कर सके और जिला केन्द्रीय बैंकों के माध्यम से इसे कृषि क्षेत्र में प्रयोग कर सके। यह बैंक रिजर्व बैंक, केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा प्राथमिक सहकारी समितियों के मध्य एक महत्वपूर्ण वित्तीय कड़ी का कार्य सम्पन्न करता है।

राज्य सहकारी बैंक प्रत्येक राज्य में केन्द्रीय सहकारी बैंकों को वित्त प्रदान करते हैं और उनकी कार्यप्रणाली में समन्वय और उन पर नियंत्रण करते हैं । ये इन केन्द्रीय सहकारी बैंकों की कार्यशील पूंजी के आधिक्य और कमी के समाशोधन गृहों के रूप में कार्य करते हैं। ये सामान्य मुद्रा बाजार और गांवों में प्राथमिक सहकारी समितियों के बीच एक कड़ी के रुप में भी कार्य करते हैं । साधारणतया ये शिखर बैंक प्राथमिक समितियों के साथ प्रत्यक्ष रुप से लेन–देन नहीं करते बल्कि यह कार्य केन्द्रीय सहकारी बैंकों के माध्यम से किया जाता है। लेकिन जहां केन्द्रीय सहकारी बैंक विकसित रुप में न हों वहां ये प्राथमिक समितियों के साथ प्रत्यक्ष लेनदेन करते हैं।

इन शिखर बैंकों के कार्यों में केन्द्रीय सहकारी बैंकों को वित्तीय सहायता देना और उनके माध्यम से प्राथमिक समितियों को सहायता देना शामिल है। सामान्य बैंकिंग क्रियाओं के अतिरिक्त इन्होंने अन्य सहकारी क्रियाओं में भी दिलचस्पी ली है, . जैसे कि विभिन्न सहकारी संगठनों को एक साथ लाने में मदद करना, आवश्यक वस्तुओं की सप्लाई के लिये वित्त प्रबन्ध और उनका वितरण आदि करना।

13.5.4 भू–विकास बैंक

किसानों की दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भूमि विकास बैंक की स्थापना की गई है। ये बैंक किसानों को भूमि खरीदने, भूमि पर स्थाई सुधार करने अथवा पुराने ऋणों का भुगतान करने आदि के लिए दीर्घकालीन ऋणों की व्यवस्था करते हैं।

यह बैंक प्रत्येक राज्य में दो स्तर पर कार्य करते है – प्रथम, भूमि विकास बैंक राज्य स्तर पर कार्य करते है। बैंक राज्य सरकार द्वारा सहायता प्राप्त करते है। द्रितीय, राज्य भूमि विकास बैंक के सहायक बैंक के रूप में प्रारंभिक भूमि विकास बैंक होते है। साधारण सहकारी समितियां और सहकारी बैंक अपने सदस्यों को दीर्घकालीन ऋण नहीं देते क्योंकि सहकारी ऋण के नियम की यह अपेक्षा है कि ऋण सदस्यों की व्यक्तिगत साख पर दिये जायें। लेकिन दीर्घावधि ऋण केवल क्यक्तिगत जमानत पर नहीं दिये जा सकते । इसलिये भू–विकास बैंक उन काश्तकारों को ऋण देता है जिनके पास जमानत के लिये भूमि है।

ये बैंक अपने सदस्यों को दीर्घकालीन ऋण उनके ऋणों को कम करने के लिये, भूमि पर स्थायी सुधार लाने के लिये और भूमि खरीदने के लिये देते हैं।

बोध प्रश्न 'क'

1. भारत में सहकारी साख संरचना के तीन स्तर हैं :
2. भू–विकास बैंक अपने सदस्यों को जिन कार्यों के लिये ऋण देते हैं वे हैं।

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

3. केन्द्रीय सहकरी बैंक अपनी कार्यशील पूंजी के लिये दो स्रोतों से कोष प्राप्त करते हैं :

   (i) . . . . पूंजी जिसमें पूंजी व रिजर्व आते हैं।

   (ii) . . . . उधार ली गयी पंजी जिसमें . . . . और . . . . आते हैं।

4. रिक्त स्थानों को भरिये

   (i) संस्थागत साख प्रणाली शुरू होने से पहले ग्रामीण साख का मुख्य स्रोत . . . . .था।

   (ii) बीज और उर्वरक खरीदने के लिये जिस ऋण की आवश्यकता होती है वह . . . . ऋण होता है।

   (iii) दीर्धकालीन ऋण की अदायगी . . . . वर्षों में की जा सकती है।

   (iv) सहकारिता आंदोलन के शिखर पर . . . . है।

13.6 व्यापारिक बैंक

सन् 1968 तक व्यापारिक बैंक कृषि में कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं देता था। लेकिन 14 व्यापारिक बैंकों का सन् जुलाई 1969 में 6 बैंकों का अप्रैल 1980 में राष्ट्रीयकरण हो जाने के पश्चात् इन बैंकों के द्वारा अब कृषि वित्त में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया जाने लगा हैं। यद्यपि कृषि और उससे सम्बन्धित क्रियाओं का भारत की राष्ट्रीय आय में योगदान लगभग 17–18 प्रतिशत है और ये लगभग 75% जनसख्यां को रोजगार प्रदान करती हैं, फिर भी 1955 तक व्यापारिक बैंकों को कृ षि विकास में योगदान अपने कुल साधनों का 1% भी नहीं था। 1969 में व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् स्थिति में परिवर्तन आया है।

बैंकों की कृषि वित्त में वास्तविक सहभागिता इन पर सामाजिक नियंत्रण के साथ शुरू हुई। अक्टूबर, 1969 में प्रोफेसर डी.आर. गाडगिल की अध्यक्षता में नियुक्त किये गये अध्ययन दल और एफ.के.एफरू नारीमन की अध्यक्षता में 1969 में

भारतीय रिर्जव बैंक द्वारा स्थापित बैंकरों की समिति ने उन जिलों में बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करने के लिये जहां ये सुविधाएं नहीं थी, क्षेत्रीय दृष्टिकोण अपनाने की सिफारिश की। इसके फलस्वरूप भारतीय रिजर्व बैंक ने दिसम्बर 1969 में लीड बैंक स्कीम शुरू की। इस योजना के अन्तर्गत देश के विभिन्न जिलों को सभी सार्वजनिक क्षेत्रक के बैंकों और तीन निजी क्षेत्रक के बैंकों में बांट दिया गया। बैंकों को अपने–अपने जिलों के लिये विकास कार्यक्रम बनाने की जिम्मेदारी सौंपी गयी। इस योजना ने व्यापारिक बैंकों को ग्रामीण क्षेत्रों में लाकर कृषि वित्त में उन्हें सहभागी बना दिया। जुलाई 1969 में 14 प्रमुख बैकों के राष्ट्रीयकरण ने बैंकों के कृषि वित्त में सहयोग को और तेज कर दिया।

व्यापारिक बैंकों को कृषि वित्त से जोड़ने के लिये जिम्मेवार तीन मुख्य बातों (सामाजिक नियंत्रण, लीड बैंक स्कीम और बैंकों का राष्ट्रीयकरण) के अलावा इन बैंकों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में खोली गयी शाखाओं की संख्या में तीव्र वृद्धि ने भी कृषि तथा संबंधित क्रियाओं के विकास में योगदान दिया।

व्यापारिक बैंकों के कृषि वित्त में भाग लेने में तीन अवस्थाएं सामने आती हैं –

- पहली अवस्था जो लगभग 1952 से 1967 तक रही, वह अवधि थी जब बैंकर यह सोच रहे थे कि कृषि वित्त उनका काम नहीं है और इस जिम्मेदारी से शीघ्र ही उन्हें मुक्ति मिल जाएगी। अतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि इन वर्षों में कृषि वित्त का विकास अनियमित रहा।

- दूसरी अवस्था की अवधि 1967 से 1975 तक रही । इस अवधि में बैंकों ने यह महसूस किया कृषि वित्त व्यवस्था तो स्थायी तौर पर रहेगी । ये वे वर्ष थे जब बैंकों ने विभिन्न योजनाएं बनाकर प्रयोग किये और कृषि वित्त को बढ़ाने के लिये कार्य किये । इस अवधि में व्यापारिक बैंकों ने कृषि वित्त में महत्वपूर्ण अनुभव प्राप्त किये। इन्होंने अपने ग्राहकों के बारे में और क्षेत्रों के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त की जिससे इन्हें कृषि वित्त के बारे में एक उपयुक्त नीति अपनाने में सहायता मिली।

- तीसरी अवस्था 1975 से शुरू हुई। इसमें बैंकों को यह बोध हुआ कि केवल उनके प्रयत्न पर्याप्त नहीं हैं। उन्हें इस कार्य के आकार का भी ज्ञान हुआ और उन्होंने स्वीकार किया कि अन्य एजेन्सियों से सहयोग आवश्यक है। अब ये कृषि वित्त में किसान सेवा समितियों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों जैसे संगठनों के साथ मिलकर भी प्रयोग कर रहे हैं।

व्यापारिक बैंकों द्वारा अल्पकालीन एवं मध्यकालीन दोनों प्रकार के ऋण उपलब्ध कराये जाते हैं। व्यापारिक बैंक न केवल कृषकों को उर्वरक खरीदने, पंपिंग सेट खरीदने एवं अन्य उपकरण खरीदने के लिये ऋण दे रहे हैं वरन् उर्वरक एवं विभिन्न कृषि यंत्रों के कारखानों के निर्माण हेतु ऋण दे रहे है जो परोक्षतः कृषि उत्पादन को प्रभावित करता है।

13.6.1 कृषि वित्त के प्रकार

कृषि वित्त ग्रामीण विकास एवं कृषि संबंधित गतिविधियों से जुड़े कार्यों के सम्पादन से सम्बंधित ऐसी वित्त व्यवस्था है जो उसके आपूर्ति, थोक, वितरण, प्रसंस्करण और विपणन के वित्तपोषण के लिए समर्पित एक विभाग के रूप में जाना जाता है।

व्यापारिक बैंक सभी कृषि कार्यों व उससे सम्बन्धित कार्यों के लिये ऋण प्रदान करते हैं। मौटे तौर पर इन्हें दो भागों में बांटा जा सकता है –

(1) **प्रत्यक्ष अग्रिम और**

(2) **अप्रत्यक्ष अग्रिम ।**

(1) प्रत्यक्ष कृषि साख : ये अल्पावधि, मध्यावधि या दीर्घावधि के लिये ऋण होते हैं । अल्पावधि ऋण (i) फसल ऋण या (ii) उत्पादन ऋण के रूप में हो सकते हैं। फसल ऋण वार्षिक फसलों की लागत का वित्त प्रबन्ध करने के लिये होते हैं। ये फसलें अनाज, (जैसे गेहूं, चावल आदि), तिलहन (जैसे मूंगफली आदि) और नकद फसलें (जैसे गन्ना, मिर्च, तम्बाकू, कपास आदि) हैं। उत्पादन ऋण बारहमासी बागान फसलों जैसे चाय, काफी, इलायची आदि की वार्षिक अनुरक्षण लागत को पूरा करने के लिये होते हैं।

यद्यपि अल्पावधि साख मुख्यतया ऋणों के रूप में होती है फिर भी कुछ स्थितियों में उत्पादन साख भी नकद साख सीमा के रूप में दी जाती है। बैंकों द्वारा दी गयी अल्पावधि साख सहायता में फसलों की कटाई के बाद एक या दो मास के भीतर अदायगी की शर्त होती है। उधार की वसूली सुनिश्चित करने के लिये और कोशोंका प्रवाह बनाये रखने के लिये बैंक जहां भी संभव हो वहां साधारणतया एक ताल–मेल (tie-up) व्यवस्था प्रणाली अपनाते हैं उदाहरण के लिये गन्ना उगाने वालों को दिये गये ऋण की स्थिति में बहुधा चीनी मिलों के साथ ताल–मेल व्यवस्था की जाती है और काफी बोर्ड के साथ काफी उगाने वालों के दिये गये ऋण के सम्बन्ध में।

मध्यावधि और दीर्घावधि ऋण विभिन्न कृषि विकास कार्यक्रमों की निवेश लागतों को पूरा करने के लिये दिये जाते हैं। ये कार्यक्रम पूंजी प्रधान होते हैं और इनसे लाभ बहुधा तीन वर्षों के बाद ही मिलना शुरू होता है। ऐसे ऋण की अदायगी 3 से 15 वर्षों में करनी होती है और यह अवधि परियोजना की प्रकृति व आकार तथा उनसे होने वाली नकदी प्राप्ति पर निर्भर करती है। आर्थिक व तकनीकी रूप में व्यवहार्य ऐसी कृषि परियोजनाओं में सभी प्रकार के निवेश बैंक साख की परिधि में आते हैं।

सावधि ऋणों का महत्त्व बढ़ता जा रहा है क्योंकि और अधिक क्षेत्र पर खेती संभावना तो बहुत सीमित है, इसलिये मौजूदा कृषि योग्य भूमि को ही और अधिक उपजाऊ बनाने की आवश्यकता है। लेकिन कृषि की दीर्घकालीन ऋण की आवश्यकताएं बहुत अधिक है और अकेले व्यापारिक बैंक ही इन्हें पूरा नहीं कर सकते। व्यापारिक बैंकों द्वारा दिये जाने वाले सावधि ऋणों में से अधिकांश के लिये राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण बैंक ने पुनर्वित्त सहायता प्रदान करके व्यापारिक बैंकों को आवश्यक प्रोत्साहन दिया है ताकि वे बड़े पैमाने पर कृषि वित्त प्रदान करें।

(2) अप्रत्यक्ष अग्रिम – अप्रत्यक्ष अग्रिम चार प्रकार के होते है : वे अग्रिम जो प्रत्यक्ष कृषि साख के लिये निर्धारित किये गये मापदण्ड को पूरा करते हैं, लेकिन जो अन्य एजेन्सियों (जैसे किसान सेवा समितियों, प्राथमिक कृषि साख समितियों आदि) के जरिये दिये जाते हैं।

1. विद्युतीकरण के लिये राज्य बिजली बोर्डो को दिये गये अग्रिम जिससे कि कृषि के लिये पम्पसेटों को बिजली मिलती रहे।

2. उर्वरक व्यापार करने वालों को दी गयी साख जिससे कि वे अपने कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।

3. सहकारी दुग्ध समितियों, भेड़ पालन सहकारी समितियों आदि को दिये गये अग्रिम, जो अपने सदस्यों को पशु खरीदने के लिए ऋण देती हैं।

13.6.2 ग्रामीण साख के स्रोत के रूप में व्यापारिक बैंकी की सीमाएं

पिछले दो दशकों में व्यापारिक बैंकों ने ग्रामीण क्षेत्र में बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करने का कार्य काफी तत्परता से किया है। लेकिन इस प्रक्रिया में व्यापारिक बैंकों को बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिनमें से कुछ पर नीचे विचार करेंगे :

1. व्यापारिक बैंकों ने शायद जनता को कृषि अग्रिम प्रदान करने की लागत के बारे में साफ–साफ.जानकारी नहीं दी। ये बैंक ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाएं खोलने और उन्हें चलाने से भारी हानि उठा रहे हैं। कृषि अग्रिम देने के लिए कर्मचारियों .. को प्रशिक्षण देकर उन्हें ग्रामीण केन्द्रों में भेजने की समस्या भी है। पिछले बीस वर्षों में इनके बहुत से अधिकारी हेरा–फेरी या लापरवाही के लिए दोषी पाये गये।

2. देश के 5.75 लाख गाँवों में से व्यापारिक बैंकों की क्रियाएं केवल 45,000 गाँवों तक ही फैल सकीं।

3. अपनी ग्राम अंगीकरण नीति को लागू करने में भी ये काफी चयनात्मक दृ ष्टिकोण अपनाते हैं। इन्होंने उन गाँवों का अंगीकरण नहीं किया, जो अपेक्षाकृत अधिक पिछड़े हुए हैं और जहाँ तुरन्त सहायता देने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त उन किसानों की ओर भी अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया, जिन्हें सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं और जो भारत की कृषि जनसंख्या का लगभग 75% हैं।

4. यद्यपि छोटे और सीमान्त किसान व्यापारिक बैंकों की लक्ष्य जनसंख्या (Target Population) सूची में हैं, लेकिन अग्रिमों पर इनसे जो ब्याज दर ली जाती है, वह बहुत ऊँची है। बहुत से व्यापारिक बैंकों में अग्रिम देने की वही पुरानी प्रणाली जारी है, जिसके अंतर्गत किसानों को कानूनी औपचारिकताएं पूरी करने में बहुत समय लगाना पड़ता है और अनावश्यक व्यय करना पड़ता है।

इस प्रकार भारत में अभी भी ग्रामीण साख की मांग और पूर्ति में अन्तर बना हुआ है। वर्तमान कार्यप्रणाली की कमियों और समस्या को ध्यान में रखते हुए यथार्थवादी नियोजन की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न 'ख'

1. ग्रामीण साख के स्रोत के रूप में व्यापारिक बैंकी की क्या सीमाएं हैं?

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

2. बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत

(i) कृषि वित्त में व्यापारिक बैंकों का योगदान 1969 तक बहुत अधिक था।

(ii) लीड बैंकों को अपने–अपने जिलों के लिए विकास कार्यक्रम बनाने की जिम्मेवारी सौंपी गयी है।

(iii) व्यापारिक बैंक कृषि साख के लिए अपने कोशोंको किसान सेवा समितियों के जरिये भी देते हैं।

(iv) अग्रिमों पर व्यापारिक बैंकों द्वारा ली जाने वाली ब्याज दरें बहुत कम हैं।

(v) रिक्त स्थानों को भरिए :

(vi) उत्पादन ऋणों की आवश्यकता . . . . .फसलों की अनुरक्षण लागत पूरी करने के लिए होती है।

(vii) . . . . .में उरवर्क के व्यापारियों को अपनी कार्यशील पूंजी की आवश्यकता को पूरी करने के लिए दी जाने वाली साख आती है।

(viii) व्यापारिक बैंकों का ग्राम अंगीकरण कार्यक्रम को लागू करने में काफी . . . . दृष्टिकोण रहा है।

13.7 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को एक अध्यादेश के प्रावधानों के तहत सितंबर 1975 और आर.आर.बी. अधिनियम, 1976 को पारित कर दिया और स्थापित किया गया था। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (आर.आर.बी.) छोटे और सीमांत किसानों, खेतिहर मजदूरों, कारीगरों और ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे उद्यमियों को ऋण और अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराने का उद्देश्य रखता है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक स्थानीय स्तर बैकिंग संगठन है जो भारत के विविध राज्यों मे बैकिंग का काम करता है। वे मुख्य रूप से बुनियादी बैकिंग और वित्तीय सेवाओं के साथ भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में सेवा करने के लिए एक उद्देश्य के साथ बनाया गया है।

बैंकिंग कमीशन ने 1972 में सरकार को दी गयी अपनी रिपोर्ट में ग्रामीण बैंकों की स्थापना की सिफारिश की थी। इन ग्रामीण बैंकों को प्राथमिक बैंकिंग संस्थाएं बताया गया था और प्रत्येक ग्रामीण बैंक को गांवों के एक संमूह में 5,000 से 20,000 लोगों को सेवाएं प्रदान करनी थी। ग्रामीण ऋणग्रस्तता को समाप्त करने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए सरकार क्षेत्रीय बैंकों की स्थापना जल्दी से जल्दी करना चाहती थी। इसीलिए 26 सितम्बर, 1975 को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अध्यादेश जारी किया गया और तभी से यह सारे देश में लागू हो गया।

अध्यादेश का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में, विशेषतया छोटे तथा सीमांत किसानों, कृषि श्रमिकों, कारीगरों और छोटे उद्यमकर्ताओं को साख व अन्य सुविधाओं का प्रावधान करने के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना करना था । केन्द्रीय सरकार किसी भी बैंक, प्रायः उस क्षेत्र को लीड बैंक (जिसे प्रवर्तक बैंक कहते हैं), की प्रार्थना पर किसी राज्य या केन्द्र शासित प्रदेश में एक या अधिक ग्रामीण बैंक स्थापित कर सकती है। प्रत्येक ग्रामीण बैंक अपने स्थानीय सीमा क्षेत्र

में कार्य करेगा। यदि आवश्यक हो तो ग्रामीण बैंक किसी भी ऐसे स्थान पर जो सरकार द्वारा घोषित किया गया हो, शाखाएं या एजेंसियां भी स्थापित कर सकता है।

प्रवर्तक बैंक कई तरह से ग्रामीण बैंक की सहायता करेगा । यह ग्रामीण बैंक की शेयर पूंजी के लिए अभिदान करेगा, इसकी स्थापना में सहायता देगा, और इसके कार्यकाल की शुरू की अवधि में इसके कर्मचारियों की नियुक्ति व प्रशिक्षण में सहायता देगा। अध्यादेश के अनुसार प्रत्येक ग्रामीण बैंक की अधिकृत पूंजी 1 करोड़ रु. होगी और निर्गमित पूंजी 25 लाख रु. होगी । निर्गमित पूंजी का 50% केन्द्रीय सरकार द्वारा, 15% सम्बद्ध राज्य सरकार द्वारा और 35% प्रवर्तक बैंक द्वारा अभिदत्त की जाएगी। केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति से रिजर्व बैंक और प्रवर्तित बैंक से सलाह करके अधिकृत और निर्गमित पूंजी को बढ़ाने का भी प्रावधान है।

ग्रामीण बैंकों का संचालन व प्रबंध एक निदेशक मंडल करता है। इस मंडल को व्यापारिक नियमों के आधार पर कार्य करना चाहिए और सार्वजनिक हित का उचित ध्यान रखना चाहिए । ग्रामीण बैंक के निदेशक मंडल का अध्यक्ष व अधिक से अधिक तीन सदस्य केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं, अधिक से अधिक दो सदस्य सम्बद्ध राज्य सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं और अधिक से अधिक तीन सदस्य प्रवर्तित बैंक द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। ग्रामीण बैंकों द्वारा ली जाने वाली ब्याज दरें उस राज्य में सहकारी समितियों द्वारा ली जाने वाली ब्याज दरों से अधिक नहीं होंगी ।

2 अक्तूबर, 1975 को पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा में पहले पांच क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक स्थापित किये गये। 1985 के अन्त तक 337 जिलों में 137 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक थे, जिनकी 12,000 शाखाएं थीं । इन बैंकों द्वारा एकत्रित कुल जमाएं 1,159 करोड़ रु. थी और दी गयी कुल अग्रिम राशि 1,333 करोड़ रु. थी।

यह बताना जरूरी है कि जून 1977 में भारतीय रिजर्व बैंक ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के कार्य का पुनरवलोकन करने के लिए दत्तावाला समिति बनायी, जिसने इनको जारी रखने और इनका विस्तार करने का जोरदार समर्थन किया। समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, क्योंकि ये ग्रामीण क्षेत्रों में साख की कमी को उत्तरोत्तर पूरा करने में बहुत उपयुक्त हैं। समिति का मत था कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा अपनी जिम्मेवारी को पूरा करने की क्षमता को ध्यान में रखते हुए व्यापारिक बैंकों को इस बात के लिए राजी करना चाहिए कि उनकी ग्रामीण शाखाओं द्वारा किये जाने वाले साख व्यापार को उत्तरोत्तर इन बैंकों को सौंप दें । दत्तावाला समिति व्यापारिक बैंकों की ग्रामीण शाखाओं को पूर्णतया क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा प्रतिस्थापित करने के पक्ष में नहीं थी। लेकिन इसने यह सुझाव दिया कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को ग्रामीण साख संरचना का एक समन्वित हिस्सा बनाने की दिशा में कार्य किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) की स्थापना के बाद क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को पुनर्वित्त सुविधा (जो अब तक रिजर्व बैंक से मिलती थी) अब इस नये बैंक से मिलती है । 1984–85 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के लिए राष्ट्रीय । कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की पुनर्वित्त नीति में परिवर्तन हुआ । क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को अब तक स्वीकृत संयुक्त सीमा को दो भागों में बाँट दिया गया रू अल्पावधि सीमा और मध्यावधि सोमा । नयी नीति के अन्तर्गत जिन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने 1 जुलाई, 1984 तक पाँच वर्ष पूरे कर लिये हैं, उन्हें अल्पावधि व

मध्यावधि के अन्तर्गत पृथक् सीमाओं के लिए आवेदन देना होता है। अन्य क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अब तक स्वीकृत संयुक्त सीमा के ही योग्य हैं। 1984–85 में राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक ने 126 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को कुल 202.5 करोड़ रु. के मध्यावधि ऋण स्वीकृत किये। 30 जून, 2017 को मध्यावधि व अल्पावधि सीमाओं के अन्तर्गत दी गयी क्रमशः 325.7 करोड़ रु. और 671.7 करोड़ की राशि बकाया थी।

ग्रामीण भारत में स्थापित किये गये क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को ग्रामीण साख में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है। इन्हें कम लागत व ग्रामीण आधार वाली संस्थाओं के रूप में विकसित किया गया है । इनका कार्यक्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा होगा और इसके कर्मचारी स्थानीय लोगों में से नियुक्त किये जाएंगे, क्योंकि उन्हें स्थानीय स्थिति व भाषा का ज्ञान होगा। ये बैंक साख सुविधाएं गरीब ग्रामीणों तक पहुँचाकर उन्हें महाजनों के चंगुल से मुक्त कराने में सहायक होंगे। इन बैंकों द्वारा दिये जाने वाले ऋणों का सबसे अधिक लाभ छोटे सीमान्त किसानों, कृषि मजदूरों, कारीगरों और ग्रामीण क्षेत्रों के अन्य गरीब वर्गों को हुआ है।

यह ध्यान रखें कि लीड बैंक स्कीम और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना का प्रस्ताव एक दूसरे के पूरक हैं। अब तक लीड बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के प्रवर्तक बैंक रहे हैं, इसलिए इन बैंकों की स्थापना को ऐसी उपयुक्त संस्था के रूप में देखना चाहिए, जो उन जिलों में संस्थागत संरचना को सुदृढ़ बनाएगी, जहां वित्त प्रदान करने में लीड बैंकों से प्रमुख भूमिका निभाने की अपेक्षा की जाती है।

क्योंकि ग्रामीण बैंक अब सभी बैंकिग योग्य योजनाओं को कार्यान्वित कर रहे हैं, इसलिए यह जरूरी है कि उन सभी जिलों की, जहाँ ये कार्य कर रहे हैं, जिला परामर्श समितियों में इनके प्रतिनिधि हों । इससे लीड बैंक योजना में ग्रामीण बैंकों की भागीदारी बढ़ेगी। इसके अतिरिक्त जिलों में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक शुरू करने से बैंकिंग प्रणाली को लीड बैंक स्कीम को कार्यान्वित करने में जिन दो समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था, उन्हें दूर करने में सहायता मिलेगी। ये दो समस्याएं हैः (1) देश के दूर–दराज क्षेत्रों में बैंकिग अधिकारियों की अपर्याप्त संख्या, और (2) छोटे खातों को रखने की ऊँची लागते ।

1980 में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किये गये अध्ययनों से यह पता चलता है कि व्यापारिक बैंकों और सहकारी बैंकों की ओर से प्रतिस्पर्धा के कारण तथा सीमित क्षमता वाले क्षेत्रों में स्थित होने के कारण क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कुछ शाखाओं के लिए आर्थिक रूप से व्यवहार्य बनना संभव नहीं है। फिर भी, यह खुशी की बात है कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक गांव के गरीबों की साख आवश्यकताओं को पूरा करने के अपने मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सफलतापूर्वक प्रयत्न करते रहे हैं।

13.8 राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक

यह देश में कृषि एवं ग्रामीण विकास हेतु साख उपलब्ध करने वाली शीर्ष संस्था है। राष्ट्रीय कृषि तथा ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना 12 जुलाई, 1982 को की गई थी।

भारतीय रिजर्व बैंक ने मार्च 1979 में कृष और ग्रामीण विकास के लिये संस्थागत साख व्यवस्था का पुनर्विलोकन करने के लिये एक समिति बनायी। इस समिति ने मार्च 1981, में अपनी अन्तिम रिपोर्ट दी। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर 12 जून, 1982 को राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना की गयी।

रिजर्व बैंक की स्वयं केवल आवश्यक नियंत्रणों के कार्य करने की नीति के अनुरूप ही इस बैंक की ग्रामीण साख के लिये एक शिखर संस्था के रूप में स्थापना की गयी । यद्यपि राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक को पूरी ग्रामीण साख प्रणाली का निरीक्षण करने का कार्य सौंपा गया है लेकिन इसमें और भारतीय रिजर्व बैंक में मूलभूत सम्बन्ध रहने दिया गया है। इसकी आधी शेयर पूंजी रिजर्व बैंक द्वारा दी गयी है और रिजर्व बैंक का उप गवर्नर इसका अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है और इसके निदेशक मंडल के तीन निदेशक रिजर्व बैंक द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक ने कृषि पुनर्वित्त एवं विकास निगम (Agricultural Refinance and Development Corporation) के सारे कार्यों और रिजर्व बैंक द्वारा राज्य सहकारी बैंकों व क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को पुनर्वित्त के कार्य को अपने हाथ में ले लिया है।

नाबार्ड की चुकता पूँजी 100 करोड़ रु. में, भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक का बराबर (50:50) का योगदान था। वर्ष 1998 में इसे बढ़ाकर 1000 करोड़ रुपये कर दिया गया था। जिसमें रिजर्व बैंक का योगदान 800 करोड़ रुपये तथा केन्द्र सरकार का 200 करोड़ रुपये था।

13.8.1 कार्य

नाबार्ड का प्रयास विशिष्ट लक्ष्योन्मुखी कार्य है जिन्हें मोटे तौर पर 2 बिन्दुओं में परिलक्षित किया जा सकता है – वित्तीय तथा समन्वयी, परामर्शी और विविध कार्य। इन कार्यों के माध्यम से एक सशक्त और आर्थिक रूप से समावेशी ग्रामीण भारत का निर्माण करना है। जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लगभग हर पहलू को स्पर्श करता है। ग्रामीण बुनियादी ढांचे के निर्माण के लिए पुनर्वित्त सहायता से लेकर, जिला स्तर पर ऋण योजना तैयार करने से लेकर इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में बैंकिंग उद्योग का मार्गदर्शन और उन्हें प्रेरित करना, सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (आर.आर.बी.) के पर्यवेक्षण से लेकर उनमें स्वस्थ बैंकिंग प्रथाओं को विकसित करने में मदद करने और उन्हें सीबीएस प्लेटफॉर्म पर ले जाने तक, नई विकास योजनाओं को डिजाइन करने से लेकर भारत सरकार की विकास योजनाओं का कार्यान्वयन, हस्तशिल्प कारीगरों को प्रशिक्षण देने से लेकर उनकी बिक्री हेतु एक मंच प्रदान करने इत्यादि जैसी सेवाएँ हम देश भर में ग्रामीण क्षेत्रों से जुड़े लाखों लोगों को प्रदान करते हैं।

(क) वित्तीय कार्य : राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक का एक महत्त्वपूर्ण कार्य राज्य सहकारी बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं को उत्पादन और विपणन साख प्रदान करना है। इसमें वे पुनर्वित्त ऋण और अग्रिम आते हैं जिनकी अदायगी 18 महीने में करनी होती है। ऋणों और अग्रिमों की यह सुविधा कृषि कार्यों व फसलों के विपणन, कृषि–आगतों के विपणन और वितरण, कारीगरों और लघु उद्योगों की विपणन क्रियाओं आदि के लिये उपलब्ध है। यह बैंक स्टॉक और वचन पत्रों की जमानत पर भी ऋण दे सकता है। राज्य सहकारी बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अनुमोदित वित्तीय संस्थाओं को दिये गये अल्पावधि ऋणों को अकाल व अन्य प्राकृतिक विपदाओं की स्थिति में मध्यावधि ऋणों में परिवर्तित किया जा सकता है और उस स्थिति में इनकी अवधि 7 वर्षों से अधिक नहीं हो सकती। 18 महीने से अधिक और 7 वर्षों से कम की अवधि के मध्यावधि ऋण राज्य सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय सहकारी बैंकों को कृषि व ग्रामीण विकास और राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक द्वारा समय–समय पर निर्धारित कुछ अन्य कार्यों के लिये दिये जाते हैं। यह बैंक कृषि और ग्रामीण

विकास में लगी किसी भी संस्था की शेयर पूंजी के लिये अभिदान या उसके शेयरों का क्रय विक्रय या उसकी प्रतिभूतियों में निवेश कर सकता है।

कृषि और ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने के लिये राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक भूविकास बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, व्यापारिक बैंकों, राज्य सहकारी बैंकों, और अन्य और अन्य वित्तीय संस्थाओं को दीर्घावधि ऋण व अग्रिम भी देता। है। इसके अतिरिक्त यह बैंक राष्ट्रीय ग्रामीण साख (दीर्धावधि कार्य) कोष से राज्य सरकारों को 20 वर्ष तक की अवधि के लिये ऋण व अग्रिम दे सकता है जिससे कि वे सहकारी साख समितियों की शेयर पूंजी के लिये प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अभिदान कर।

(ख) समन्वयी, परामर्शी और विविध कार्य : विभिन्न प्रकार के ऋणों और अग्रिमों का स्रोत होने के अतिरिक्त राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक को ग्रामीण साख में । कार्यरत विभिन्न संस्थाओं के कार्यों में समन्वय करने का काम भी सौंपा गया है। इसे कृषि व ग्रामीण विकास की समस्याओं का अध्ययन करने के लिये विशेषज्ञ भी रखने होते हैं।

यह कृषि व ग्रामीण विकास में अनुसंधान को बढ़ावा देने और उसमें सहायता करने के लिये एक अनुसंधान व विकास कोष भी रखता है। यह अनुसंधान व प्रशिक्षण सुविधाओं के लिये प्रावधान करता है और इस कार्य के लिये अनुदान भी देता है। राष्ट्रीय कृषि एवं विकास बैंक का केन्द्रीय बोर्ड एक 'रक्षित कोष' या किसी अन्य कोष का निर्माण कर सकता है।

यह सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का निरीक्षण भी करता है। ये बैंक जब नयी शाखाएं खोलना चाहते हैं तो इन्हें इसके लिये आवेदन पत्र राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक को देना होता है और यह बैंक अपनी टिप्पणी सहित उसे भारतीय रिजर्व बैंक के पास पहुंचाता है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को बैंकिंग विनियमन अधिनियम की विभिन्न धाराओं के अन्तर्गत भारतीय रिजर्व बैंक को जो विवरण देने होते हैं उनकी प्रतिलिपि राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक को भी देनी होती है। उसी प्रकार सहकारी बैंकों भी इस विवरण की प्रतिनिधि इस बैंक को भेजनी होती है।

13.8.2 प्रगति

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की वित्तीय स्थिति की बात की जाये तो सन 2017 में कुल पूंजी 6700 करोड़ रूपया थी तथा कुल शुद्ध संपत्ति 344757 करोड़ रूपया आंकी गई थी।

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक ने शुरू से ही ग्रामीण क्षेत्र में साख के प्रवाह को बढ़ाने के लिये और खास तौर से छोटे और सीमान्त किसानों को अधिक ऋण उपलब्ध कराने के लिये बहुत से उपाय संस्थागत ग्रामीण साख संरचना को सृढ़ बनाकर किया।

हाल ही में इसे ऋण देने की शर्तों को उदार बनाया ताकि ग्रामीण गैर–कृषि क्षेत्रक में साख का प्रवाह बढ़ाया जा सके। व्यापारिक बैंकों, सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को दी जाने वाली पुनर्वित्त सहायता की मात्रा को बैंक ऋणों का 90% से बढ़ाकर 100% कर दिया गया।

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक ने कृषि व गैर–कृषि क्षेत्रों में संवृद्धि लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता की है। इसके कार्यो व उद्देश्यों तथा राष्ट्रीय उद्देश्यों, जैसे कि संतुलित क्षेत्रीय संवृद्धि, ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर वर्गों की आर्थिक स्थिति में सुधार आदि के बीच सामन्जस्य स्थापित किया गया ।

इसके कृषि साख पर बहुत जोर दिया, जिसके फलस्वरूप, इसकी कृषि व उससे सम्बन्धित क्रियाओं को दी गयी सहायता में तीव्र वृद्धि हुई । इसने गहन ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिये और गरीबी हटाने वाले कार्यक्रमों के लिये दिये जाने वाले ऋणों में आवश्यक सुधार लाने के लिए काफी पुनर्वित्त प्रदान किया।

यदि ग्रामीण साख प्रवाह का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करें तो यह पता चलता है कि राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक को ग्रामीण विकास में असन्तुलन को कम करने में बहुत कम सफलता मिली है।

बोध प्रश्न 'ग'

1. बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत

   (i) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अध्यादेश 1975 में जारी किया गया।

   (ii) प्रवर्तक बैंक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के साथ प्रतिस्पर्धा करता है।

   (iii) राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को पुनर्वित्त सुविधाएं देता है।

   (iv) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक उन सभी कार्यक्रमों में भाग ले रहे हैं जो सोमान्त किसानों, ग्रामीण कारीगरों, और भूमिहीन श्रमिकों की सहायता के लिये हैं।

   (v) राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना 1972 में की गयी।

   (vi) राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की अभिदत्त पूंजी 100 करोड़ रु. है।

   (vii) राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक भू–विकास बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को दीर्घावधि ऋण देता है।

   (viii) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक का निरीक्षण करते हैं।

   (ix) राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक ग्रामीण साख का आधार सुदृढ़ करने का प्रयत्न कर रहा है।

   (x) राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक क्षेत्रीय असंतुलन को समाप्त करने में सफल हुआ है।

13.9 सारांश

ग्रामीण ऋणग्रस्तता में हो रही निरंतर वृद्धि किसानों की गरीबी को दर्शाती है। किसानों को दो प्रकार के ऋणों की आवश्यकता होती हैः (i) उपभोग ऋण, और (ii) उत्पादन ऋण । समय को आधार पर ऋणों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है। .. अल्पावधि, मध्यावधि और दीर्घावधि ऋण।.

किसान संस्थागत एजेन्सियों और गैर–संस्थागत एजेन्सियों, दोनों से ही ऋण ले सकते हैं। सहकारी बैंकों की स्थापना के कुल ऋणों में संस्थागत साख का हिस्सा बढ़ा है। 1970 से भारत ने ग्रामीण साख के क्षेत्र में बहु एजेन्सी नीति अपनायी है जिसमें सहकारी समितियों व्यापारिक बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों जैसी सस्थाओं ने भाग लिया है।

सहकारी संस्थाओं की संरचना तीन स्तरीय हैः प्राथमिक कृषि सहकारी साख समितियां, केन्द्रीय सहकारी बैंक और राज्य सहकारी बैंक । ये अल्पावधि व मध्यावधि ऋण प्रदान करते हैं। भू–विकास बैंक दीर्घावधि ऋण प्रदान करते हैं। लेकिन ये सब मिलकर कृषि क्षेत्र को पर्याप्त वित्त प्रदान नहीं कर सके। 1969 से व्यापारिक बैंकों ने ग्रामीण साख में भाग लेना शुरू किया । ये सावधि ऋण वे फसल ऋण प्रदान करते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर वर्गों की सहायता करने के लिये क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक स्थापित किये गये। सार्वजनिक क्षेत्रक के बैंक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को प्रवर्तित कर सकते हैं। ये इन बैंकों की शेयर पूंजी में भागीदार बन सकते हैं और शुरू में इनके संगठन और इनके कर्मचारियों की नियुक्तिं में सहायक हो सकते हैं । यद्यपि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक समाज के कमजोर व गरीब... वर्गों की सहायता करने में सफा हुए हैं लेकिन साधनों की अपर्याप्तता और बढ़ती हुई बकायां ऋण राशि इनकी प्रमुख समस्याएं हैं।

1972 में राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक स्थापित किया गया। इसका मुख्य उद्देश्यं अल्पावधि, मध्यावधि और दीर्घावधि के लिये कृषि सहकारी समितियों, ग्रामीण बैंकों और व्यापारिक बैंकों को पुनर्वित्त सुविधाएं प्रदान करना है। इसका असली उद्देश्य तो कृषि साख प्रणाली में इस प्रकार का परिवर्तन लाना है कि यह गरीब किसानों के कल्याण का एक प्रभावी उपकरण बन जाए।

13.10 उपयोगी शब्दावली

- **साख संरचना** (Credit Structure) : विभिन्न स्तर जिन पर साख उपलब्ध कराया जाता है।
- **सामाजिक नियंत्रण** (Social Control) : जब उत्पादक इकाइयों को व्यापारिक उद्देश्यों के साथ–साथ सामाजिक प्राथमिकताओं के अनुरूप भी कार्य करना पड़ता है।

13.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1. प्राथमिक कृषि सहकारी साख समितियां, केन्द्रीय सहकारी बैंक, राज्य सहकारी बैंक

2. भूमि खरीदने के लिये, भूमि पर स्थायी सुधार करने के लिये, ऋण कम करने के लिये

3. i) अपनी ii) जमाएं एवं ऋण

4. i) महाजन ii) अल्पावधि iii) 30 iv) राज्य सहकारी बैंक

ख 2 i) गलत ii) सही iii) सही iv) गलत

3 i) बारहमासी बागान ii) अप्रत्यक्ष अग्रिमों

iii) चयनात्मक

ग 1	i) सही	ii) गलत	iii) सही	iv) सही	v) गलत
	vi) सही	vii) सही	viii) गलत	ix) सही	x) गलत

13.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 भारत में कृषि के लिये संस्थागत वित्त की आवश्यकता स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न–2 सहकारी बैंक किस प्रकार किसानों की ऋणग्रस्तता की समस्या को हल करने में सहायक हैं?

प्रश्न–3 भारत में कृषि वित्त में सहकारी समितियों का योगदान स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न–4 भारत में कृषि साख के मुख्य स्रोत बताइये। राष्ट्रीयकृत बैंक किस हद तक किसानों की साख की आवश्यकताओं को पूरा कर सके हैं?

प्रश्न–5 भारत में व्यापारिक बैंकों की उपलब्धियों को मुल्यांकन काजिये।

प्रश्न–6 राष्ट्रीय कृषि व ग्रामीण विकास बैंक भारत में अन्य बैंकों को पुनर्वित्त सुविधाएं प्रदान करने में किस हद तक सफल हुआ है?

प्रश्न–7 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की मुख्य विशेषताएं बताइये।

प्रश्न–8 भारत में ग्रामीण साख की उपलब्धता में हाल ही में हुए परिवर्तनों का विवेचन कीजिये।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)
- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)
- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीष कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, SBPD पब्लिकेशन 2016)
- प्रो0 षिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेशन 2017)
- एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
- के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
- शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016)
- एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

****

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

DC B.COM-102
मुद्रा बैंकिंग एवं वित्तीय संस्थान

खण्ड – 4

अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था

इकाई – 14 261–270

अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था – एक परिचय

इकाई – 15 271–280

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

इकाई – 16 281–296

विश्व बैंक

विशेषज्ञ समिति

1. डॉ. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
2. डॉ देवश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
3. प्रो. आर.सी. मिश्रा, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन एवं वाणिज्य विद्याशाखा, उत्तराखण्उ मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
4. प्रो. लवकुश मिश्रा, निदेशक, इंस्टीट्यूट ऑफ टूरिज्म एण्ड होटल मैनेजमेंट, श्री भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।
5. प्रो. सोमेश शुक्ला, विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
6. प्रो. राधेश्याम सिंह, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

लेखक :– डॉ गौरव संकल्प, परामर्शदाता, वाण्ज्यि, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

सम्पादक :– प्रो. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

परिमापक :–

अनुवाद की स्थिति में

मूल लेखक	अनुवाद
मूल सम्पादक	भाषा सम्पादक
मूल परिमापक	परिमापक

सहयोगी टीम

संयोजक :– **डॉ देवेश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।**

2020 (मुद्रित)
© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2020
ISBN- 978-93-83328-88-8

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।
प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021

इकाई–14 अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली – एक परिचय

इकाई की रुपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 अन्तर्राष्ट्रीय वित्त की आवश्यकता

14.2.1 कोषां का अल्पकालीन प्रवाह

14.2.2 दीर्घकालीन पूंजी प्रवाह

14.3 विदेशी विनिमय बाजार

14.3.1 विदेशी विनिमय बाजार का संघटन

14.3.2 हाज़िर और वायदा बाजार

14.4 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा और पूंजी बाजार

14.4.1 मुद्रा बाजार

14.4.2 पूंजी बाजार

14.5 अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं

14.5.1 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

14.5.2 विश्व बैंक

14.5.3 विश्व बैंक से सम्बद्ध संस्थाएं

14.6 सारांश

14.7 उपयोगी शब्दावली

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेगे किः

- ❖ अन्तर्राष्ट्रीय वित्त की आवश्यकता बता सकेंगे,
- ❖ अन्तर्राष्ट्रीय वित्त की संरचना का वर्णन कर सकगें,
- ❖ विदेशी विनिमय बाजार की कार्यप्रणाली बता सकेंगे,
- ❖ अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा और पूंजी बाजारों की प्रकृति और कार्य–प्रणाली बता सकेंगे तथा

❖ प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की भूमिका का वर्णन कर सकगें।

14.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली का तात्पर्य विभिन्न देशों के मध्य कोष के प्रवाह की प्रणाली से हैं। दो देशों में व्यापार के लिये बहुधा कोषां के अन्तर्राष्ट्रीय हस्तांतरण की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि व्यापार मुष्किल से ही वस्तु–विनिमय के रूप में होता है, इसलिये किसी भी देश के व्यापार–शेष (balanc of trade) में सामान्यतया या तो अधिशेष (बचत) होता है या घाटा होता है। इसके लिये देशों में कोषां के हस्तांतरण की दूसरी श्रेणी में दीर्घकालीन पूंजी प्रवाह आते है। ऐसे प्रवाह सरकारी और निजी दोंनो स्तरों पर हो सकते हैं। इस इकाई में आप अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रवाहों की आवश्यकता और कोषां के ऐसे प्रवाहों को सरल बनाने के लिये विद्यमान संस्थागत व्यवस्था के बारे में पढ़ेंगे। विशेष रूप से आप विदेशी विनिमय बाजार, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा और पूंजी बाजारों की कार्यप्रणाली तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश, विश्व बैंक और उससे सम्बद्ध संस्थाओं की भूमिका के बारे में पढ़ेगे।

14.2.1 कोषों का अल्पकालीन प्रवाह

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कोषां के अल्पकालीन प्रवाह की आवश्यकता विभिन्न देशों के भुगतान–षेष में असन्तुलन से उत्पन्न होती है। लेकिन इस असंतुलन का अर्थ क्या है? किसी देश के भुगतान शेष से तात्पर्य एक निष्चित अवधिक के दौरान लेनदेनों से बाकी देशों के विरुद्ध होने वाले शुद्ध दावों से है। जब ये दावें धनात्मक होते हैं तो भुगतान शेष अनुकूल कहा जाता है और ये दावे ऋणात्मक होते हैं तो उन्हें प्रतिकूल कहा जाता है। इस बात को समझने के लिए भुगतान शेष की लेखा पद्धति को समझना आवष्यक है।

14.2.2 दीर्घकालीन पूंजी प्रवाह

(1) वस्तुओं का निर्यात व आयातः–एक देश के भुगतान शेष खाते में सबसे महत्वपूर्ण मद वस्तु व्यापार यानि निर्यात और आयात है। वस्तु निर्यात से देश के आयातक करने वाले देशों पर दावे बनते हैं, ऋण दायित्व बनते हैं। जब तक कि एक देश सख्ती से निर्यात और आयात केवल वस्तु विनिमय आधार पर न करे, ये दोनों बराबर नहीं होते। उन स्थितियों में जहां विदेशी व्यापार देश की सरकार द्वारा नियोजित और विनियमित होता है, देश के व्यापार शेष में अधिशेष (surplus) या घाटा (deficit) हो सकता है, इससे इस देश और व्यापारिक देशों के बीच, जिससे यह व्यापार करता है, अल्पकालीन कोषां का प्रवाह होगा बषर्ते कि अन्य षी”ाको के अन्तर्गत होने वाली प्राप्तियां और भुगतान ऐसे प्रवाह की आवश्यकता को समाप्त न कर दें।

14.3 विदेशी विनिमय बाजार

वर्तमान समय में अधिकांश देशों की अर्थव्यावस्थाएं खुली अर्थव्यवस्थाएं हैं, जिसका अर्थ है कि इन देशों के कुछ नागरिक अन्तर्राष्ट्रीय लेन–देन करते हैं। ये लेन–देन वस्तुओं के निर्यात व आयात के रूप मे हो सकते हैं, सेवाओं के निर्यात व आयात के रूप में हो सकते है, अन्तरदेशीय एकपक्षीय हस्तांतरण, पूंजीगत प्रवाह और सोने के निर्यात व आयात के रूप में हो सकते हैं। इन अन्तर्राष्ट्रीय लेन–देन में से अधिकांश की एक खास विशेषता होती है, जो इन्हें घरेलू लेन–देनों से भिन्न

बनती है। इसके लिये, लेन–देन करने वालोंको, विदेशी मुद्रा का प्रयोग करना पड़ा है। उदाहरण के लिये, अमेरिका से आयात करने वाली एक भारतीय फर्म को उस देश को भुगतान करने के लिये डालर प्राप्त करने पड़ेगे। इसी प्रकार, कनाडा के देशवासी को, जो कि भारत आता है, अपने डालर के बदले रूपये प्राप्त करने पड़ेगे। इस प्रकार, अन्तर्राष्ट्रीय लेन–देनों के लिये एक मुद्रा का दूसरी मुद्रा से विनिमय करना पड़ता है। मुद्राओं का यह क्रय–विक्रय विदेशी विनिमय बाजार में होता है।

संकीर्ण दृष्टिकोण से विदेशी विनिमय का तात्पर्य विदेशी मुद्राओं से है। यदि विस्तृत दृष्टिकोण अपनाये तो विदेशी विनिमय में न केवल विदेशी मुद्राएं शामिल होती हैं बल्कि विदेशी मुद्रा में व्यक्त बैंक जमा और विदेशी मुद्रा में व्यक्त विदेषियों पर अल्पकालीन दावे भी शामिल होते हैं। लेकिन आजकल अधिकांश विदेशी विनिमय लेन–देनों में विदेशी मुद्राओं का क्रय–विक्रय और विदेशी मुद्राओं में व्यक्त बैंक जमा शामिल होता है।

14.3.1 विदेशी विनिमय बाजार का संघटन

विदेशी विनिमय बाजारो में मुख्य भाग लेने वाले हैः 1– खुदरा ग्राहक, 2–व्यापारिक बैंक, 3–विदेशी विनिमय के दलाल, और 4–केन्द्रीय बैंक।

1. **खुदरा ग्राहक :–** व्यक्ति और व्यापारिक क्रय–विक्रय होते हैं। कुछ खुदरा ग्राहक अपने पोर्टफोलियो के समायोजन यानि अपने पास विभिन्न मुद्राओं की मात्रा में परिवर्तन लाने के लिये नियमित रूप से विदेशी विनिमय बाजार में भाग लेते हैं। खुदरा ग्राहक सामान्यतया एक दूसरे से अप्रत्यक्ष रूप में लेन–देन करते हैं। उनके विदेशी मुद्राओं के क्रय–विक्रय सम्बन्धी लेन–देन अधिकांशतः व्यापारिक बैंको के साथ होते हैं।
2. **व्यापारिक बैंक :–** व्यापारिक बैंक को विदेशी विनिमय बाजार में काम करने वाली सबसे महत्वपूर्ण संस्था माना जाता है। व्यापारिक बैंक खुदरा ग्राहकों से विदेशी मुद्राओं में लेन–देन करने के लिये अपने पास विदेशी विनिमय का स्टॉक (inventories) रखते है। यदि एक खुदरा ग्राहक व्यापारिक बैंक से विदेशी विनिमय खरीदता है तो बैंक का विदेशी विनिमय का स्टॉक घट जाता है। इसके विपरीत, जब खुदरा ग्राहक विदेशी विनिमय बेचता है तो बैंक का विदेशी विनिमय स्टॉक बढ़ जाता है। खुदरा ग्राहकों द्वारा व्यापारिक बैंको से विदेशी विनिमय के क्रय–विक्रय की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इससे व्यापारिक बैंकों के पास कभी विदेशी विनिमय कोषां कि बहुलता हो जाती है और कभी इनका कमी हो जाती है। इसके अतिरिक्त, किसी भी समय कुछ बैंको के पास विदेशी विनिमय की बहुलता हो सकती है और कुछ के पास इसकी कमी हो सकती है। ऐसी परिस्थितियों में व्यापारिक बैंक एक दूसरे के साथ विदेशी विनिमय का लेन–देन करते है।
3. **विदेशी विनिमय दलाल :–** कुछ देशों में, जिनमे अमेरिका मुख्य है, व्यापारिक बैंक एक दूसरे से विदेशी–विनिमय में लेन–देन नहीं करते। वे इसके लिये प्रायः विदेशी विनिमय दलालों की सेवायें प्राप्त करते है। ये दलाल स्वयं विदेशी विनिमय का लेन–देन नहीं करते। इसका मुख्य कार्य विदेशी विनिमय खरीदने के इच्छुक और बेचने के इच्छुक बैंकों को आपस में मिलाना होता है। इसलिये दलालों की भूमिका अन्तर–बैंक मध्यस्थों की है। यह कार्य करते समय दलालों को विनिमय दर के उतार–चढ़ाव से उत्पन्न जोखिमों को वहन नहीं करना

पड़ता। वास्तव में जोखिम व्यापारिक बैंकों को ही उठाना पड़ता है, जिन्हे विदेशी विनिमय के व्यापारी होने के नाते विदेशी विनिमय का स्टॉक रखना होता है।

4. **केन्द्रीय बैंक :–** किसी भी देश का केन्द्रीय बैंक विदेशी विनिमय बाजार में एक महत्वपूर्ण भागीदार होता है। इसके इस बाजार में क्रियाशील होने के दो उद्देश्य है:(1) विदेशी विनिमय बाजार में घरेलू मुद्रा को समर्थन देना और (2) देश के विदेशी विनिमय रिजर्व को विनियमित करना। लेकिन इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये केन्द्रीय बैंक विदेशी विनिमय बाजार में प्रत्यक्ष रूप से कार्य नहीं करता । यह विदेशी विनिमय के लेन–देनों के लिये प्रायः व्यापारिक बैंको और विदेशी विनिमय दलालों पर भरोसा करता है।

14.3.2 हाजिर और वायदा बाजार

विदेशी विनिमय बाजार विश्व के वृहद बाजारों में से एक है। जिसे आप इस तथ्य से इसके आकार का अनुमान लगा सकते है कि हाल के वर्षों में इसके दैनिक लेन–देनों की मात्रा 100 बिलियन डालर से भी अधिक थी। विदेशी विनिमय बाजारों को बहुधा हाजिर बाजार और वायदा बाजार में वर्गीकृत किया जाता है। यह भेद मूलतः विदेशी विनिमय की सुपुर्दगी के समय और इसके लिये भुगतान के बारे में है।

ट्रेडिंग अकाउंट खोलने के लिए ये हैं जरूरी कागजात ट्रेडिंग अकाउंट खोलने के लिए आपके पास पैन कार्ड, एड्रेस प्रूफ और बैंक खाता होना जरूरी है. जब आप किसी ब्रोकर के यहां ट्रेडिंग अकाउंट ओपन कराते हैं तो यह ब्रोकर आपको एक अकाउंट की आईडी मुहैया कराता इस आईडी के जरिये आप खुद भी ट्रेड कर सकते हैं इसके लिए आपके मोबाइल, पीसी, टेबलेट में इंटरनेट की सुविधा होनी जरूरी है. इस अकाउंट के जरिये ब्रोकर को निश्चित शुल्क चुकाना होता है. अगर आप खुद से सौदे नहीं करना चाहते तो आप अपने ब्रोकर को फोन के जरिये सौदे की खरीद या बिक्री कर सकते हैं,

14.4 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा और पूंजी बाजार

मुद्रा और पूजीं बाजार किसी भी वित्तीय व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण भाग होता है। आपको यह पता होना चाहिये कि पूरी दुनियां में बहुत से शहरों में अच्छी तरह विकसित मुद्रा और पूंजी बाजार हैं, लेकिन लन्दन और न्यूयार्क जैसे मुख्य अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय केन्द्रो में पूरी दुनियां से कोष प्राप्त होते हैं। इसलिये बड़े मुद्रा और पूंजी बाजारों की वित्तीय सामर्थ्य बहुत होती है और इनके पास उपलब्ध कोषां का प्रयोग विभिन्न प्रकार के घरेलू और विदेशी समूहों द्वारा विस्तृत स्तर पर किया जाता है।

14.4.1 मुद्रा बाजार

मुद्रा बाजार मे अपेक्षाकृत अल्पकालन परिपक्वता वाली वित्तीय परिसम्पत्तियों का व्यवसाय किया जाता है। इसमें मांग व मियादी जमा (demand and time deposits), ट्रेजरी बिल, व्यापारिक बिल, स्वीकृतियां (acceptances) और बहुत प्रकार के अन्य अल्पकालीन दावे शामिल होते है। मुद्रा बाजार उन ऋणदाताओं के कोशों के लिये एक निर्गम मार्ग प्रदान करता है, जो अपने वित्तीय साधनों को तरल रूप में रखना चाहते है।

14.4.2 पूंजी बाजार

मुद्रा बाजार तो परिसम्पत्तियों के प्रति अल्पकालीन दावों में व्यवसाय रकते हैं जबकि पूंजी बाजार वह बाजार है जिसमे बांडों, निगमों के शेयरों और ऋणपत्रों (debentures) जैसी परिसम्पत्तियों के प्रति दीर्घकालीन दावों का व्यवसाय करते हैं।

बोध प्रश्न – क

1. अंतर्राष्ट्रीय वित्त की आवश्यकता के लिये दो प्रमुख कारण बताइये।

....
....
....
....
....
....

2. अन्तर्देशीय दीर्घकालीन पूंजी प्रवाहों के दो मुख्य रूप बताइये।

....
....
....
....
....
....

3. विदेशी विनिमय बाजारों के मुख्य भागीदारों की सूची बनाइये।

....
....
....
....
....
....

4. तीन प्रकार के विनिमय दर व्यवस्थाओं के नाम बताइये।

....
....
....
....
....
....

14.5 अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं

अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली का एक अभिन्न आवष्यक अंग महत्वपूर्ण भाग हैं। इस दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) और अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण व विकास बैंक (IBRD), जिसे विश्व बैंक के नाम से अधिक जाना जाता है.का विशेष महत्व है। इन संस्थाओं की स्थापना का

निर्णय 1944 में ब्रेटन वुडस में हुए सम्मेलन में लिया गया था। इस भाग में अगली इकाइयों (इकाई 15 व 16)में इन पर विस्तार से विचार किया जाएगा। आजकल विश्व बैंक की दो सम्बद्ध संस्थाएं है। (1)अन्तर्राष्ट्रीय विकास संगठन (IDA), और (2) अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (IFC)। यद्यपिइ न दोनों संस्थाओं का अलग–अलग अस्तित्व है फिर भी इनके विश्व बैंक के साथ संगठनात्मक सम्बन्ध हैं और वास्तव में ये इसके पूरक हैं।

14.5.1 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एक सात दशकों से अधिक पुरानी संस्था है। इसके मुख्य उद्देश्य, जैसाकि करार–नियमों में दिये गये हैं, आय व रोजगार के ऊंचे स्तर को प्राप्त करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को बढ़ावा देना है। इस दृष्टि से यह कोष विनिमय दर की स्थिरता को प्रोत्साहत करने के लिये प्रयास करेगा, विनिमय नियंत्रणों को निरूत्साहित करेगा, सदस्य देशों की भुगतान षेष में पुनः संतुलन स्थापित करने में सहायता करेगा और भुगतान की बहुपक्षीय प्रणाली का विकास करेगा।

14.5.2 विश्व बैंक

विश्व बैंक या अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक की स्थापना 1945 को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की जुड़वा संस्था के रूप में की गई। यह पूर्व निर्धारित दीर्घावधि योजनाओं को पूरा करने के लिये देशों के बीच दीर्घकालीन पूंजी संचलन को सुव्यवस्थित तरीके से नियमित करने का पहला प्रयास था। इसके उद्देश्य हैंः– (1)जिन अल्प विकसित देशों को अपनी विकासात्मक परियोजनाओं के लिये पूंजी की आवश्यकता है उनकी सहायता करना, (2) जिन देशों का युद्ध से विध्वंस हुआ उनके पुनर्निर्माण कार्यक्रमों के लिये साधन प्रदान करना, (3) देशों के बीच निजी पूंजी के प्रवाह में मदद देना, और (4) देशों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये ऐसी परिस्थितियां बनाना जो उसमें सहायक हों।

14.5.3 विश्व बैंक से सम्बद्ध संस्थाएं

अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ [International Development Association (IDA)] औंर अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम [(International Finance Corporation (IFC)] विश्व बैंक से सम्बद्ध दो संस्थाएं हैं। वित्तीय और कानूनी रूप से इनका विश्व बैंक से अलग अस्तित्व है।

अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ : इस संघ की स्थापना 1960 में हुई हालांकि इसकी स्थापना की आवश्यकता तो बहुत समय से महसूस की जा रही थी। 1940 के दशक के अंतिम वर्षों में यह माना गया कि यह संघ अल्पविकसित देशों के विकास के लिये अपेक्षाकृत आसान षर्तो पर वित्तीयन के लिये एक अंतर्राष्ट्रीय एजेंसी की आवश्यकता का परिणाम है। विकास संघ की स्थापना इसी उद्देश्य से की गयी। वास्तव में इसकी स्थापना ने तीन बातों पर प्रकाश डाला(1) यह विकास कार्यो के लिये रियायती वित्त को संस्थागत करने की दिशा में एक कदम है, (2) इसने अल्पविकसित देशों में गरीबी और आर्थिक पिछड़न को दुनियां के विकसित देशों के लिये चिन्ता का विषय बनाया, और (3) यह अल्पविकसित देशों की आर्थिक सामर्थ्य में सुधार करके बहुपक्षीय व्यापार और भुगतान की प्रणाली को बढ़ावा देने का प्रयास करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ की सदस्यता के लिये विश्व बैंक का सदस्य होना आवष्यक है। विश्व बैंक का कोई भी सदस्य इसमें शामिल हो सकता है। लेकिन यदि वह विश्व बैंक का सदस्य नही रहता तो इस संघ की उसकी सदस्यता अपने आप ही समाप्त हो जाएगी। अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ के सदस्य दो समूहों में बांटे जाते हैं यानि भाग–1 भाग–2 भाग–1 के देश विकसित देश होते हैं और भाग–2 के देश अल्पविकसित देश होते हैं। यह वर्गीकरण अमीर सदस्यों से गरीब सदस्यों को कोषां के प्रवाह के आधार को निर्धारित करने के लिये किया गया है। आजकल अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ को प्रायः सुलभ ऋण खिड़की (soft loan window) कहा जाता है। इसका कारण यह है कि इसकी ऋणों की शर्तें सरल और रियायती हैं। इसके द्वारा दिये गये ऋणों की रियायती शर्तो और दीर्घ परिपक्वता का आधार यह है कि ये ऋणी देशों के भुगतान शेष पर बोझिल न बनें।

अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम : अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम की स्थापना 1956 में हुई। इसका मुख्य उद्देश्य अपने सदस्य देशों, विशेषकर अल्प विकसित क्षेत्रों में निजी उत्पादक उद्यम को प्रोत्साहित करके उनके आर्थिक विकास को तीव्र करने में सहायता करना है। इस प्रकार यह विश्व बैंक की क्रियाओं में संपूरक का काम करता है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम निजी निवेषकों के साथ मिलकर विकासशील देशों में निजी उत्पादक उद्दमों की सहायता करता है। यह इन देशों की सरकारों से ऋण के भुगतानो की गारंटी नही मांगता। अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम घरेलू व विदेशी निजी पूंजी और प्रबन्धन को एक साथ लाने का प्रयत्त्न भी करता है और ऐसी परिस्थितियां बनाने की कोंशिष करता है जो घरेलू और विदेशी दोंनो प्रकार की निजी को सदस्य देशों में उत्पादक निवेश में प्रवाहित करने में सहायक हों।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम की भूमिका यह विकासात्मक परियोजनाओं के लिये निजी साधनों का प्रजनन करता है। यदि बाजार शक्तियों पर हीं निर्भर रहा जाए तो ये साधन उपलब्ध नहीं होंगे। यह निगम तीन प्रकार से निजी उत्पादक निवेष को बढ़ावा देता हैः (क) प्रत्यक्ष निवेष द्वारा, (ख) अतिरिक्त विदेशी व घरेलू पूंजी प्राप्त करके, और (ग) तकनीकी सहायता प्रदान करके। यद्यपि यह निगम निजी उद्यम को प्राथमिकता देता है, लेकिन कभी–कभी यह ऐसे उद्यमों में भी निवेष करता है जिसमें निजी और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों ही भागदार होते हैं। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय वित्त केवल उन विकासशील देशों में ही निवेश करता है जहां उचित शर्तां पर पर्याप्त निजी पूंजी उपलब्ध न हो। अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ के भांति इस निगम की सदस्यता के लिये विश्व बैंक का सदस्य होना आवष्यक है।

14.6 सारांश

अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली का तात्पर्य विभिन्न देशों के मध्य कोष के प्रवाह की प्रणाली से हैं। दो देशों में व्यापार के लिये बहुधा कोशां के अन्तर्राष्ट्रीय हस्तांतरण की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि व्यापार मुष्किल से ही वस्तु–विनिमय के रूप में होता है, इसलिये किसी भी देश के व्यापार–शेष (balanc of trade) में सामान्यतया या तो अधिशेष (बचत) होता है या घाटा होता है। वर्तमान समय में अधिकांश देशों की अर्थव्यावस्थाएं खुली अर्थव्यवस्थाएं हैं, जिसका अर्थ है कि इन देशों के कुछ नागरिक अन्तर्राष्ट्रीय लेन–देन करते हैं। ये लेन–देन वस्तुओं के निर्यात व आयात के रूप मे हो सकते हैं, सेवाओं के निर्यात व आयात के रूप में

हो सकते है, विदेशी विनिमय बाजारो में मुख्य भाग लेने वाले हैः 1– खुदरा ग्राहक, 2–व्यापारिक बैंक, 3–विदेशी विनिमय के दलाल, और 4–केन्द्रीय बैंक।

मुद्रा और पूर्जी बाजार किसी भी वित्तीय व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण भाग होता है। आपको यह पता होना चाहिये कि पूरी दुनियां में बहुत से शहरों में अच्छी तरह विकसित मुद्रा और पूंजी बाजार हैं, लेकिन लन्दन और न्यूयार्क जैसे मुख्य अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय केन्द्रो में पूरी दुनियां से कोष प्राप्त होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली का एक अभिन्न आवश्यक अंग महत्वपूर्ण भाग हैं। इस दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) और अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निमाण व विकास बैंक (IBRD), जिसे विश्व बैंक के नाम से अधिक जाना जाता है.का विशेष महत्व है।

14.7 उपयोगी शब्दावली

- विदेशी सहायता–सरकारी ऋण और अनुदान
- विदेशी विनिमय–विदेशी मुद्राओं में व्यक्त विदेशी मुद्राएं और बैंक निक्षेप
- व्यापार शेष–वस्तुओं के निर्यात और आयात का अन्तर
- भुगतान शेष में असंतुलन–भुगतान शेष में अधिशेष या घाटा
- मुद्रा बाजार–वह बाजार जिसमें अल्पकालीन परिपक्वता वाली वित्तीय परिसम्पत्तियों का व्यापार किया जाता है।
- अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली–देशों के बीच कोषां के प्रवाह की प्रणाली।
- विनिमय दर–वह दर जिस पर एक मुद्रा का दूसरी से विनिमय किया जाता है।
- नियम विनिमय दर व्यवस्था–सुनिष्चित सीमाओं के अन्दर एक स्थिर विनिमय दर व्यवस्था।

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) कोषां का अल्पकालीन प्रवाह (2) दीर्घकालीन पूंजी प्रवाह
2. (1) निजी विदेशी पूंजी (2) विदेशी सहायता
3. (1) खुदरा बाजार (2) व्यापारिक बैंक (3) विदेशी विनिमय दलाल (4) केन्द्रीय बैंक

14.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 हाजिर और वायदा विदेशी विनिमय बाजारों में भेद कीजिये। वायदा विदेशी विनिमय बाजारों में लेन–देन क्यों किये जाते हैं।

प्रश्न–2 कोषां के अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश, विश्व बैंक और उससे सम्बद्ध संस्थाओं द्वारा कौन से उद्देश्य पूरे किये जा रहें हैं।

प्रश्न–3 अंतर्राष्ट्रीय वित्त की आवश्यकता किन कारणों से उत्पन्न होती है, उनका विवेचन कीजिये।

प्रश्न–4 मूल विनिमय दर व्यवस्थाएं कौन सी हैं? आपकी राय में वर्तमान परिस्थितियों में सबसे उपयुक्त कौन सी है।

प्रश्न–5 यह विरोधीभासी स्थिति स्पष्ट कीजिये कि एक देश के भुगतान शेष खाते सदा संतुलन में होते हैं लेकिन भुतान शेष स्वयं अधिकाष समय असंतुलन में होता है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)
- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)
- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीष कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, SBPD पब्लिकेशन 2016)
- प्रो0 षिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेशन 2017)
- एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
- के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
- शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016)
- एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

****

इकाई–15 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य

15.3 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्य

15.3.1 आईएमएफ की ऋण सुविधाएं

15.3.2 कम आमदनी वाले देशों को ऋण देना

15.3.3 कर्ज में राहत

15.3.4 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के बारे में 14 महत्वपूर्ण तथ्य

15.4 विनिमय दर स्थिरता बनाम व्यवस्थित फ्लोट

15.4.1 समायोज्य–पेग व्यवस्था

15.4.2 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की असफलता

15.5 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और अन्तर्राष्ट्रीय तरलता

15.5.1 अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या

15.5.2 अन्तर्राष्ट्रीय तरलता बढ़ाने के प्रस्ताव

15.5.3 विशेष आहरण अधिकारों की भूमिका

15.6 सारांश

15.7 उपयोगी शब्दावली

15.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

15.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि–

- ❖ अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य और इसकी कार्यप्रणाली समझा सकेगे,
- ❖ स्थिर और अबन्ध विनिमय देरों की प्रणालियों से सम्बन्धित विषयों को समझ सकेंगे,
- ❖ विनिमय दर में स्थिरता लाने में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की असफलता का वर्णन कर सकगे,
- ❖ अंतर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या को बता सकेंगे, तथा

❖ अंतर्राष्ट्रीय तरलता को बढ़ाने से संबधित विभिन्न प्रस्तावों को स्पष्ट कर सकेगें,

15.1 प्रस्तावना

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना ब्रेटन (अमेरिका) वुड्स में 1944 में एक प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय संस्था के रुप में हुई जो अपने सदस्य देशों की अल्पकालीन भुगतान शेष समस्या को दूर करने में सहायता करता है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष शुरू में विनिमय दर में स्थिरता का समर्थक था क्योंकि इसका विश्वास था कि विनिमय दर में स्थिरता अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार व पूंजी के संचलन दोनों में ही सहायक होती है। लेकिन यदि विनिमय दर में स्थिरता को अत्यधिक महत्व दिया जाता है तो इससे बहुधा भुगतान शेष में अनुचित घाटे हो जाते हैं।

15.2 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य

सन् 1946 में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना संयुक्त राष्ट्र संघ की एक विषिष्ट एजेन्सी के रूप में किया गया और दुनियां के सभी गैर–साम्यवादी देश इसके सदस्य हैं (हालांकि कुछ साम्यवादी देश भी बाद में इसके सदस्य बन गये)।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष या अंतरराष्ट्रीय मुद्रा एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था है, जो अपने सदस्य देशों की वैश्विक आर्थिक स्थिति पर नजर रखने का काम करती है। यह अपने सदस्य देशों को आर्थिक और तकनीकी सहायता प्रदान करती है। यह संगठन अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय दरों को स्थिर रखने के साथ–साथ विकास को सुगम करने में सहायता करता है। इसका मुख्यालय वॉशिंगटन डी० सी०, संयुक्त राज्य में है। इस संगठन के प्रबंध निदेशक डॉमनिक स्ट्रॉस है। आईएमएफ की विशेष मुद्रा एसडीआर (स्पेशल ड्राइंग राइट्स) है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और वित्त के लिए कुछ देशों की मुद्रा का इस्तेमाल किया जाता है, इसे एसडीआर कहते हैं। एसडीआर में यूरो, पाउंड, येन और डॉलर हैं। विभिन्न देशों की सरकार के 45 प्रतिनिधियों ने अमेरिका के ब्रिटेन वुड्स में बैठक कर अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक समझौते की रूपरेखा तैयार की थी। 27 दिसंबर, 1945 को 29 देशों के समझौते पर हस्ताक्षर करने के बाद आईएमएफ की स्थापना हुई।

आईएमएफ के कुल 186 सदस्य देश हैं। 29 जून 2009 को कोसोवो गणराज्य 186वें देश के रूप में शामिल हुआ था। आईएमएफ का उद्देश्य आर्थिक स्थिरता सुरक्षित करना, आर्थिक प्रगति को बढ़ावा देना, गरीबी कम करना, रोजगार को बढ़ावा देना और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सुविधाजनक बनाना है। सदस्य देशों की संख्या बढ़ने के साथ वैश्विक अर्थ–व्यवस्था में आईएमएफ का कार्य काफी बढ़ा है। कोई भी देश आईएमएफ की सदस्यता के लिए आवेदन कर सकता है। पहले यह आवेदन आईएमएफ के कार्यपालक बोर्ड द्वारा विचाराधीन भेजी जाती है। इसके बाद कार्यकारी बोर्ड, बोर्ड ऑफ गर्वनेस को उसकी संस्तुति के लिए भेजता है। वहां स्वीकृत होने पर सदस्यता मिल जाती है।

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) एक अंतरसरकारी संगठन है जिसकी स्थापना अंतरराष्ट्रीय व्यापार में विनिमय दर को स्थिर करने के लिए की गई थी। यह सदस्य देशों को अंतरराष्ट्रीय बाजार में पर्याप्त तरलता के माध्यम से उनके भुगतान संतुलन (Balance of Payment) में सुधार में मदद करता है, वैश्विक मौद्रिक सहयोग में बढ़ोतरी को बढ़ावा देता है। यह 188 देशों द्वारा प्रशासित किया जाता है और ये देश इसके कार्यों के लिए जवाबदेह भी हैं।

आईएमएफ के समझौते के अनुच्छेदों के अनुसार इसके मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1. अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को बढ़ावा देना।
2. संतुलित अंतरराष्ट्रीय व्यापार को सुनिश्चित करना।
3. विनिमय दर की स्थिरता सुनिश्चित करना।
4. बहुपक्षीय भुगतान प्रणाली (System of Multilateral Payments) को बढ़ावा देकर विनिमय प्रतिबंधों को समाप्त या कम करना।
5. भुगतान के प्रतिकूल संतुलन को समाप्त करने के लिए सदस्य देशों को आर्थिक सहायता प्रदान करना।
6. अंतरराष्ट्रीय व्यापार की मात्रा और अवधि के असंतुलन को कम करना।

15.3 आईएमएफ के कार्य

आईएमएफ का प्राथमिक काम अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक प्रणालीदृ विनिमय दरों और अंतरराष्ट्रीय भुगतानों की वह प्रणाली जो देशों (और वहां के लोगों) को एक दूसरे के साथ कारोबार करने में सक्षम बनाता है, की स्थिरता सुनिश्चित करना है। आईएमएफ के कार्यों पर नीचे चर्चा की जा रही है –

- **निगरानी (Surveillance)** : इस प्रणाली के माध्यम से IMF अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली में स्थिरता बनाए रखने के लिए सदस्य देशों की नीतियों, आर्थिक और वित्तीय विकास कार्यों की समीक्षा करता है । आईएमएफ अपने 189 सदस्य देशों को आर्थिक स्थिरता को बढ़ावा देने, आर्थिक एवं वित्तीय संकट के प्रति संवेदनशीलता को कम करने और जीवन स्तर को उपर उठाने वाली नीतियों को प्रोत्साहित करने वाले उपायों के बारे में सलाह देता है । यह अपने विश्व आर्थिक परिदृश्य में वैश्विक संभावनाओं का नियमित मूल्यांकन प्रदान करता है।

- **वित्तीय सहायता** : यह अपने सदस्यों को भुगतान समस्याओं के संतुलनः आईएमएफ फाइनैंसिंग द्वारा समर्थित आईएमएफ के साथ करीबी सहयोग में राष्ट्रीय प्राधिकरण डिजाइन समायोजन कार्यक्रम, को सही करने के लिए धन मुहैया कराता हैय इन कार्यक्रमों के प्रभावी कार्यान्वयन पर सशर्त वित्तीय समर्थन जारी रखता है।

- **तकनीकी सहायता** : सदस्य देशों को डिजाइन एवं प्रभावी नीतियों के कार्यान्वयन में उनकी क्षमता को बढ़ाने में सदस्य देशों की मदद के लिए तकनीकी सहायता एवं प्रशिक्षण मुहैया कराता है। कर नीति एवं प्रशासन, खर्च प्रबंधन, मौद्रिक एवं विनिमय दर नीतियां, बैंकिंग एवं वित्तीय प्रणाली पर्यवेक्षण एवं नियमन, विधायी रुपरेखा और आंकड़े समेत तकनीकी सहायता कई क्षेत्रों में दी जाती है।

- **एसडीआर (Special Drawing Rights)** : विश्व में अंतरराष्ट्रीय तरलता की स्थिति में सुधार हेतु यह सुविधा 1971 में शुरु की गई थी। आईएमएफ, अंतरराष्ट्रीय भंडार संपत्ति (international reserve asset) जारी करता है। इसे स्पेशल ड्राइंग राइट्स (एसडीआर, इसे पेपर गोल्ड भी

कहते हैं) के नाम से जाना जाता है, और यह सदस्य देशों के सरकारी भंडारों का पूरक होता है। IMF की कुल आवंटन धनराशी करीब 204 बिलियन एसडीआर (286 बिलियन अमेरिकी डॉलर) है। आईएमएफ सदस्य आपस में मुद्राओँ के लिए स्वेच्छा से एसडीआर का विनिमय कर सकते हैं। एसडीआर का मान 4 मुद्राओं यानि अमेरिकी डॉलर, यूरो, पाउंड स्टर्लिंग और जापानी येन द्वारा तय किया जाता है। अक्टूबर 2016 से इसमें चीन का युआन भी शामिल हो जायेगा

- **संसाधन :** आईएमएफ के वित्तीय संसाधनों का प्राथमिक स्रोत उसके सदस्यों का कोटा है जो विश्व अर्थव्यवस्था में सदस्य की सापेक्ष स्थिति को व्यापक पैमाने पर प्रतिबिंबित करता है। इसके अलावा, आईएमएफ अपने कोटा संसाधनों की पूर्ति के लिए अस्थायी रूप से उधार ले सकता है।

- **प्रशासन एवं संगठन :** आईएमएफ अपने सदस्य देशों की सरकारों के प्रति जवाबदेह है। इसके संगठनात्मक संरचना के शीर्ष पर बोर्ड ऑफ गवर्नर्स होते हैं, जिसमें प्रत्येक सदस्य देश से एक गवर्नर और एक वैकल्पिक गवर्नर होता है। बोर्ड ऑफ गवर्नर्स प्रत्येक वर्ष आईएमएफ विश्व बैंक वार्षिक बैठक में एक बार मिलते हैं। चौबीस (24) गवर्नर अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक एवं वित्तीय समिति (आईएमएफसी) में बैठते हैं और आमतौर पर एक वर्ष में दो बार मिलते हैं।

15.3.1 आईएमएफ की ऋण सुविधाएं

- स्टैंडबाई अरेंजमेंट (एसबीए): इसके जरिए आईएमएफ आर्थिक संकट से जूझ रहे देशों को भुगतान समस्याओं में संतुलन (बीओपी) को ठीक करने में मदद करता है।

- फ्लेक्सिबल क्रेडिट लाइन (एफसीएल): यह उन देशों के लिए हैं जिनकी बुनियाद, नीतियां और नीति कार्यान्वयन में ट्रैक रिकॉर्ड बहुत अच्छा है। यह आईएमएफ द्वारा दिए जाने वाले कोष वित्तीय सहायता में महत्वपूर्ण बदलाव का प्रतिनिधित्व करता है खासकर हाल में हुए बदलावों का जिसके अनुसार इसमें किसी चालू (पूर्व दिए गए) शर्तों का उल्लेख नहीं है और न ही क्रेडिट लाइन के आकार की कोई सीमा निर्धारित की गई है।

- एहतियाती और चलनिधि रेखाः पीएलएल अच्छी नीतियों वाले देशों को भुगतान के वास्तविक या संभावित संतुलन को पूरा करने के लिए धन मुहैया कराता है और इसकी मंशा बीमा के तौर पर सेवा करने एवं संकट को दूर करने में मदद करने की है।

- एक्सटेंडेट फंड फैसिलिटी (विस्तारित निधि सुविधा) का उपयोग संरचनात्मक समस्याओं से आंशिक रूप से संबंधित भुगतान संतुलन को ठीक करने में किया जाता है जिसे व्यापक आर्थिक संतुलन के जरिए ठीक करने में अधिक समय लग सकता है।

- **व्यापार एकीकरण तंत्र :** यह तंत्र आईएमएफ को अपनी इस सुविधा के तहत उन विकासशील देशों को ऋण मुहैया कराने की सुविधा प्रदान करता है जो बहुपक्षीय व्यापार और उदारीकरण की वजह से विपरीत भुगतान संतुलन की समस्या से जूझ रहे हैं क्योंकि बहुपक्षीय व्यापार उदारीकरण की वजह से ऐसे देश कुछ खास बाजारों में अपनी पहुंच खो

देते हैं और उनकी निर्यात से होने वाली आमदनी कम हो जाती है या कृषि सब्सिडी कम कर दिए जाने की वजह से उनके द्वारा आयात किए जाने वाले भोजन की कीमतों में वृद्धि हो जाती है।

15.3.2 कम आमदनी वाले देशों को ऋण देना (Lending to low income countries)

निम्नलिखित व्यापक सुधार के हिस्से के तौर पर नई पॉवर्टी रिडक्शन एंड ग्रोथ ट्रस्ट (गरीबी उन्मूलन और विकास ट्रस्ट पीआरजीटी) के तहत तीन प्रकार के ऋण बनाए गए है, विस्तारित ऋण सुविधा (एक्सटेंडेट क्रेडिट फैसिलिटी), त्वरित ऋण सुविधा(रैपिड क्रेडिट फैसिलिटी) और स्टैंडबाई क्रेडिट फैसिलिटी। इनके बारे में नीचे चर्चा की जा रही है:

15.3.3 कर्ज में राहत (Debt relief)

रियायती ऋणों के अलावा कम आमदनी वाले कुछ देश निम्नलिखित दो मुख्य पहलुओं के तहत ऋण लेने के पात्र हैं। भारी ऋणी गरीब देश (The Heavily Indebted Poor Countries) पहलदृ इसकी शुरुआत 1996 में हुई थी और 1999 में इसमें विस्तार किया गया था, इस पहल के तहत लेनदारों को ऋण की स्थिरता बहाल करने के दृष्टिकोण के साथ समन्वित तरीके से ऋण में राहत प्रदान किया जाता है

बहुपक्षीय ऋण राहत पहल (The Multilateral Debt Relief Initiative)– इसके तहत आईएमएफ, विश्व बैंक का अंतरराष्ट्रीय विकास संघ (आईडीए) और अफ्रीकी विकास कोष (एएफडीएफ) सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ने के लिए मदद करने हेतु कुछ देशों को दिया गया पूरा ऋण माफ कर देते हैं।

15.3.4 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के बारे में 14 महत्वपूर्ण तथ्य

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) और अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक (IBRD) की स्थापना जुलाई 1944 में ब्रेटन वुड्स, न्यू हैम्पशायर, यूएसए में आयोजित 44 देशों के सम्मेलन में की गयी थी. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) और आईबीआरडी की स्थापना एक ही समय और जगह पर हुई थीय इस कारण इन दोनों को ब्रेटन वुड्स ट्विन्स के रूप में जाना जाता है.

इस लेख में हमने IMF के बारे में महत्वपूर्ण तथ्यों को संकलित किया है जो कि भारत में आयोजित होने वाली सभी प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण हैं.

1. संस्थापक सदस्यः 44 देश भारत IMF का संस्थापक सदस्य देश है।

2. कुल सदस्यः 189 देश. आम तौर पर IMF का हर सदस्य देश विश्व बैंक का सदस्य बन जाता है. इसी तरह IMF छोड़ने वाला देश स्वचालित रूप से (automatically) विश्व बैंक से निकाल दिया जाता है।

3. मुख्यालयः वाशिंगटन, डी.सी.

4. प्राथमिक उद्देश्य

(a) दुनिया में विनिमय स्थिरता को बढ़ावा देना

(b) अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को बढ़ावा देना

(c) अंतरराष्ट्रीय व्यापार का विस्तार और संतुलित विकास को सुविधाजनक बनाना

(d) भुगतान की बहुपक्षीय प्रणाली की स्थापना में सहायता करना

(e) भुगतान संतुलन की कठिनाइयों का सामना करने वाले सदस्य देशों को भुगतान असंतुलन को ठीक करने के लिए संसाधन उपलब्ध कराना.

5. **प्रकाशनः** वर्ल्ड इकनोमिक आउटलुक, वैश्विक वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट (Global Financial Stability Report), वित्तीय निगरानी (Fiscal Monitor), क्षेत्रीय आर्थिक रिपोर्ट (Regional Economic Reports).

6. कार्यकारी बोर्ड IMF के कार्यकारी बोर्ड में 24 कार्यकारी निदेशक (Executive Directors) होते हैं.कार्यकारी निदेशक भौगोलिक दृष्टि से आधारित रोस्टर प्लान के तहत सभी 189 देशों का प्रतिनिधित्व करते हैं, प्रत्येक सदस्य देश, गवर्नर बोर्ड की बैठकों में भाग लेने के लिए 2 गवर्नर नामित करता है। आम तौर पर सदस्य देश के वित्तमंत्री IMF बैठकों में गवर्नर के पद का प्रतिनिधित्व करता है लेकिन यदि वित्तमंत्री अनुपस्थित है तो RBI का गवर्नर उसकी जगह लेता है.

7. कर्मचारीः 150 देशों से लगभग 2,700 कर्मचारी

8. कुल कोटाः SDR & 477 बिलियन (US$ & 692 बिलियन)

9. विशेष आहरण अधिकार आवंटनः SDR का कुल वैश्विक आवंटन 204 अरब SDR या (US$ 296 बिलियन)

10. SDR बास्केट : SDR का मूल्य 5 मुद्राओं की टोकरी द्वारा निर्धारित किया जाता है. इसमें शामिल मुद्राएँ हैंय यूरो, यूएस डॉलर, जापानी येन, चीनी युआन और पाउंड स्टर्लिंग. चीनी युआन को अक्टूबर 2016 में SDR टोकरी में 5वीं मुद्रा के रूप में शामिल किया गया था.

11. मुद्रा भार % SDR का मूल्य निर्धारित करने में सबसे अधिक भार अमेरिकी डॉलर (41.73:) का है, इसके बाद यूरो (30.93:) का नम्बर आता है.

12. SDR कोटाः वर्तमान में IMF में भारतीय कोटा 2.76:(SDR कोटा) है. संयुक्त राज्य अमेरिका का कोटा सबसे अधिक 17.46: का सबसे बड़ा कोटा है जिसके बाद जापान (6.48:) और चीन (6.41:) का नंबर आता है.

13. उधार क्षमता : IMF अपने सदस्य देशों को लगभग $ 1 ट्रिलियन डॉलर उधार देने में सक्षम है.

14. सबसे बड़े उधारकर्ताः ग्रीस, यूक्रेन, पाकिस्तान और मिश्र IMF की स्थापना, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग के लिए एक ढांचा बनाने के लिए की गई थी. यह संगठन अपने कुछ उद्येश्यों को प्राप्त करने में कुछ सफल जरूर रहा है लेकिन इस संस्था पर अमीर देशों का कब्जा ज्यादा है क्योंकि इसके कोटे में इन अमीर देशों की भागीदारी ज्यादा है. शायद यही कारण है कि IMF के प्रबंध निदेशक के पद पर अब तक केवल यूरोपीय लोगों की नियुक्ति की गयी है।

15.4 विनिमय दर स्थिरिता बनाम व्यवस्थित फ्लोट

लम्बे समय तक अर्थषास्त्रियों एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के संस्थापको का यह मत था कि स्थिर विनिमय दर प्रणाली घटती–बढ़ती विनिमय दरों से बेहतर होती है। जैसा कि इस इकाई में पहले बताया जा चूका है, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के संस्थापकों का भी यही मत था। अतः उन्होने एक स्थिर विनिमय दर प्रणाली का प्रावधान किया था। तथापि, बदली हुई स्थितियों में विनिमय दरों में औपचारिक रूप से समायोजन किया जा सकता था। इस प्रणाली को समायोज्य पेग व्यवस्था के रूप में जाना जाता था। यह प्रणाली 1970 के दशक में भंग हो गयी और इसका स्थान एक नयी प्रणाली ने ले लिया जिसे व्यवस्थित फ्लोट प्रणाली के रूप में जाना जाता है।

15.4.1 समायोज्य–पेग व्यवस्था

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा यह प्रणाली ब्रेटन वुड्स सम्मेलन में अपनायी गयी और यह लगभग पच्चीस वर्षो तक चली। इस प्रणाली में निम्नलिखित गुण माने जाते थे–

1. विदेशी व्यापार की अनिश्चितताओं को दूर करती है।
2. निजी पूंजी के अन्तर्देशीय प्रवाह में मदद करती है।
3. विदेशी विनिमय में सट्टेबाजी को रोकती है।
4. मुद्रा स्फीति के आयात को रोकती है।

15.4.2 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की असफलता

सन् 1970 के दशक में समायोज्य–पेग व्यवस्था भंग हो गयी, जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की असफलता का सूचक थी। इस प्रणाली की समाप्ति का एक महत्वपूर्ण कारण अमेरिका में वियेतनाम युद्ध के वित्तीय के लिये सरकार की गलत नीतियों के कारण होने वाली मुद्रा स्फीति थी।

<u>बोध प्रश्न क</u>

1. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष क्या है?

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

2. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा निर्धारित किसी देश के कोटे से सम्बन्धित विभिन्न आयामों की सूची बनाइये?

   ....
   ....
   ....

....
....
....

3. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की कार्य प्रणाली के मुख्य पहलू क्या है?

....
....
....
....
....
....

15.5 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और अन्तर्राष्ट्रीय तरलता

प्रायः अन्तर्राष्ट्रीय तरलता का अर्थ अन्तर्राष्ट्री स्तर पर स्वर्ण और विदेशी विनिमय के संचय (कोश) से होता है। सितम्बर 1967 में अन्तर्राष्ट्री मुद्रा कोष के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स ने रियोडीजनीरो में अपनी वार्षिक बैठक में अन्तर्राष्ट्री तरलता की निरन्तर बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिये विशेष आहरण अधिकारों के रूप में एक नयी कोष परिसम्पत्ति का निर्माण करने का निर्णय लिया । तब से भुगतान शेष से उत्पन्न होने वाली अन्तर्राष्ट्री तरलता की मांग तीन स्त्रोतों से पूरा की जाती है। (1) विभिन्न देशों के सोने और विदेशी विनिमय के सरकारी कोश, (2) विभिन्न देशों के अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के पास सोने और विदेशी विनिमय के कोश, और (3) विशेष आहरण अधिकार। इस भाग में पहले अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या का अध्ययन किया जाएगा और इसके बाद अन्तर्राष्ट्री तरलता बढ़ाने के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रस्तावों पर संक्षेप में विचार किया जाएगा। क्योंकि विशेष आहरण अधिकारों का निमौण द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय तरलता बढ़ाने का सबसे मूलभूत उपाय रहा है इसलिये इस पर अन्त में अलग से विचार किया जाएगा।

15.5.1 अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या

द्वितीय विश्व यूद्ध के पच्श्रात अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पौंड स्टर्लिंग का महत्त्व कम हो गया और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के स्थान पर डालर विस्तृत रूप में स्वीकार्य मुद्रा के रूप में सामने आया ।

15.5.2 अन्तर्राष्ट्रीय तरलता बढ़ाने के प्रस्ताव

यह देखते हुए कि अन्तर्राष्ट्रीय तरलता अपेक्षित दर से नगण्य होने पर कुछ अर्थषास्त्रियों व अन्य विशेषज्ञों ने आमूल परिवर्तनवादी और सुधारवादी प्रस्ताव रखे ताकि अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या से निपटा जा सके। आमूल परिर्वतनवादी प्रस्तावों में से दो बहुत महत्वपूर्ण थे। इनमें से एक प्रस्ताव यह था कि समायोंज्य पेग प्रणाली को त्याग कर देना चाहिये और इसके स्थान पर नम्य विनिमय दर प्रणाली अपना लेनी चाहिये। इससे अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की मांग का घटना स्वाभाविक है और वर्तमान विदेशी विनिमय कोष अन्तर्राष्ट्री तरलता की इस घटी हुई मांग को आसानी से पूरा कर सकेगे।

15.5.3 विशेष आहरण अधिकारों की भूमिका (Roles of Special Drawing Rights)

1969 में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स ने विशेष आहरण अधिकार नामक एक नयी कोष परिसम्पत्ति का निर्माण करने का निर्णय अपनी वार्षिक बैठक में अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिये विषय आहरण अधिकार (S.D.Rs) नामक एक नयी कोष परिसम्पति का निर्माण करने का निर्णय लिया। इस निर्णय को लागू करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के करार–नियमों में 1967 में संषोधन किया गया।

15.6 सारांश

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष 40 वर्षों से भी अधिक समय से अस्तित्व में है। इसने अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को बढ़ाया है, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सहायता की है और सदस्य देशों की उनके भुगतान शेष असन्तुलन को ठीक करने में मदद की है। लेकिन यह विनिमय नियंत्रणों को समाप्त करने में असफल रहा। इसने विनिमय दर स्थितरा के लिये प्रयास किया लेकिन समायोज्य–पेग–प्रणाली, जिससे विनिमय दर में स्थिरता बनाये रखने की आषा की जाती थी अन्ततः 1970 की दशक के शुरू के वर्षो में ही टूट गयी।

15.7 उपयोगी शब्दावली

- समायोज्य–पेग–प्रणाली– स्थिर विनिमय दरों की प्रणाली जिसमें भुगतान शेष में मूलभूत असंतुलन की स्थिति में समायोजनों का प्रावधान है।
- अवमूल्यन–मुद्रा के सोने और या किसी विदेशी मुद्रा में रुप में वाह्य मूल्य में कमी।
- विनिमय नियत्रंण–वह प्रणाली जिसके अन्तर्गत विदेशी विनिमय के लेन–देन पर सरकार का नियंत्रण होता है।
- मुक्त फ्लोट–वह प्रणाली जिसमें विनिमय दर मुक्त रुप से घटती–बढ़ती है।
- सममूल्य–विनिमय दरें।
- विशेष आहरण अधिकार–अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा निर्मित एक कोष परिसम्पति।
- बहुपक्षीय भुगतान–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भुगतान की एक प्रणाली जिसमें किसी भी देश की मुद्रा अन्य सभी देशों को भुगतान करने के लिये प्रयोग की जा सकती है।

15.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 समायोज्य–पेग व्यवस्था का क्या अर्थ है? यह असफल क्यों हुई।

प्रश्न –2 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के विभिन्न उद्देश्य क्या हैं? ये कहाँ तक पूरे न किए जा सके?

प्रश्न –3 किन परिस्थितियों में विश्व ने व्यवस्थित फ्लोट प्रणाली को अपनाया?

प्रश्न –4 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की कार्य प्रणाली का वर्णन कीजिय?

प्रश्न –5 विशेष आहरण अधिकार क्या होते हैं?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)
- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकषन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)
- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीष कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, SBPD पब्लिकेशन 2016)
- प्रो0 शिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेशन 2017)
- एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
- के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
- शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016)
- एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

****

इकाई–16 विश्व बैंक

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 विश्व बैंक के उद्देश्य

16.3 विश्व बैंक के कार्य

16.4 विश्व बैंक की संक्रियाएं

16.4.1 ऋण देने के सामान्य नियम

16.4.2 संरचनात्मक समायोजन के लिये ऋण

16.4.3 स्थानीय मुद्रा में व्यय और अन्य समस्याएं

16.5 विश्व बैंक का योगदान

16.5.1 विश्व बैंक के कार्य

16.5.2 विश्व बैंक और भारत

16.6 भारत संक्षिप्त विवरण

16.7 वर्तमान परिदृष्य एवं परिणाम

16.8 सारांश

16.9 उपयोगी शब्दावली

16.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

16.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि–

- ❖ विश्व बैंक के उद्देश्य को बता सकेंगे,
- ❖ विश्व बैंक के विभिन्न कार्य समझ सकेंगे,
- ❖ विश्व बैंक के योगदान बता सकेंगे,
- ❖ विश्व बैंक की असफलताएं बता सकेंगे, तथा
- ❖ विश्व बैंक के संक्रियाओं का वर्णन कर सकें और इससे सम्बन्धित समस्या को पहचान सकें।

16.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निमाण और विकास बैंक (आई.बी.आर.डी.), जिसे बहुधा विश्व बैंक कहते है, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की एक पूरक संस्था के रूप में विश्व बैंक की स्थापना की गयी। इसकी स्थापना का निर्णय ब्रेटन बुड्स सम्मेलन में 1944 में लिया गया। विश्व बैंक ने 1946 में कार्य करना शुरू किया। इसका मुख्य उद्देश्य युद्ध से विध्वंसित अर्थव्यवस्थाओं के पुनर्निमाण में सहायता करने के लिये दीर्घकालीन विदेशी निवेश को बढ़ावा देना और अल्पविकसित अर्थ–व्यवस्थाओं को अपनी विकास की गति को तीव्र करने के लिये प्रोत्साहित करना था। विश्व बैंक की क्रियाएं केवल सदस्य देशों की सहायता करने तक ही सीमित रहनी थीं। इस इकाई में हम विश्व बैंक के उद्देश्यों, कार्यो तथा विकासशील देशों की प्रगति में इसके योगदान का अध्ययन करेंगे।

16.2 विश्व बैंक के उद्देश्य

विश्व बैंक के उद्देश्यों का वर्णन करार नियमों में स्पष्ट रूप से दिया गया है। ये निम्नलिखित हैं:

(1) युद्ध से विध्वंसित अर्थव्यवस्थाओं के पुनर्निमाण के लिये वित्त प्रबन्धः द्वितीय विश्व युद्ध में यूरोप के बहुत से देशों को उनके उद्योगों और आधारिक संरचना के विनाश से बहुत गम्भीर क्षति पहुँची थी;

(2) आर्थिक रूप से पिछड़े हुए देशों के विकास के लिये वित्त प्रबन्धन;

(3) विदेशी निजी निवेश को बढ़ावा;

(4) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दीर्घकालीन संतुलित संवृद्धि को बढ़ावा, और

(5) एक युद्ध कालीन अर्थव्यवस्था को सरलतापूर्वक एक शांति कालीन अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करने में सदस्य देशों की सहायता करना।

16.3 विश्व बैंक के कार्य

पिछले भाग में आपने विश्व बैंक के उद्देश्यो के विषय में ज्ञान अर्जित करने के पष्चात इनके कार्यो से अवगत होना आवष्यक है। इन कार्यो को मुख्यतया तीन षीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जाता है : (क) ऋण देना और निजी ऋणों के लिये गारण्टी देना,(ख) तकनीकी सहायता,और (ग) निजी निवेश को प्ररित करना।

16.3.1 ऋण देना और निजी ऋणों के लिये गारण्टी देना

विश्व बैंक साधारणतया कोषां को विकसित देशों से विकायषील देशों की ओर प्रवाहित करता है, हालांकि इसके द्वारा एक विकसित देश से दूसरे विकसित देश को साधनों का हस्तांतरण भी किया जा सकता है। विश्व बैंक निम्नलिखित प्रकार से सदस्य देशों को ऋण प्रदान करता है:

1. विश्व बैंक के अपने साधनों में से ऋण
2. विश्व बैंक के उधार लिये साधनों में से ऋण
3. विश्व बैंक की गारण्टी पर ऋण

16.3.2 निजी विदेशी विनियोग को प्रोत्साहित करना

विश्व बैंक के संस्थापकों को आशा थी कि यह बैंक निजी ऋणदाता देशों और ऋण लेने वाले देशों के बीच पूंजी के प्रत्यक्ष प्रवाह को प्रेरित करेगा। विश्व बैंक ने अपनी चौथी वार्षिक रिर्पोट में इस उद्देश्य को दोहराया। इसमें कहा गया था कि ''दीर्घ काल में केवल निजी पूंजी का निरन्तर प्रवाह ही विश्व की विकास आवश्यकताओं में महत्वपूर्ण योगदान करने के लिये पर्याप्त मात्रा में वाह्य सहायता प्रदान कर सकता है''

16.4 विश्व बैंक की संक्रियाएं

विश्व बैंक की संक्रियाएं मोटे तौर पर ऋण देने के कुछ सामान्य नियमों द्वारा निर्देशित की जाती हैं। लेकिन विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत विश्व बैंक ऋण लेने वाले देशों में संरचनात्मक समायोजन के लिये भी ऋण प्रदान करता है। ऐसी विशेष परिस्थितियों में किसी परियोजना की स्थानीय लागत के एक भाग के वित्त प्रबन्ध के लिये दिये जाने वाले ऋण विवाद का विषय रहे हैं। इसलिये हम यह भी देखने का प्रयत्न करेगें कि इन ऋणों के लिये कोई मूलाधर है।

16.4.1 ऋण देने के सामान्य नियम

विश्व बैंक प्रत्यक्ष ऋण देते समय या निजी ऋणों के लिये गारण्टी देते समय प्रायः निम्नलिखित नियमो का पालन करता है ताकि ऋण दी गई निधियों को अनावश्यक जोखिम से बचाया जा सके:

(1) एक देश को विश्व बैंक से या उसकी गारण्टी पर निजी विदेशी निवेशकर्ताओं से जो ऋण मिल सकता है उसकी राशि ऋण प्राप्त करने वाले देश की अभिदत्त पूंजी द्वारा सीमित नहीं होती। तथापि विश्व बैंक ऋण लेने वाले और गारंटी देने वाले की साख को ध्यान में रखता है। इससे अन्य बातों के साथ–साथ यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि ऋ़ण लेने वाला देश इस योग्य है कि वह अपने विदेशी विनिमय अर्जन से ऋण भार दायित्वों को पूरा कर सकता है।

(2) विश्व बैंक असैनिक उत्पादक परियोजनाओं के लिये ऋण देता है। किसी भी परिस्थिति में अनुत्पादक कार्यो के लिये ऋण नहीं दिया जाता हैं। यद्यपि विश्व बैंक दावा करता है कि वह ऋणों का वायदा करते समय केवल आर्थिक कारकों को ही ध्यान में रखता है लेकिन इसके आलोचक इस पर यह आरोप लगाते हैं कि ऋणों की स्वीकृत देते समय बहुधा राजनैतिक कारकों को भी ध्यान में रखा जाता है।

(3) विश्व बैंक सदस्य सरकारों को या उनकी गारंटी पर अन्य एजेन्सियों को विषेषे परियोजनाओ के लिये ऋण देता है। एक परियोजना के लिये दिये गये ऋण का प्रयोग किसी अन्य कार्य के लिये नहीं किया जा सकता । इस प्रकार के प्रतिबन्धों को दूर करने के लिये प्रोग्राम ऋण पद्धति बनायी गयी। परियोजना के प्रोग्राम बनाये जा सकते हैं और विशेष उद्देश्यों के लिये प्रदान किये गये कोषां से परिकलित विदेशी विनिमय या बचत के अन्तराल को पूरा किया जा सकता हैं।

(4) विश्व बैंक उस परियोजना की वांछनीयता और व्यवहार्यता पर एक लिखित रिपोर्ट मांगता है, जिसके लिये ऋण मांगा जा रहा है। परियोजना की

वित्तीय सुदृढ़ता के बारे में संतुष्ट हो जाने के बाद विश्व बैंक ऋण स्वीकृत करता है या उसकी गारण्टी देता है। बैंक यह भी सुनिश्चित करता है कि परियोजना से इतना प्रतिफल अवष्य मिलता हो जिससे ऋण भार दायित्वों को पूरा करने के बाद कुछ बचत होती हो और इसके साथ–साथ यह परियोजना ऋण लेने वाले देशों की आर्थिक संवृद्धि में भी सहायक हो।

(5) सदस्य देश को ऋण देने के लिये सहमत होने से पहले बैंक को यह भी देखना चाहिये कि मौजूदा बाजार स्थितियों में ऋण लेने वाला देश उचित षर्तों पर ऋण प्राप्त नहीं कर सकता है। बैंक सामान्यतया परियोजना के विदेशी विनिमय से भाग को पूरा करने के लिये ही ऋण देता है। केवल विशेष परिस्थितियों में ही विश्व बैंक परियोजना की स्थानीय लागत के एक भाग के लिये वित्त प्रदान कर सकता है। क्योंकि विश्व बैंक के ऋण सामान्यतया विदेशी विनिमय में होते है, इसलिये यह इस बात पर जोर देता है कि ऋण की अदायगी और उस मुद्रा में हो जिसमें ऋण लिया गया था।

(6) विश्व बैंक को ऋण की राषि और षर्तें निर्धारित करने का अधिकार है। लेकिन ब्याज की दर व अन्य शुल्क उचित होने चाहिये और भुगतान की प्रणाली परियोजना के लिये उपयुक्त होनी चाहिये। विश्व बैंक ऋण देते समय जो शर्तें लगाता है उसमें यह शर्त केवल यही है कि ऋण लेने वाला देश ऋण की राशि बैंक के सदस्य देशों में ही खर्च करेगा।

16.4.2 संरचनात्मक समायोजन के लिये ऋण

विश्व बैंक ने 1979–80 में 'संरचनात्मक समायोजन ऋण' (Structrural Adjustment Lending) नीति शुरू की जो इस प्रकार बनायी गयी थी कि उन सरकारों को समर्थन दिया जा सके (1) जिन्होंने ऐसे समर्थन के लिये प्रर्थाना की थी और (2) जिन्होंने यह माना था कि बिगड़ती हुई भुगतान षेष स्थिाति को सुधारने के लिये ऐसा उपाय करना अत्यावष्यक है जो उनकी अर्थव्यवस्थाओं की उत्पादक क्रियाओं के ढ़ाँचे में समायोजन कर सकें। ऐसे ऋण देने के संबंध में विश्व बैंक अनेक कठोर षर्तें लगाता है। इन षर्तों के अर्न्तगत सरकारी नीतियों में बहुत बड़े परिवर्तनों की अपेक्षा की जाती हैं।

16.4.3 स्थानीय मुद्रा में व्यय और अन्य समस्याएं

विश्व बैंक की संक्रियाएं के अनुसार उधार देने के नियमो के पालन में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ है जिसके संबंध में हमने इस भाग में पहले विचार किया है। पहली कठिनाई है बैंक द्वारा उधार देने में पक्षपात, सामान्य परिस्थितियों में बैक किसी परियोजना की स्थानीय पूंजी की आवश्यकता का वित्त प्रबन्ध नही करेगा। लेकिन ऐसी नीति का अर्थ होगा बैंक द्वारा उधार देने में पक्षपात। विश्व के सबसे कम विकसित देश जिन्हें अधिकतम बाह्य सहायता की आवश्यकता होती हैं, बहुधा अपनी परियोंजनाओं के लिये आवश्यक घरेलू साधन जुटा नहीं पाते। इसलिये विश्व बैंक उन्हें पूंजीगत उपकरणों के आयात के लिये ऋण देने से मना कर देता है। इसकी तुलना से मध्यम आय वर्ग वाले विकासशील देशों को परियोजना के घरेलू निवेश के लिये साधन जुटाने में अधिक कठिनाई नहीं होती। इससे वे आसानी से विश्व बैंक से ऋण लेने के हकदार बन जाते हैं। इस प्रकार, विश्व बैंक की स्थानीय मुद्रा में ऋण देने के लिये विशेष परिस्थितियों की धारा पर जोर देना निश्पक्षता के मानदण्ड का उल्लंघन है।

बहुपक्षीय प्रणाली ऐसी प्रणली है जिसमें सभी मुद्राएं परिवर्तनीय हैं और किसी भी मुद्रा में लिये गये ऋण का प्रयोग किसी भी देश से किये गये आयातो के भुगतान के लिये किया जा सकता है। अतः ऋण लेने वाले देश पर इस तरह का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता कि उसे केवल उसी देश से आयात करना पड़ेगा जिस देश कि मुद्रा में उसने ऋण लिया हैं। तथापि, व्यवहार में मुद्राओं की परिवर्तनीयता के अभाव और बहुपक्षीयता की अनुपस्थिति में विश्व बैंक से ऋण प्राप्त करने वाले देशों को बहुधा केवल उन्हीं देशों से वस्तुओं का आयात करना पड़ता है जिनकी मुद्राओं में ऋण प्रदान किये गये हैं। इस प्रकार, दूसरी कठिनाई यह है कि यद्यपि विश्व बैंक ने तो ऋण कि राषि को किसी विशेष देश में खर्च करने की षर्त नहीं रखी है, लेकिन व्यवहार में, अधिकांश सहायता बहुपक्षीय के अभाव में ऋण देने वाले देश से बाँधा आती है। अन्तिम समस्या यह है कि ऋण लेने वाले देश कभी–कभी तीव्र विदेशी विनमय की समस्या के कारण अपने वायदों को पूरा करने में असफल रहता है। यह जरूरी नही हैं कि इस यह असफलता उसकी अर्थव्यावस्था के ठीक प्रकार कार्य करने का परिणाम हो। वास्तव में, किसी देश के भुगतान कोंष में अधिशेष या घाटे का निर्धारण बहुधा ऐसे कारकों से होता है, जो उस देश के नियंत्रण के लिये आवेदन कर सकता है। यदि विश्व बैंक इस बात से संतुष्ट है कि जिस आधार पर ऋणों के आदायगी कि शर्तों में छूट मांगी गयी है वह उचित है और यह छूट उसके सदस्य बैंक के अन्य सदस्यों और स्वयं विश्व बैंक के हित में है तो वह दो कार्य कर सकता है–(क) ऋण भार का भुगतान उधार लेने वाले देश की मुद्रा में स्वीकार कर सकता है और इसे अपनी मुद्रा को उचित षर्तों पर पुनर्क्रय करने की सलाह देता है, और (ख) ऋणों के परिशोधन की षर्तों में संशोधन कर सकता है या ऋण की अवधि बढ़ा सकता है या दोनो बातें कर सकता है।

बोध प्रश्न क

1. विश्व बैंक के मूल उद्देश्य बताइये

....
....
....
....
....
....

2. बताइये कि निम्नलिखित कथनों में कौन सही है और कौन गलत।

   (i) विश्व बैंक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा की एक पूरक संस्था है।

   (ii) विश्व बैंक सैन्य परियोजनाओं के लिये वित्त प्रदान करता है।

   (iii) विश्व बैंक से युद्ध से विध्वंसित अर्थव्यवस्थाओं के पुनर्निमाण और आर्थिक रुप से पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्थाओं के विकास के लिये निजी विदेशी साधनों को प्रोत्साहित करने की अपेक्षा की जाती है।

   (iv) विश्व बैंक की स्थापना के पीछे निजी विदेशी पूंजी के प्रवाह को अपने ऋणों से प्रतिस्थापित करने का इरादा था।

   (v) विश्व बैंक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दीर्घकालीन संतुलित संवृद्धि को बढ़ाता है।

(vi) विश्व बैंक विकसित देशो को शांतिकालीन अर्थव्यवस्थाओं को युद्धकालीन अर्थव्यवस्थाओं में आसानी से परिवर्तित करने में सहायता करता है।

(vii) विश्व बैंक अपने सदस्य देशों को अनुदान नहीं देता।

16.5 विश्व बैंक का योगदान

अपनी स्थापना के पश्चात विश्व बैंक ने शुरू कि अवधि में उन औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओ के पुनर्निमाण की ओर अधिक ध्यान दिया जो दूसरे विश्व युद्ध से विध्वंसित हो गयी थीं। इस कार्य को पूरा करने के बाद, विश्व बैंक ने अपेक्षाकृत अल्पविकसित देशों की विकास आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिया। आर्थिक रूप में पिछड़ी इन अर्थव्यवस्थाओं में विकास का कार्य वास्तव में बहुत बड़ा है और इस दृष्टि से विश्व बैंक के साधन बहुत कम हैं। यद्यपि विश्व बैंक ने अपने सीमित साधनों में से उन देशों को ऋण दिये जिनकी परियोजनाएं आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ प्रतीत होती थीं और जो उचित ब्याज की दरों और उचित शर्तों पर किसी अन्य स्त्रोंत से ऋण प्राप्त नहीं कर सकते थें। परन्तु विश्व बैंक का वास्तविक महत्व इसके द्वारा अपने साधनों में से दिये जाने वाले ऋणों से नहीं है बल्कि उन ऋणपत्रो (bond) से है जो यह विकसित पूंजी बाजारों में बेचता है ताकि ऋण देने के लिये कोष एकत्र कर सके।इस तरह विश्व बैंक एक ऐसा प्रमुख माध्यम बन गया है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार और अन्य वित्तीय बाजारों तक विकासशील देशों की पहुँच हो गयी है। इसका अत्यधिक महत्व है, खास तौर से उन देशों के लिये जिनकी व्यावसायिक पूंजी पर निर्भरता बहुत है जो विश्व अर्थव्यवस्था में उतार–चढ़ावों के प्रभाव से बहुत प्रभावित होते है।

16.5.1 विश्व बैंक के कार्य

वर्तमान में विश्व बैंक सदस्य देशों खासकर विकासशील देशों में, विकास कार्यों के लिए ऋण मुहैया कराने में मुख्य भूमिका निभा रहा है। बैंक विभिन्न विकास परियोजनाओं के लिए 5 से 20 वर्ष की अवधि के लिए ऋण उपलब्ध कराता है।

1. बैंक सदस्य देशों को उसके शेयर के 20% तक प्रदत्त पूंजी के रूप में ऋण दे सकता है।

2. बैंक सदस्यों से संबंधित निजी निवेशकों को अपनी खुद की गारंटी पर ऋण प्रदान करते हैं लेकिन निजी निवेशकों को अपने मूल देश से इसके लिए अनुमति लेने की जरूरत होती है। बैंक बतौर सेवा शुल्क 1% से 2% भी सदस्य देशों से लेता है।

3. ऋण सेवा, ब्याज दर, शर्तें और नियम के बारे में फैसला विश्व बैंक खुद करता है।

4. आमतौर पर बैंक एक खास परियोजना के लिए ऋण प्रदान करता है जिसकी विधिवत प्रस्तुति सदस्य देश द्वारा बैंक में की जाती है।

5. ऋण लेने वाले देश को ऋण का पुनर्भुगतान या तो आरक्षित मुद्रा या जिस मुद्रा में ऋण मंजूर किया गया था, उसमें करना होता है।

16.5.2 विश्व बैंक और भारत

भारत ने गरीबी को कम करने, बुनियादी ढांचा और ग्रामीण विकास आदि जैसे क्षेत्रों में चलाई जाने वाली अलग–अलग परियोजनाओं के लिए विश्व बैंक से ऋण लिया है। आईडीए से मिलना वाला पैसा भारत सरकार के लिए सबसे रियायती बाहरी ऋणों में से एक है और सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए चलाई जाने वाली सामाजिक क्षेत्र की परियोजनाओं में इसका बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है। विश्व बैंक से भारत को सबसे पहला ऋण 1948 में 68 बिलियन अमेरिकी डॉलर का दिया गया था। विश्व बैंक का मार्च 2011 तक भारत के ऊपर बकाया ऋण 11.28 अमेरिकी डॉलर था और IDA का ऋण 27 बिलियन अमेरिकी डॉलर था।

विश्व बैंक ने अफ्रीका, एशिया और लातिन अमेरिका के विकासशील देशों को अपने ऋण का 75% दिया है जबकि यूरोप के विकसित देशों को सिर्फ 25%। लेकिन फिर भी ज्यादातर देश यही मानते हैं कि विकसित देशों का विश्व बैंक के ऊपर अधिक प्रभाव है क्योंकि ये देश इस बैंक की कुल संपत्ति में सबसे बड़े हिस्सेदार हैं।

16.6 भारत संक्षिप्त विवरण

1.21 अरब की जनसंख्या और विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाले भारत की हाल की संवृद्धि तथा इसका विकास हमारे समय की अत्यंत उल्लेखनीय सफलताओं में से है। स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद से बीते 70 वर्षों से भी अधिक समय के दौरान भारत के कृषि–क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रांति आई है, जिसकी वजह से काफी समय से अनाज के निर्यात पर निर्भर यह देश कृषि के वैश्विक पॉवर हाउस में बदल गया है और आज अनाज का शुद्ध निर्यातकर्ता है। औसत आयु बढ़कर दोगुने से भी अधिक हो गई है, साक्षरता की दर में चौगुनी बढ़ोतरी हुई है, **स्वास्थ्य**–संबंधी परिस्थितियों में सुधार हुआ है और अच्छे खासे मध्य वर्ग का आविर्भाव हुआ है। आज भारत औशधियों, इस्पात, सूचना तथा अंतरिक्ष–संबंधी प्रौद्योगिकियों के क्षेत्रों में विश्व–स्तर की जानी–मानी कंपनियों का घर बन चुका है तथा इसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसी आवाज माना जाता है, जो इसके विशाल आकार और संभावनाओं के अनुरूप है।

ऐतिहासिक बदलाव आ रहे हैं, जिनसे इसे 21वीं सदी का मजबूत देश बनाने के लिए नए–नए अवसर पैदा हो रहे हैं। जल्दी ही भारत विश्व का सबसे विशाल और अत्यंत युवा श्रमशक्ति वाला देश बन जाएगा। साथ ही देश में शहरीकरण की व्यापक लहर उठ रही है और प्रति वर्ष लगभग 1 करोड़ लोग रोजगार तथा अवसरों की तलाश में कस्बों और शहरों की ओर रुख कर रहे हैं। यह इस सदी का विशालतम ग्रामीण और शहरी प्रवासन (माइग्रेशन) है।

आने वाले ऐतिहासिक बदलावों की वजह से देश एक अदभुत मोड़ पर पहुंच गया है। भारत अपनी श्रमशक्ति की उल्लेखनीय सामर्थ्य का किस प्रकार से विकास करता है और अपने बढ़ते हुए नगरों व कस्बों की संवृद्धि के लिए किस तरह की नई योजनाएं तैयार करता है इन्हीं चीजों से आने वाले समय में देश और इसके निवासियों का भविश्य अधिकतर निर्धारित होगा।

बढ़ती हुई उम्मीदों को पूरा करने के लिए रोजगार के अवसर पैदा करने, रिहायशी मकानों और बुनियादी सुविधाओं (इंफ्रास्ट्रक्चर) का गठन करने के लिए

जरूरी पूंजी निवेश की जरूरत होगी, जिनसे कस्बे तथा शहर अधिक रहने योग्य तथा हरे–भरे हो जाएंगे।

भारत की 40 करोड़ से अधिक जनता या अभी तक गरीबी के चंगुल में फंसे विश्व के एक–तिहाई गरीबों–का उत्थान करने में समर्थ संवृद्धि अर्जित करना भारत के लिए मुख्य बात होगी। और, हाल ही में (अकेले 2005–2010 के बीच) गरीबी के चंगुल से छूटने वाले 5.3 करोड़ लोगों में से अनेक के दोबारा इसमें फंस जाने की संभावना है। वास्तव में जनसंख्या में वृद्धि हो जाने से भारत के कुछ एक सर्वाधिक गरीब राज्यों में वस्तुतः पिछले वर्षों में गरीबों की कुल संख्या बढ़ी है।

राज्यों, जातियों तथा स्त्री–पुरुषों के बीच भेदभाव समेत सभी स्तरों पर मौजूद समस्त प्रकार की असमानताओं पर ध्यान देना होगा। भारत के सर्वाधिक गरीब राज्यों में गरीबी की दर अत्यंत विकसित राज्यों की तुलना में तीन से चार गुना अधिक है। जबकि भारत की वार्षिक औसत प्रति व्यक्ति आय वर्ष 2011 में $1,410 थी (विश्व के मध्यम आय वर्ग के देशों में सर्वाधिक गरीब देशों के बीच स्थान) – उत्तर प्रदेश में, जिसकी जनसंख्या ब्राजील से भी अधिक है, यह मात्र $436 और भारत के सर्वाधिक गरीब राज्यों में से एक बिहार में केवल $294 थी। ऐसे वर्गों को मुख्य धारा में लाने की, जिससे ये आर्थिक संवृद्धि के लाभों का उपयोग कर सकें, और महिलाओं को (विश्व की आधी जनसंख्या) अधिकारिता देने की जरूरत होगी, ताकि उन्हें देश के सामाजिक–आर्थिक ताने–बाने में अपना न्यायोचित स्थान मिल सके।

शिक्षा तथा कुशलताओं के स्तरों को अधिकाधिक उन्नत करना विश्व में, जिसका तेजी से ग्लोबलाइजेशन हो रहा है, समृद्धि को बढ़ावा देने के लिए महत्त्वपूर्ण होगा। हालांकि प्राथमिक शिक्षा का काफी हद तक सर्वव्यापीकरण (यूनिवर्सलाइज) हो चुका है, अधिगम (लर्निंग) संबंधी परिणाम काफी नीचे हैं। काम करने की आयु वाली जनसंख्या का 10% से भी कम माध्यमिक शिक्षा पूरी कर पाया है और माध्यमिक शिक्षा पूरी करने वालों में आज के बदलते हुए रोजगार बाजार में प्रतिस्पर्द्धा का सामना करने लायक जानकारी और कुशलता की कमी है।

स्वास्थ्य–संबंधी देखभाल भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण होगी। हालांकि भारत के स्वास्थ्य–संबंधी संकेतकों में सुधार हुआ है, माताओं और बच्चों की मृत्यु दरें बहुत नीचे हैं और कुछ राज्यों में इनकी तुलना विश्व के सर्वाधिक गरीब देशों के आंकड़ों से की जा सकती है। भारत के बच्चों में कुपोषण विशेष रूप से चिंता का विषय है, जिनके कल्याण से भारत के प्रतीक्षित जनसांख्यिकीय लाभांश (डेमोग्रैफिक डिविडेंड) का स्तर निर्धारित होगा। इस समय विश्व के कुपोषण का शिकार बच्चों का 40% (21.7 करोड़) भारत में है।

देश की अवसंरचना–संबंधी आवश्यकताएं काफी अधिक हैं। तीन ग्रामवासियों में से एक की सभी मौसमों में खुली रहने वाली सड़क तक पहुंच नहीं है और पांच राष्ट्रीय राजमार्गों में से एक ही चार गलियारों वाला (फोर लेन) है। बंदरगाहों और हवाईअड्डों की क्षमता पर्याप्त नहीं है तथा सामान्यतया रेलगाड़ियां की गति भी तेज नहीं है। अनुमान है कि 30 करोड़ लोग राष्ट्रीय बिजली ग्रिड से नहीं जुड़े हैं और जो जुड़े भी हैं उन्हें अक्सर ही आपूर्ति में बाधाओं का सामना करना पड़ता है। रोजगार के अवसर पैदा करने के लिहाज से महत्त्वपूर्ण विनिर्माण क्षेत्र अभी छोटा है और पूरी तरह विकसित नहीं है।

तथापि, भारत के अनेक राज्य देश के सामने काफी समय से मौजूद चुनौतियों का सामना करने के लिए नए और ठोस प्रयास करने की दिशा में पहल कर रहे हैं और चहुंमुखी विकास की दिशा में भारी प्रगति कर रहे हैं। इनकी सफलताएं आगे बढ़ने के लिए देश का मार्गप्रशस्त कर रही हैं, जिससे पता चलता है कि सर्वाधिक गरीब राज्य अत्यंत खुशहाल राज्यों से सीखकर क्या कुछ नहीं कर सकते।

आज भारत के पास अपने 1.21 अरब नागरिकों के रहन–सहन के स्तर में सुधार करने तथा सच्चे अर्थों में समृद्धिशाली भविष्य की नींव डालने के विरले अवसर सुलभ हैं। ऐसा भविष्य जिसका देश और इसकी आने वाली पीढ़ियों पर प्रभाव पड़ेगा

बोध प्रश्न ख

1. विश्व बैंक के तीन मुख्य कार्य बताइये।

....
....
....
....
....
....

2. सदस्य देश विश्व बैंक से या उसकी गारंटी पर वित्तीय सहायता किस तरह से प्राप्त करते हैं?

....
....
....
....
....
....

3. बताइये कि निम्नलिखित कथनों में कौन सही है और कौन गलतः

(i) विश्व बैंक विकसित देशों से विकासशील देशों को केवल निधियों के हस्तांतरण को ही प्रवाहित करता है।

(ii) बैंक के अपने साधनों में प्रदत्त पूंजी व उसकी अपने पास रखी गयी आय शामिल है।

(iii) विश्व बैंक के पास की अभिदत्त पूंजी की सारी राषि उधार देने के लिये होती है।

(iv) विश्व बैंक अपने सदस्यों को साधरणतया विदेशी मुद्राओं में प्रत्यक्ष ऋण प्रदान करता है।

(v) विश्व बैंक अपने ऋणों में विविधता लाने की नीति का अनुसरण करता है।

(vi) विश्व बैंक निजी ऋण लेने वालों को निःषुल्क गारंटी सेवा प्रदान करता है।

(vii) विश्व बैंक सदस्य देशों को वित्तीय सहायता के अतिरिक्त अन्य कोई सेवा प्रदान नहीं करता है।

(viii) विश्व बैंक निजी निवेश को प्रेरित करने में बहुत सफल हुआ है।

16.7 वर्तमान परिदृष्य एवं परिणाम

भारत के लिए नई कंट्री पार्टनरशिप स्ट्रैटेजी अगले चार वर्षों (2013–2017) में भारत को विश्व बैंक ग्रुप की सहायता का मार्गदर्शन करेगी। सरकार के साथ गहन सलाह–मशविरे और नागरिक संगठनों तथा निजी क्षेत्रों से प्राप्त जानकारी की मदद से विकसित इस कार्यनीति से भारत को "अधिक तेजी से, व्यावहारिक और अधिक चहुंमुखी संवृद्धि" अर्जित करने के लिए आधारशिलाएं रखने में मदद मिलेगी, जिसकी रूपरेखा सरकार की 12वीं पंचवर्षीय योजना में दी गई है।

विश्व बैंक ग्रुप वित्त, परामर्शदात्री सेवाओं और नॉलेज (ज्ञान) का समेकित पैकेज उपलब्ध कराकर भारत की मदद करेगा ऐसा पैकेज, जिसे अलग–अलग राज्यों की जरूरतों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है। नई कार्यनीति की एक मुख्य विशेषता है – कम आमदनी वाले और विशेष श्रेणियों के राज्यों को दी जाने वाली सहायता में उल्लेखनीय परिवर्तन, जिनमें भारत के अनेक गरीब और अभावग्रस्त लोग रहते हैं।

यह गरीबी दूर करने तथा साझा समृद्धि में बढ़ोतरी करने वाले इस संस्था के नए वैश्विक उद्देश्यों को समेकित करने वाली विश्व बैंक ग्रुप की पहली देश रणनीति (कंट्री स्ट्रैटेजी) है। इसमें दो परिदृश्य (सेनैरिओ) प्रस्तुत किए गए हैं, जिनमें अगले 17 वर्षों में संवृद्धि, गरीबी में कमी और समृद्धि के लिए भारत की संभावनाओं को प्रदर्शित किया गया है। "2030 के महत्त्वाकांक्षी परिदृश्य" में भारत की संवृद्धि की औसत दर 8.2% है और इसमें अंतिम दशक के उत्तरार्द्ध के दौरान आर्थिक संवृद्धि बेहतर कार्य–प्रदर्शन करने वाले राज्यों की तरह चहुंमुखी है। संभावना काफी व्यापक है, गरीबी 29.8% (2010) से घटकर 2030 तक 5.5% रह जाएगी तथा ऐसे लोगों की भागीदारी, जिनके दोबारा गरीबी के चंगुल में फंसने की कोई आशंका नहीं रहेगी, 19.1% से बढ़कर 41.3% हो जाएगी। अगर भारत का विकास संवृद्धि को अधिक चहुंमुखी किए बिना होता है, जैसा कि 2005 से 2010 के बीच हुआ था, तो भारत में गरीबी में 2030 तक केवल 12.3% की गिरावट ही आएगी।

नई कार्यनीति के अंतर्गत विश्व बैंक ग्रुप की वित्तीय सहायता के अगले पांच वर्षों तक $3 अरब से लेकर $5 अरब के बीच रहने की आशा है। 60% वित्तीय सहायता राज्य सरकार द्वारा समर्थित परियोजनाओं को दी जाएगी। इसका आधा (या सकल लेंडिंग का 30%) कम आय वाले या विशेष श्रेणी के राज्यों को दिया जाएगा।

अगले पांच वर्षों में विश्व बैंक ग्रुप तीन मुख्य क्षेत्रों पर ध्यान देगाः एकीकरण (इंटेग्रेशन),ग्रामीण–शहरी रूपांतरण और अंतर्वेशन (इन्क्लूजन)। इन क्षेत्रों से संबंधित समान विषय होंगेः बेहतर शासन, पर्यावरणीय व्यावहारिकता, निजी क्षेत्र और स्त्री–पुरुष समानता।

- **एकीकरण :** भारत की विशालकाय अवसंरचना की आवश्यकताओं पर अकेले सार्वजनिक निवेशों के जरिये ध्यान नहीं दिया जा सकता। कार्यनीति में अवसंरचना में सार्वजनिक और निजी दोनों ही प्रकार के निवेशोँ में सुधार करने पर ध्यान दिया जाएगा। उदाहरण के लिए, आर्थिक संवृद्धि के लिए महत्तवपूर्ण बिजली क्षेत्र की क्षमता का बड़े पैमाने पर विस्तार करने तथा बिजली के उत्पादन, ट्रांसमिशन और वितरण की विश्वसनीयता में सुधार करने की जरूरत होगी। अत्यंत सक्रिय विनिर्माण क्षेत्र के लिए विशेषकर लघु और मझले आकार के उद्यम, जो रोजगार पैदा करने के लिहाज से महत्त्वपूर्ण हैं – श्रम कानूनों में सुधार करने तथा भूमि और वित्त तक पहले से बेहतर पहुंच बनाने की जरूरत होगी। बेहतर एकीकरण का परिणाम भारतीय राज्यों के बीच और अधिक संतुलित संवृद्धि के रूप में निकलेगा, जिससे कम आय वाले राज्यों को तेजी से विकसित होते उनके पड़ोसियों के साथ तेजी से आगे बढ़ने में मदद मिलेगी।
- **ग्रामीण :** शहरी रूपांतरणः "रूपांतरण" नई कार्यनीति के दृष्टिकोण में सबसे बड़े बदलाव का प्रतिनिधित्व करता है। सुव्यवस्थित शहरीकरण से भारत में उन 60 करोड़ लोगों को अनगिनत लाभ पहुंच सकते हैं, जिनके वर्ष 2031 तक भारत में शहरों में रहने का अनुमान है। तदनुसार, नई कार्यनीति का लक्ष्य ग्रामीण इलाकों से शहरों में स्थानांतरण को संवृद्धि और अंतर्वेशन (इन्क्लूजन) के लिहाज से यथासंभव उत्पादक बनाने और शहरी इलाकों, विशेषकर दूसरे स्तर के (सेकंडरी) नगरों में रहन–सहन का सुधार करने में भारत की मदद करना है, जहां जनसंख्या में अच्छी खासी बढ़ोतरी हो रही है। साथ ही, देश के आर्थिक और सामाजिक ताने–बाने में कृषि के सतत महत्व को देखते हुए कार्यनीति से भारत को कृषि की उत्पादकता बढ़ाने की दिशा में काम करने में मदद मिलेगी।
- **अंतर्वेशन (इन्क्लूजन) :** आर्थिक एकीकरण और ग्रामीण–शहरी रूपांतरण से भारत की जनसंख्या के एक विशाल भाग को मानव विकास तथा उन नीतियों पर सशक्त रूप से ध्यान देने पर ही लाभ पहुंच सकता है, जिनसे संवृद्धि को सर्वांगीण बनाने में मदद मिलती है। विश्व बैंक ग्रुप पोषण में सुधार करने के लिए पोषण–संबंधी नीति के साथ–साथ इसकी कार्यप्रणालियों व क्षमताओं को मजबूत बनाने के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों की मदद करेगा। यह शिक्षा में मुख्य रूप से माध्यमिक और तृतीयक स्तरों पर शिक्षा में सुधार करने के लिए सरकारी प्रयासों में मदद करेगा। अभावग्रस्त बच्चों की शिक्षा तक पहुंच बनाने, लड़कियों को माध्यमिक शिक्षा में बनाए रखने और उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में अवसर सुनिश्चित करने पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाएगा। यह वित्त तक पहुंच में सुधार तथा गैर–औपचारिक क्षेत्र में कार्यरत 90% से अधिक श्रमशक्ति के लिए सामाजिक सुरक्षा कवरेज का विस्तार करने के लिए भी काम करेगा।

परिणाम

विश्व बैंक ग्रुप द्वारा विगत में भारत की विकास–संबंधी कार्यसूची को दिए गए समर्थन से अनेक क्षेत्रों में परिणामों को सुधारने में अंशदान हुआ है। ऐसे कुछ परिणामों का उल्लेख नीचे किया जा रहा हैः

2001 और 2009 के बीच भारत के सर्व शिक्षा अभियान में स्कूल न जाने वाले लगभग दो करोड़ बच्चों, विशेषकर लड़कियों तथा सामाजिक दृष्टि से अभावग्रस्त

परिवारों के बच्चों को दाखिला दिया गया। 2009 तक स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या घटकर लगभग 81 लाख रह गई। आज भारत के 98% से अधिक बच्चों को अपने घरों से एक किमी. की दूरी के भीतर प्राइमरी स्कूल सुलभ है। आज अधिगम (लर्निंग) की क्वालिटी में सुधार करने, बच्चों को स्कूलों में बनाए रखने और यह सुनिश्चित करने पर ध्यान दिया जाता है कि अधिकाधिक बच्चों की माध्यमिक शिक्षा तक पहुंच हो और वे इसे पूरा कर सकें।

चुनी हुई संस्थाओं में व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए विश्व बैंक की सहायता से स्कूली शिक्षा पूरी करने वाले पहले से अधिक बच्चों को रोजगार पाने में मदद मिली है और इनकी संख्या 2006 में मात्र 32% से बढ़कर 2011 में 60% से अधिक हो गई। इसके बावजूद, विशेष रूप से ग्रामीण इलाकों में भारत के युवाजन को बड़ी संख्या में उन कुशलताओं से–ऐसी कुशलताएं, जो औपचारिक या गैर–औपचारिक श्रम बाजार की मांगों से बेहतर ढंग से मेल खाती हैं– सशक्त बनाने से उन्हें शहरी इलाकों में रोजगार पाने में मदद मिलेगी, जहां अच्छे पारिश्रमिक पर रोजगार उपलब्ध है।

ग्रामीण आजीविका कार्यक्रमों से 90,000 गांवों में 3 करोड़ से अधिक गरीब परिवारों को 12 लाख स्वयंसेवी समूहों में संगठित किया जा चुका है। स्वयंसेवी समूहों में भाग लेने वालों में 90% महिलाएं हैं। अकेले आंध्र प्रदेश में स्वयंसेवी समूहों में शामिल एक करोड़ महिलाओं ने अपनी आमदनी में 115% की वृद्धि होते देखी है। इन समूहों के सदस्यों ने 2011 में $1.1 अरब से अधिक की बचत की और ऋण तक उनकी पहुंच में 200% की वृद्धि हुई और यह $5.8 अरब (2000–09) पर पहुंच गया। सहायता के परिणामस्वरूप स्वयं–सेवी समूहों द्वारा निर्मित उत्पादों की कीमत में 30–40% की वृद्धि हुई है और इस प्रकार भारत में कारोबार–संबंधी शर्तों का पलड़ा गरीब लोगों के पक्ष में झुक गया है।

पिछले दो दशकों में विश्व बैंक परियोजनाओं ने ग्रामीण जल आपूर्ति और स्वच्छता के लिए $1.4 अरब का अंशदान किया है। 150 से लेकर 15,000 तक की जनसंख्या वाले 15,000 से अधिक गांवों के लगभग 2.4 करोड़ निवासी उक्त परियोजनाओं से लाभान्वित हुए हैं। इसके अलावा, लगभग 1.7 करोड़ ग्रामीण सुधरी हुई सफाई व्यवस्था से लाभान्वित हुए हैं।

विश्व में तपेदिक (टी.बी.) का सबसे ज्यादा बोझ भारत पर है। अनुमान है कि भारत में प्रति वर्ष टी.बी. के 22 लाख नए मामले सामने आते हैं, जो विश्व के सकल भार का एक–चौथाई है। राष्ट्रीय तपेदिक नियंत्रण कार्यक्रम के तहत 1998 से 2012 के बीच आईडीएद्वारा दिए गए कुल मिलाकर $27.9 करोड़ के दो ऋणों से कारगर रोग–निदान और उपचार का विस्तार करने के लिए उल्लेखनीय सहायता मिली। इस अवधि के दौरान तपेदिक से प्रभावित लगभग 1.5 करोड़ से अधिक लोगों की जांच की गई, उनका इलाज किया गया और इस तरह लगभग 26 लाख जीवनों को बचा लिया गया। विश्व बैंक द्वारा समर्थित राष्ट्रीय एड्स कार्यक्रम आज तक लगभग 81ः महिला यौनकर्मियों (सेक्स वर्कर्स), पुरुषों के साथ यौन–संबंध बनाने वाले 66% पुरुषों तथा इंजेक्शनों के जरिये नशीली दवाओं का सेवन करने वाले 71% व्यक्तियों तक पहुंच चुका है। लेकिन इन सफलताओं को आगे जारी रखने के लिए लगातार ध्यान देने की जरूरत है।

स्वास्थ्य–संबंधी परियोजनाओं के लिए विश्व बैक की सहायता से गर्भवती महिलाओं को बच्चे को जन्म देने (प्रसव) के लिए समय से चिकित्सालय पहुंचना संभव हुआ हैय तमिल नाडु में आज 99.5% प्रसव चिकित्सा संस्थानों में ही कराए

जाते हैं। लेकिन, माताओं और शिशुओं की मृत्यु दरों में तेजी से गिरावट आने के बावजूद, ये दरें अधिक गरीब देशों की दरों के बराबर बनी हुई हैं। हालांकि भारत ने पिछले दशक में प्रभावशाली आर्थिक संवृद्धि दर्ज की है, कुपोषण की दरों में बहुत थोड़ी कमी आई है। वास्तव में भारत में रुद्ध–विकास (स्टंटिंग) की दर अन्य ब्रिक्स देशों की तुलना में दो से सात गुना अधिक है।

सितम्बर 2004 से विश्व बैंक की लगभग 2 अरब डॉलर की मदद से भारत के राष्ट्रीय ग्रामीण सड़क कार्यक्रम को विशेष रूप से आर्थिक दृष्टि से कमजोर इलाकों और पहाड़ी राज्यों में संयोजकता (कनेक्टिविटी) में सुधार करने के लिए सहायता मिल रही है। सभी मौसमों में खुली रहने वाली लगभग 24,200 किमी. सड़कों से हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मेघालय, पंजाब, राजस्थान, उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश राज्यों की ग्रामीण जनता को लाभ पहुंचा है। लेकिन, काफी कुछ काम शेष रहता रह गया है। एक–तिहाई ग्रामीण आबादी बारह महीने खुली रहने वाली सड़कों से अभी तक वंचित है।

पिछले दशक या कमोबेश इतनी अवधि के दौरान कर्णाटक, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड में किसानों को वर्षपोषित जमीनों से होने वाली आमदनी बढ़ाने के लिए विश्व बैंक द्वारा दी जाने वाली सहायता से मिट्टी और जल संरक्षण–संबंधी उपायों पर अमल करने तथा कृषि–उत्पादकता बढ़ाने में मदद मिली है। इन कार्यों के अनुभवों से भारत सरकार के समान जल–संभर दिशानिर्देशों को मूर्तरूप देने और राष्ट्रीय जल–संभर कार्यक्रमों का डिजाइन बनाने में मदद मिली है।

1993 में उत्तर प्रदेश में दो सॉडिक भूमि सुधार परियोजनाओं (सॉडिक लैंड रिक्लेमेशन प्रोजेक्ट्स) की मदद से 2,60,000 हेक्टेयर से अधिक बंजर या अनुत्पादक जमीन को खेती के योग्य बनाया गया । फसलों की पैदावार में तीन से छह गुना की वृद्धि हो जाने से 4.25 लाख से अधिक गरीब परिवारों को लाभ पहुंचा है। लगभग 15,000 स्वयं–सेवी समूहों ने महिलाओं की बचत की पूलिंग करने और औपचारिक बैंकिंग नेटवर्क से जुड़ने में मदद की। आज ये स्वयं–सेवी समूह कई गांवों में सरकारी कार्यक्रम के अंतर्गत स्थानीय सरकारी स्कूल में दोपहर के भोजन की व्यवस्था करते हैं। इन दिनों विश्व बैंक से प्राप्त $19.7 करोड़ के एक क्रेडिट से उस परियोजना के तीसरे चरण की सहायता की जा रही है, जिसका उद्देश्य अन्य 1.3लाख हेक्टेयर जमीन का, जो मुख्य रूप से बंजर है, तथा राज्य के लगभग 25 जिलों में कम पैदावार देने वाली सॉडिक जमीनों का सुधार करना है।

16.8 सारांष

अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक, जिसे विश्व बैंक भी कहते हैं, की स्थापना के बारें में 1944 में ब्रेटेन वुड्स में विचार किया गया। इसने 1946 में काम करना शुरू किया। इसके करार नियमों में दिये गये मुख्य उद्‌देश्य इस प्रकार हैं–

- युद्ध से विध्वंसित अर्थव्यवस्थाओं के पुनर्निर्माण के लिये वित्तीय और तकनीकी सहायता प्रदान करना।
- विकासशील देशों को उनकी विकास परियोजनाओं के लिये वित्तीय और तकनीकी सहायता देना।
- इस आशा से निजी निवेश निवेश के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह को बढ़ाना कि पूंजी आधिक्य वाली अर्थव्यवस्थाओं को अपने अतिरिक्त वित्तीय साधनों के

लिये बाजार मिल जाएगा और पूंजी की कमी वाले देश घरेलू बचतों के निम्न स्तर के बावजूद अपने निवेश स्तर को बढ़ा सकेंगे।

➢ सदस्य देशों की युद्ध के समय की अर्थव्यवस्थाओं को शान्तिकालीन अर्थव्यवस्थाओं में सरलता से परिवर्तित करने में सहायता करना।

➢ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दीर्घकालीन संतुलित संवृद्धि को बढ़ाने का लक्ष्य करना ताकि पूरी दुनियां के लोगों का हित हो सके।

16.9 उपयोगी शब्दावली

- परिशोधन–ऋण की अदायगी के लिये नियमित समय अन्तराल पर मुद्रा की राशि अलग रखना।
- सहवित्त प्रबन्ध–एक से अधिक एजेन्सिजयों द्वारा संयुक्त रुप से वित्त प्रबन्ध।
- देश से बंधा ऋण–ऐसा ऋण जिसमें यह शर्त हो कि इसकी राशि एक विशेष देश में खर्च की जानी है।
- ऋण भार दायित्व–ब्याज और अदायगी की किष्तों का भुगतान
- विकास परियोजनाएं–वे परियोजनाएं जिनका उद्देश्य आर्थिक विकास है।
- विदेशी सहायता–सरकारी विदेशी सहायता जिसमें अनुदान व ऋण दोनों शामिल होते हैं।
- अनुदान–विदेशी सहायता जिसमें इसे वापस करने का दायित्व नहीं होता।
- अन्तर्राष्ट्रीय निवेश–वह निवेश जिसमें विदेश की बचत लगती है।
- अल्पविकसित अर्थव्यवस्था–आर्थिक रुप से पिछड़ी अर्थव्यवस्था, जिसे अब विकासशील या अल्पविकसित अर्थव्यवस्था भी कहते है।
- प्रदत्त पूंजी–शेयर पूंजी का वह भाग जो निगम उद्यमों के शेयर होल्डरों ने दे दिया है।
- निजी विदेश पूंजी–विदेशी व्यक्तियों या विदेशी निजी संस्थाओं द्वारा प्रदान की गयी पूंजी।
- परियोजना से बंधी सहायता–केवल एक विशेष परियोजना के लिये वित्तीय सहायता।
- युद्ध कालीन अर्थव्यवस्था–वह अर्थव्यवस्था जिसके कार्यक्रम विकास की बजाय युद्ध के लिये हों।
- तकनीकी सहायता–तकनीकी जानकारी के बारें में सहायता।

16.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 2 i) सही ii) गलत iii) सही iv) गलत v) सही vi) गलत vii) सही

ख 1 i) ऋण देना और निजी ऋणों की गारण्टी देना

ii) तकनीकी सहायता प्रदान करना।

iii) निजी निवेश को प्रेरित करना।

2 i) विश्व बैंक के अपने साधनों में से ऋण।

ii) इसके उधार लिये गये साधनों में से ऋण

iii) इसकी गारण्टी पर ऋण।

3 i) गलत ii) सही iii) गलत iv) सही v) सही vi) गलत vii) सही

viii) गलत

16.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 विश्व बैंक के क्या उद्देश्य हैं?

प्रश्न–2 विश्व बैंक के कार्यों का विवेचन कीजिये। क्या यह अल्पविकसित देशों की पूंजी की कमी की समस्या हल कर पाया है?

प्रश्न–3 विश्व बैंक द्वारा प्रदान किये जाने वाले संरचनात्मक समायोजन ऋणों का क्या औचित्य है? इनकी आलोचना क्यों की जाती है।

प्रश्न–4 अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाह में विश्व बैंक के योगदान का आलोनात्मक मूल्यांकन कीजिये।

प्रश्न–5 विश्व बैंक की असफलताएं क्या हैं? यदि इस पर विकसित देशों का प्रभुत्व नहीं होता तो क्या यह और अच्छा कार्य कर सकता था?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. एस.के. मिश्रः मुद्रा एवं बैकिंग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित (श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली 1989) (अध्याय 1,2,8,10)
- डॉ. एम.एल. झिंगन : मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त (वृंदा पब्लिकशन्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1997)
- प्रो0 बी0एल0 ओझा एवं डॉ सतीष कुमार साहा : मुद्रा बैकिंग एवं राजस्व (साहित्य भवन, SBPD पब्लिकेषन 2016)
- प्रो0 शिवनारायण गुप्तः मुद्रा, बैकिंग और राजस्व (अग्रवाल पब्लिकेषन 2017)

- एस.के. मिश्र : मुद्रा एव बैंकिंग (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 2016) अध्याय 12–16
- के.पी.एम. सुंदरम एवं टी.एन. चतुर्वेदी : मुद्रा, बैंकिंग व व्यापार (नई दिल्ली : सुल्तान चन्द ऐंड संस, 2017)
- शर्मा एवं सिंघई : मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व (आगरा : साहित्य भवन, 2016)
- एस.बी. गुप्ता : मौनेटेरी इकनॉमिक्स (नई दिल्ली : एस. चांद एंड कं., 2016)

****